आत्मज वरुण के भविष्य को…

नवगीत
इतिहास और उपलब्धि
॥ शोधात्मक-आलोचना ॥

संस्करण
प्रथम, १९८५

मूल्य
पचहत्तर रुपये

विजयदेव झारी द्वारा शारदा प्रकाशन महरौली, नई दिल्ली-११००३० केलिए प्रकाशित एवं नवप्रभात प्रिंटिंग प्रेस शाहदरा, दिल्ली-११००३२ में मुद्रित। आवरण सज्जा : श्री चेतनदास एवं आवरण मुद्रण · गणेश प्रेस, गांधीनगर दिल्ली, द्वारा।

NAVGEET
ITIHAS AUR UPLABDHI
History and achievements of Hindi Navgeet
by
Dr. Suresh Gautam & Dr. Veena Gautam.

नवगीत
इतिहास और उपलब्धि

शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली

कृतज्ञता : आभार

—नींव की देहाती ईंट, पूज्य पिता के अनुष्ठानो के हम मूक साक्षी हैं। उनकी कठोर तपस्या ने बच्चो के भविष्य को महल का कगूरा बना दिया और महल का कगूरा बने बच्चो ने उन्हें बना दिया पिछले दरवाजे की सांकल। हमारे लेखन के प्रत्येक शब्द मे उनकी छाया-प्रेरणा छिपी है। भारतीय सभ्यता-सस्कृति के विश्व कोश, महर्षि दधीचि समान पूज्य पिता की दर्शनसिद्ध पुरस्कृत मनीषा से हमने अनेको शकाओ के प्रामाणिक समाधान खोजे हैं। ज्योतिष्मय पुण्य-श्लोक पिता के प्रति हम नतशिर हो अपनी सपूर्ण कृतज्ञता-विनम्रता के साथ एकनिष्ठभाव से समर्पित हैं। उनके मागलिक आशीष हमारे 'रक्षा-कवच' हैं जिनके बल पर ही सीढी-दर-सीढ़ी हम 'उज्ज्वल' भविष्य के खूबसूरत 'ताजमहल' निर्माण को सकल्पबद्ध हैं।

—आपद्धर्म निभाते हुए हमारे मार्ग से ककर पत्थर चुन रास्ता बुहारने वाले श्रीमती एव श्री अमृतलाल कपूर के ऋणी हैं, जिन्होंने जीवन के कठिन क्षणो मे पुष्प-ज्योति बन हमे सुगन्धित-सुवासित रखा। ईश्वर उन्हें सदा कष्टमुक्त रखे।

—ग्रथ को महिमा-मडित करने वाले गीतधर्मी गाधीवादी व्यक्तित्व श्री प० भवानीप्रसाद मिश्र के प्रति श्रद्धापूर्ण कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। श्रद्धेय प० भवानी जी 'कालजयी' हो और उनका बुद्धि-वैभव मानव-कल्याण के लिए साहित्य की श्रीवृद्धि करता रहे—प्रभु से यही कामना है।

—हम विनम्र कृतज्ञ हैं—आचार्य विजयेन्द्र स्नातक, डॉ० तारकनाथ बाली एव डॉ० नित्यानन्द तिवारी के, जिन्होने अनेक व्यस्तताओ के बावजूद समय निकाल कर न-केवल पुस्तक को अक्षरश: पढा बल्कि अपनी अमूल्य सम्मतियाँ भी दी।

—हमारे लेखन-कार्य से सदैव प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जुडे आत्मीय मित्रो—श्री दर्शनलाल सचदेवा, श्री हरिशरण दत्ता, डॉ० गिरीश बख्शी का आभार कैसा? अत. मौन।

—जिन विद्वानो के उपजीव्य-उपस्कारक ग्रथ हमारे-लेखन-कार्य के निमित्त बने उनके प्रति आभार।

—शारदा प्रकाशन के व्यवस्थापक का हृदय से आभार! व्यवसाय मे अत्यधिक व्यस्त रहने के बावजूद साहित्य के प्रति उनकी गहरी दृष्टि एव लगाव ईर्ष्या का विषय है।

आत्मजा जन्मदिवस

—सुरेश बौणा

हाशिए मे ''

बीसवी शती के छठे-सातवें दशक मे हिन्दी साहित्य मे आधु-
निकता-बोध के साथ नव लेखन अभिधान से एक नयी प्रवृत्ति
का उदय हुआ था जो कहानी और कविता के क्षेत्र में अपनी पह-
चान छोड गया। हिन्दी काव्य क्षेत्र मे छायावाद के बाद प्रगति-
वाद, प्रयोगवाद, नयी कविता और आधुनिक गीत शीर्षकों से
कई प्रकार की कविता का प्रवर्त्तन हुआ। इसी क्रम मे आधुनिक
गीत को कुछ गीतकारो ने 'नवगीत' नाम देकर प्रचलित
परम्परा से पृथक् स्वतन्त्र गीत विधा की जोरदार वकालत की।
उनका कहना था कि गीत को रोमानी वातावरण से निकाल
कर समाज से जोडकर युग-सन्दर्भ म परखना चाहिए। यदि
आधुनिक बोध को गीत मे स्थान दिया जाय और सामाजिक
सन्दर्भों मे उसकी गहरी सम्पृक्ति रहे तो वह गीत नवगीत की
श्रेणी मे रखा जायेगा।

'नवगीत' शब्द के प्रचलन की पृष्ठभूमि म नयी कहानी शब्द भी
रहा होगा किन्तु विधा भेद से शिल्प म अन्तर आना स्वाभाविक
है। नवगीत की स्थापना जिस उत्साहपूर्ण वातावरण म हुई थी
वह उत्साह विगत बीस वर्षों मे ठडा पड गया है किन्तु नवगीत
जीवित है अत समीक्षा की कसौटी पर उसकी परख भी
आवश्यक है। डॉ० सुरेश वीणा गौतम ने इस दिशा म स्तुत्य
प्रयास किया है। नवगीत के आविर्भाव का इतिहास और
नवगीत की साहित्यिक उपलब्धि पर उन्होंने इस ग्रथ मे
तटस्थ भाव से प्रकाश डाला है। नवगीतकारो का अपनी पूर्व-
काव्य परम्परा से क्या सम्बन्ध है और किन तत्वो के कारण
उसका स्वतन्त्र अस्तित्व है, यह पहली बार विस्तारपूर्वक
इस ग्रथ मे विवेचित है।

नवगीतकारो मे से लेखक-द्वय ने अठारह का चयन किया है
और उनका शिल्प एव कथ्य स्पष्ट करते हुए उनके योगदान को
रेखाकित किया है। मूल्याकन के लिए उन्होने किसी परम्परागत
पद्धति का अनुसरण नही किया किन्तु प्रभाव की व्यापकता को
निकष बनाया है। कुछ उपेक्षित गीतकारो के व्यक्तित्व-कृतित्व
पर लिखने की पहल उन्होने की है लेकिन कुछ नवगीतकार
छूट भी गये हैं आशा करनी चाहिए, उनको द्वितीय सस्करण
मे स्थान दिया जायेगा। नवगीत-समीक्षा की यह पहली पुस्तक
है, कतिपय सीमाएँ होने के बावजूद लेखक-द्वय की विषय मे पैठ

गहरी है। मुझे विश्वास है कि नवगीत के प्रेमी पाठकों को यह पुस्तक अवश्य ही चिन्तन के लिए प्रभूत सामग्री दे सकेगी।

डॉ० विजयेन्द्र स्नातक
भूतपूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-७

छायावादोत्तरकाल मे छायावाद की तीव्र प्रतिक्रिया लक्षित होती है जिसमे समूचे छायावाद के ही निषेध का प्रयास दिखाई देता है। इसी के अन्तर्गत गीतकाव्य को भी तुच्छ समझा जाने लगा। यह प्रतिक्रिया आलोचना कम थी और रणनीति स्ट्रैटेजी अधिक। नई कविता की प्रतिष्ठा के लिए प्रगीत-मुक्तक की अवमानना आवश्यक समझी गई। इस तरह का प्रचार इतना प्रभावी और सगठित था कि गीत लिखना एक हीन बात समझी जाने लगी। इससे छायावादोत्तर गीतकारो का आत्मसम्मान आहत हुआ, आत्मविश्वास चरमराया और वे प्रतिरक्षात्मक रवैया अपनाने लगे। कुछ ने 'नई कविता' लिखना शुरू किया और कुछ ने 'नवगीत'। परस्पर विरोधी विचारधारा के समर्थक रचनाकार— घोर व्यक्तिवाद से आक्रान्त 'अज्ञेय' और स्थिर मार्क्सवादी लेखक रामविलास शर्मा —प्रयोगवाद के मच पर सगठित होकर सामने आए। इस असमजसपूर्ण एव गड्डमड्ड माहौल मे यह सिद्ध करना सहज हो गया कि छायावादोत्तर काल मे मात्र एक ही कविता-धारा थी और वह थी नई कविता। उस समय आचार्य शुक्ल जैसा कोई निष्पक्ष और प्रतिभाशाली इतिहासकार तो था नहीं, इसलिए आधुनिक कविता के इतिहासकारो ने भी प्राय इसी बात को दोहराया। नतीजा यह हुआ कि वे रचनाए और रचनाकार एकदम उपेक्षित-विस्मृत हो गए जिन्हे डॉ० सुरेश गौतम तथा डॉ० वीणा गौतम ने प्रस्तुत पुस्तक का विषय बनाया। प्रस्तुत पुस्तक में नवगीत एव उनके रचनाकारो का सन्तुलित अध्ययन मिलता है—एक ऐसा अध्ययन जिसमे शोध एव समीक्षा दोनो का समन्वित रूप प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। साथ ही इस दिशा में आगे अध्ययन की सभावनाए खुलती हैं। इसलिए प्रस्तुत प्रयास का अपना महत्त्व है।

डॉ० तारकनाथ बाली
प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-७

डॉ० सुरेश गौतम और श्रीमती वीणा गौतम द्वारा लिखित 'नवगीत : इतिहास और उपलब्धि' नामक ग्रंथ देखने का अवसर मिला।

इधर कुछ दिनों से 'नवगीत' के नाम से आन्दोलन चला कर उसे 'नयी कविता' के मुकाबले कविता की केन्द्रीय धारा के रूप में प्रस्तावित करने की उमंग ज़ोर मारती रही है। हिन्दी के आलोचकों द्वारा उपेक्षित हो गए या हो रहे गीतकारों के प्रति इस पुस्तक के लेखकों की सहानुभूति सदाशयतापूर्ण है। मैं आशा करता हूं, गौतम-दम्पति की यह पुस्तक चर्चा का विषय बनेगी।

डॉ० नित्यानन्द तिवारी
रीडर, हिन्दी-विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-७

●●

आधुनिक युग मे विज्ञान के उत्तरोत्तर विकास ने भूगोल को हस्तामलक बना दिया है। इसी के समान्तर पूंजीवाद के उदय और उसके फलस्वरूप व्यक्तिवादी भावना के विकास ने वृहत्तर मानव-सम्बन्धो के बीच उपजती दरारों को अपनी खुली आँखों से देखा और सवेदनशील जागरूक कलाकार ने महसूस किया कि ये दूरियाँ कम करनी होंगी और मानव मानव के बीच मानवीय रिश्ते कायम करने होंगे। साहित्यिक विधाओ मे गीत एकमात्र ऐसी विधा है जो परस्पर अलगाव की इस आग को अपने शीतल शब्द, लय और सगीत से बुझाकर आनन्द प्रदान कर सकती है।

आधुनिक काल मे छायावादोत्तर गीतिकाव्य से लेकर नयी कविता तक गीत धारा यद्यपि चलती रही लेकिन नयी कविता तक आते-आते वह मानो मरु मे गहरे समा गई और शव होने लगा, क्यो वह मर तो नहीं गई, लेकिन ऐसा हुआ नही, हो भी नहीं सकता। मानवीय रिश्तो की लालसा लोक-जीवन की स्पृहा को शायद तब तक मरने नहीं देगी जब तक मानव-जीवन की अखण्डता मे हमारा विश्वास कायम है।

नयी कविता के ही समान्तर नवगीत का बीज-वपन हुआ। नवगीत नयी कविता से अलग कुछ नही है फर्क सिर्फ इतना है कि नयी कविता युग-यथार्थ को मुक्त छन्दों मे देखती है और नवगीत उसे लयात्मक बोध देता है। यही आकर परम्परागत गीत-विधा टूटती है और नवगीत के माध्यम से मानवीय रिश्तो को वृहत्तर आयामो से जोडती है। यह नही है कि ऐसा कभी हुआ ही न हो। प्रसाद के नाटको मे और बकिम के उपन्यासो मे विशेषकर 'आनन्दमठ' में गीतो की वृहत्तर भूमिका बडी आसानी से देखी जा सकती है किन्तु प्रश्न अपवाद का नहीं, विधा की सामा य प्रवृत्तियों के अन्तर्गत उसकी चरित्र दृष्टि को मूल्याकित करने का है। गीतो की इस वृहत्तर भूमिका का सूत्रपात यद्यपि निराला के गीतो से हुआ लेकिन उसका विकास सन् ५० के बाद की गणतन्त्रीय चेतना मे ही हुआ। प्रगतिवाद का उथलापन और प्रयोगवाद का प्रयोगाधिक्य बरसात के पानी की तरह बह गया और धीरे-धीरे नवगीत में मिट्टी की सौंधी गंध अपने नैसर्गिक रूप में महकने लगी। नवगीत के बिम्बों, प्रतीकों, छन्दो, उपमानो एव उसके कलात्मक उपादानों में व्यक्तिवादी स्वर लुप्त होने लगा और यथार्थ का एक नया तेवर उभरने लगा—इसी का नाम नवगीत है। यह विधा अपने आप में एक निरपेक्ष सृष्टि न रह कर सापेक्षता का हलफनामा लेती हुई नजर आती है, व्यक्तिवादी काम-पीडाओ से हट कर लोक-जीवन की धुनो, रागों, रागिनियो, समस्याओं और महानगरीय एव राजनीतिक सम्बन्धो, सन्दर्भों को कहती हुई अपने को गीत-विधा से अलगा जाती है। यह इसका कम योगदान नही है। इस ग्रन्थ में भरपूर कोशिश की गई है कि इन सन्दर्भों के माध्यम से नवगीत की प्रवृत्तियो

को उनके गीतकारो के व्यक्तित्व और अनुभव के आधार पर मौलिकता और गभीरता से प्रस्तुत किया जाए।

सुधी पाठको को शायद ऐसा लग सकता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ में नवगीत के चिन्तन पर अपेक्षया कम और नवगीतकारो पर अधिक लिखा गया है किन्तु यह स्पष्ट करना बहुत जरूरी होगा कि नयी कविता के जवाब में नवगीतकार जिस कदर उपेक्षित हो गये थे उनको ध्यान मे रखते हुए यह आवश्यक था कि नवगीत-चिन्तन के साथ साथ नवगीतकारो पर भी स्वतन्त्र रूप से लिखा जाए जिससे उनके व्यक्तिगत योगदान को हिन्दी जगत समझ सके। नवगीतकारो की इस प्रकार की उपेक्षा का यह क्रम अपने आप म नया नही है। पहले भी ऐसा हुआ है। प्रगतिवादी आन्दोलन जब अपने चरम बिन्दु पर था और उसके उथले नारे साहित्यिक विधाओ में विरसता पैदा कर रहे थे तब हवा के झोको में पत और निराला जैसे वरिष्ठ छायावादी कवि भी युगीन स्वर दोहराने लगे थे लेकिन महादेवी वर्मा शायद जानती थी कि जिस दिन गदला पानी बहेगा उस दिन नीर-क्षीर विवेक अवश्य होगा और इसीलिए वह 'दीप शिखा' के माध्यम से अविचल अपने नये प्रयोगो मे लगी हुई थी। अप्रासगिक न समझा जाए तो मैं यह स्पष्ट कर देना चाहूगा कि अपने इने गिने बिम्बो और प्रतीको को सन्दर्भों की विविधता में मौलिकता और नवीनता देने में महादेवी वर्मा ने जो कमाल पैदा किया है वह वर्षों-वर्षों की साहित्य-सम्पदा में भुलाया नही जा सकता। नवगीतकार आज युग-यथार्थ के नाम पर नये बिम्बो और प्रतीका की सर्जना कर रहे हैं, लेकिन जाने पहचाने उपमानो को सवेदना की बदलती लय में बदलते हुए कहते जाना और हर बार यह लगना कि यह नये हैं—महादेवी वर्मा की ही कला निपुणता थी और आज के नवगीतकारो को चाहिए कि वे अपनी विरासत में निराला का गुण गाते हुए महादेवी वर्मा जैसी तप पूत अग्नि-शलाका को न भूलें।

नवगीत के चिन्तन और उपलब्धि के साथ-साथ प्रस्तुत ग्रन्थ में शम्भूनाथ सिंह, वीरेन्द्र मिश्र, नीरज, बालस्वरूपराही, रामावतार त्यागी, श्रीपाल सिंह क्षेम', रवीन्द्र भ्रमर, मधुर शास्त्री, चन्द्रसेन विराट, ठाकुरप्रसाद सिंह आदि के व्यक्ति-अनुभव और अभिव्यक्ति पर यथाशक्ति तटस्थता से विचार किया गया है और कोशिश की गई है कि कुछ उपेक्षित नवगीतकार भी छूटने न पाए। श्रीपाल सिंह 'क्षेम', मधुर, विराट जैसे गीतकारो का हवाला शायद इस दिशा में पहला कदम है। यदि आत्म-विज्ञापन की शिकायत न की जाए तो यह दावा है कि पहली बार विस्तारपूर्वक नवगीतकारो को उनकी प्रासगिकता मे उपस्थित करने की हिम्मत इस ग्रन्थ में की गई है। एक बात और, गीत का अपना एक निजी ससार होता है—ऐसा नही है कि नवगीत का नहीं होता लेकिन नवगीत के सन्दर्भ में यह खोजा-पाया गया है कि उसका ससार रोमानी काल्पनिक अथवा हवायी नहीं है बल्कि समाजशास्त्रीय सन्दर्भों से जुड़कर युग-सन्दर्भ

की चौखट पर खड़ा हुआ है। ऐसे में नवगीतकार जब बहती हवा की गर्मी-नर्मी को अपने शब्दो-छन्दो में बाधता है तो समाजशास्त्रीय होने के साथ साथ वह कमोबेश मनोवैज्ञानिक भी हो जाता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए उनके नवगीतो में समाजशास्त्रीय चिन्तन को उसके उथलेपन में नही सराहा बल्कि कोशिश की गई है कि कवि की मनोरचना को समझाते हुए उसके मनोवैज्ञानिक आग्रहो पर उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया जा सके। इस दिशा में कितनी सफलता मिली है यह तो पाठक ही बताएगे लेकिन यह सही है कि इस प्रक्रिया के अन्तर्गत नवगीत के मान-मूल्यो को समझने-समझाने में काफी कश-मकश करनी पड़ी है।

नवगीत की कलात्मक उपलब्धियों पर भी यथास्थान काफी कुछ कहा गया है। यहा इस सम्बन्ध में मौन ही रहा जाये तो हितकर होगा। सवेदना का सत्य ही वास्तविक सत्य है। उसका सकेत ऊपर देने की कोशिश की गई है। उसको सजाने सवारने मे नवगीतकारो ने जितना कुछ किया वह उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति है और वहीं एक नवगीतकार दूसरे नवगीतकार से अलगा जाता है।

नवगीत की प्रामाणिक एव व्यापक समझ के लिये कुछ नवगीतकारो से न-केवल साक्षात्कार किया गया बल्कि कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओ को आधार बनाकर एक परिपत्र तैयार किया गया जो नवगीत के चर्चित-अचर्चित, स्थापित-विस्थापित नवगीतकारो को भेजा गया, इससे नवगीतकारो को अनुभव और अभिव्यक्ति की पारस्परिकता में समझने का प्रयास सुलभ हुआ और नवगीत का अध्ययन व्यावहारिक धरातल पर उतर आया। यह परिपत्र यथासम्भव सभी नवगीतकारो को भेजा गया था लेकिन उत्तर केवल कुछ नवगीतकारो के ही आ पाये। इस क्रम में हो सकता है कुछ महत्त्वपूर्ण गीतकार छूट गये हो लेकिन उपजीव्य सामग्री के बिना किसी गीतकार के व्यक्तित्व-कृतित्व पर लिखना असम्भव है।

अन्त में एक बात और—नवगीत पर यह कार्य मैंने आज से लगभग सात-आठ वर्ष पूर्व किया था। इस गीत-परम्परा को आजतक के ऐतिहासिक क्रम में जोडने का श्रमसाध्य कार्य सहधर्मिणी वीणाजी का है। काट-छाट, तराश-विस्तार सब उन्हीं की लेखनी से हुआ है। बहुत-से गीति-सग्रह तो पिछले वर्षों में आये, उन्हे पुस्तक-परिधि में लाने का श्रेय वीणाजी को ही है। उनके योगदान को ध्यान में रखते हुये उन्हें श्रेय नही दिया जाय तो अन्याय होगा।

प्रेस की असावधानी से जो अशुद्धियां पुस्तक मे रह गई है उनके लिए लेखकद्वय को खेद है। इसी उद्देश्य से पुस्तक के अन्त मे शुद्धि-पत्र जोड़ा गया है।

इत्यलम्।

—सुरेश गौतम

गौरमा
ए—१३/३ राणाप्रताप बाग
दिल्ली—११०००७

'कालजयी' के मुख से......

मैं डॉ० सुरेश गौतम और श्रीमती (डॉ०) वीणा गौतम के प्रति इस बात के लिए कृतज्ञ हू कि उन्होने 'नवगीत . इतिहास और उपलब्धि' नामक इस पुस्तक केलिए मुझसे भी कुछ कहने को कहा।

नयी कविता और नवगीत—दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, ऐसा मुझे हमेशा लगता रहा, तथापि चाहे जिस कारण से हुआ हो, नयी कविता चर्चित होती रही, और नवगीत उपेक्षित रहा। जिस विधा ने हमे पुरानी पीढी मे प्रसाद, निराला, महादेवी, विद्यावती कोकिल, बच्चन, नरेन्द्र शर्मा और जानकी वल्लभ शास्त्री जैसे गीतकार दिए, उसी ने तो बाद मे विकसित होकर हमे गोपाल सिंह नेपाली, रामावतार त्यागी, स्नेहलता स्नेह, वीरेन्द्र मिश्र जैसे गीतकार देकर आज के एकदम नये गीतो की प्रवहमान धारा के किनारे लाकर खडा किया है। हमे उसकी अनदेखी नहीं करनी चाहिए थी। हिन्दी कविता की आलोचना मे गीत कही नही आता, यह एक चिन्तनीय बात है। यह कौन नही जानता कि गीतात्मकता या सीधे-सीधे कहे तो स्वर और सगीत कविता के ऐसे सर्वाधिक सबल तत्त्व हैं, जो उसे व्यक्ति से निकालकर समाज के साधारण लोगो तक पहुचा सकते हैं।

हमारे यहा हर चीज का उद्भव वेद से ढूढने का चलन है। अगर मैं भी इस चलन को ध्यान मे रखकर कहू कि वेदों के मन्त्र और सूक्त अपने उदात्त-अनुदात्त और स्वरित आरोह-अवरोहो मे पढ़े जाने के कारण गीत हैं तो इसका कोई कदाचित् ही विरोध करना चाहेगा। गीता तो खैर गीत है ही। सस्कृत के तमाम वार्णिक छन्द पहली कडी पकडते ही अन्तिम कडी तक झनझना उठते हैं। देवताओ से सबधित स्तोत्र इसके उदाहरण हैं। उनमें बहने वाले सगीत की ही महिमा है यह। यही परम्परा धीरे-धीरे उतरकर हमारे 'रामचरित मानस' जैसे काव्यो और 'आल्हा' जैसे लोक-काव्यो मे आई। इन्हें आप पहले सपाट गद्य के ढग से पढ़कर देखें और फिर उनके प्रचलित स्वरो मे गुनगुनाकर, तो अन्तर समझ मे आयेगा। मुझे कई बार लगा है कि कविता को जो काव्य-धारा कहा गया है वह गीत के बारे मे और भी सही है। गीत धारा तो है ही कही 'प्रसन्न, और कही स्वरवती, किन्तु वह केवल धरती पर बहने वाली धारा ही नही है, कई बार आकाश म पक्तिबद्ध उडने वाले कल-कल स्वर के स्वामी, पछियों की लहर भी है जो बिना किसी तट से टकराए स्पदनशीलता देती रहती है, और सुबह-शाम अपने स्वर की मुहर लगाकर दिन को दिन और रात को रात बनाती है।

गीतो की बात करते समय मुझे सदा रवीन्द्रनाथ की याद हो आती है। भारतीय साहित्य मे सबसे अधिक और सबसे विविध गीत रवीन्द्रनाथ ने लिखे हैं। उन्होंने कोई तीन हजार गीत लिखे हैं और उनमे से अधिकांश गीतों को स्वरलिपि भी दे गए हैं। उन्होने पूजा-गीत लिखे, प्रेम-गीत लिखे, प्रकृति का गीतो मे चित्रण

किया, उद्बोधन, आस्था और पारस्परिक संवेदना से जुड़े हुए अवसर विशेषों को भी अछूता नहीं छोड़ा। इस प्रकार के प्रसगानुकूल गीतों को उन्होंने अनुष्ठानिक नाम दिया है। अपनी नृत्य-नाटिकाओं में उन्होंने केवल मनोरंजन करने वाले लगभग 'नानसेन्स' गीत लिखे अर्थात् उन्होंने गहरे से गहरे और हल्के से हल्के रंगों में अपनी कूँची डुबोई और यहा तक कि भाव-अभाव चित्रों को बाधा। साथ ही यह सावधानी रखी कि गीत लिखने वाले अपने तक ही सीमित न रह जायें, इसीलिए उन्होंने अपने गीतों को स्वरलिपि भी दी। परिणाम जो हुआ है —उन्होंने सोचा हो या न सोचा हो—वैसा हुआ है। आज रवीन्द्रसंगीत, संगीत के एक प्रकार की तरह प्रतिष्ठित है। अकेले-अकेले और समवेत उनके गीत बंगाल के नगरों से लेकर छोटे से छोटे गांव के लोगों को उद्वेलित करते रहे हैं। 'ठीक साहित्य' का इस प्रकार लोक साहित्य हो जाना स्वरों के बल पर ही हुआ है—ऐसा मैं मानता हू।

हमारे आज के गीतों में भी लोगों के बीच में फैल सकने की शक्ति है। लेकिन अभी तक यह हुआ नहीं है—इससे इनकार नहीं किया जा सकता। कवि का गीत साधारण किसान या मजदूर तो छोड़िये—कोई गायक भी मनसे नहीं गाता। रेडियो पर प्रसारण के लिए कोई गीत गाना ही पड़े तो वह विवश होकर स्वीकार करता है। हमारे गीत कवि के सिवाए दूसरे कण्ठों से भी गूजें, इसके लिए क्या-कुछ करना जरूरी है, इस पर विचार करना चाहिए। हमारे अनेक गीत-कारों ने अच्छे-खासे साहित्यिक गीत चित्रपट के लिए लिखने का साहस भी किया और वे फैले भी कदाचित् इसलिए कि उन्हें ठीक स्वर, लय और ताल देकर सधी आवाजों मे प्रस्तुत किया गया। चित्रपट के अतिरिक्त भी यह प्रयोग होना चाहिए।

नवगीत को इस अर्थ में अभी तक जीवन ही नहीं मिला। एक तरह से यह बात आज की कविता पर भी लागू है। उसे उसके रचयिता के सिवाय कोई जोर से नहीं गाता या पढता। दूसरे कण्ठों से काव्य-पाठ और गीत-गान कविता को जीवन्त बनाये रखने की अनिवार्य शर्तें हैं। जो नवगीतकार दूसरों के द्वारा जितना अधिक उच्चरित या गाया गया है, वह उतना ही टिका है। यदि शेक्सपीयर सारे संसार में मंचों से उच्चरित न होते, तुलसी का रामचरित मानस घर में, कथाओं में और लीलाओं में सस्वर न आता, सूर, मीरा, कबीर, विद्यापति दूसरों द्वारा न गाए जाते तो वे वैसे ही कुछ रह जाते जैसे हमारे नवगीत हैं। किताबों में बंद गीत जीवन्त नहीं रह सकते। गीत तो सामूहिक रूप से लहराने वाली चीज है। गीत के प्रति इस दृष्टि को भी जागृत करना होगा, फिर हम देखेंगे कि आज जिस गीत की बात नहीं होती वह रातों रात यहां से वहां तक फैल जाएगा।

एक बार मुझसे पूछा गया कि मैं 'नवगीत' को कहाँ से प्रारम्भ मानता हूँ। मैं इसे कोई बहुत बड़ा प्रश्न नहीं मानता। कविता को अगर एक धारा कहा गया है तो

वह कहाँ नयी है कहाँ पुरानी है—कौन कहे। मोड जरूर आते हैं, नहरें भी काटी जा सकती हैं मगर मोडो को नाम नही दिए जाते, नहरो को दिए जाते हैं। विशेष ढग से उपयोगी बनाने का प्रयत्न करने पर धारा टूट जाती है। तब कविता और गीत वाद मे बध जाते हैं। अगर हम नवगीत को सीमित रखकर उससे अपने वाद के खेतो को सीचने की कोशिश करें तो वह अपनी धारा से कटा हुआ माना जायेगा। सोचता हूँ कि ऐसा एकांगी दु साहस नवगीत के साथ न हो तो अच्छा। वह अपनी धारा से विच्छिन्न न होकर मोड़ है।

प्रस्तुत पुस्तक 'नवगीत' का विस्तृत विवेचन करते हुए इस बात पर अगुली रखती है कि नयी कविता और नवगीत को इतना अधिक अलग-अलग न माना जाए कि जो व्यक्ति गीत लिखता है कि वह कवि ही नही है। अगर गीत ओस की बूद की तरह एक हरे-भरे विस्तार पर बिछा हुआ दिख रहा है तो उसे एक निगाह, खडे होकर देखिए तो सही। मुझे लगता है कि इस पुस्तक ने हमसे यही कहना चाहा है। आज के कुछ समर्थ गीतकारो के गीतो का स्वभाव और सस्पर्श हम तक पहुचाने की कोशिश इस छोटी-सी किन्तु इस दिशा मे प्रथम पुस्तक ने की है। इस प्रारम्भ को प्रणाम करके हम अपने को छोटा नही बनाएँगे—मैं ऐसा आश्वासन अपने आलोचक मित्रो को देना चाहूँगा। मैं उन्हे आमन्त्रित करता हूँ कि आज के नवगीत लेखन पर थोडा ध्यान देकर उन सारे तत्त्वो को खगाले जो इसमे भरे पडे हैं।

आज का गीत व्यक्ति तो है ही, वह समाज भी है और ससार भी। जो काम पहले अध्यात्म करता था वह काम आज कविता कर रही है और गीत उसी को घनिष्ठ रूप में कर रहा है—ऐसा समझ मे आना कठिन नही है। मैं जब अध्यात्म का नाम लेता हूँ तो कृपा करके उसे विज्ञान के विरोध मे खडा करना न मानें।

मैं डॉ० सुरेश गौतम और श्रीमती वीणा गौतम से अनुरोध करना चाहूगा कि वे अपनी गीत के प्रति आकर्षण-वृत्ति को मद्धिम नही पडने देंगे और इस विधा को उसकी समस्त सभावनाओं के साथ क्रमश ही क्यो न हो, प्रस्तुत करते रहेंगे।

शुभकामनाओं सहित—

२१, गाँधी स्मारक निधि
नई दिल्ली—११०००२

शिवमंगलसिंह सुमन

अनुक्रम

3. गोपालदास 'नीरज'

वर्ण्य-विषय, शृंगार, जीवन-सत्य, कवि का अनिवार्य धर्म, मृत्यु का गायक, भोगवादी दृष्टिकोण, मानवता का गायक, अध्यात्म, लोकगीत, प्रकृति, शिल्प-दृष्टि, अप्रस्तुत-विधान, भाषा-शैली, प्रतीक-योजना, सगीतात्मकता, मूल्याकन।

४. बालस्वरूप राही

काव्य-यात्रा, व्यग्य, वर्ण्य-विषय, प्रेम वेदना, मादक-सत्य, सामाजिक और राजनीतिक चेतना, अध्यात्म, शिल्प-दृष्टि, छंद, अप्रस्तुत-विधान, भाषा, मूल्याकन।

५. रामावतार त्यागी

स्वाभिमान, बलिदान, स्वातन्त्र्य एव जिजीविषा, वेदना का गायक, मानवीय गंध की प्यास, अप्रस्तुत-विधान, भाषा, गीतो का रूपाकार, सगीतात्मकता, शिल्प-दृष्टि, मूल्याकन।

६. श्रीपालसिंह 'क्षेम'

उपेक्षित गीतकार, काव्य-यात्रा, मानव : चेतन इकाई, मानवीय मूल्यो मे आस्था, कला : आधुनिकता के प्रस्थान को प्रतिबद्ध, शिल्प-दृष्टि, प्रतीक, बिम्ब, छद, कल्पना : रचनात्मक शक्ति, मूल्याकन।

७ डॉ० रवीन्द्र भ्रमर

गीतो की आत्मिक चेतना, विषय-विस्तार, शिल्प-दृष्टि, मूल्याकन।

८. पं० मधुर शास्त्री

एवरग्रीन माधुर्य रस का कवि, कसमसाती अनुभूति के स्वर, सामाजिक चेतना, व्यग्य, जीवन-दर्शन, छद, शिल्प-दृष्टि, मूल्याकन।

९. चन्द्रसेन विराट

सहज एव मौलिक कवि, कालातीत सम्पदा, अंधेरे की किरण, दो धाराओ का मधु मिलन, महत्त्वपूर्ण उपलब्धि, मूल्याकन।

१०. दिनकर सोनवलकर

वस्तुमुखी परीक्षण-दृष्टि, व्यग्य-वैविध्य, मूल्याकन।

११. ठाकुरप्रसाद सिंह

गीतात्मा का मूल स्वर, मूल्याकन।

१२. महेन्द्र भटनागर

मूल्याकन।

१३. रमानाथ अवस्थी

भावनाओ का सिद्ध कवि, मानवतावादी सूत्रो की खोज, शिल्प दृष्टि, मूल्याकन।

१

नवगीत : इतिहास-बोध

१ पृष्ठभूमि

सन् १९३६ तक आते-आते हिन्दी कविता में छायावादी प्रभाव शिथिल पड़ने लगा था और प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के बाद हिन्दी क्षेत्र में मार्क्सवादी प्रभाव के कारण प्रगति चेतना की लहर हिन्दी रचनाकारों के मानस में घर करने लगी थी। ऐसे में, यद्यपि महादेवी वर्मा अपनी 'दीपशिखा' लेकर आई थी और अपनी एक लम्बी भूमिका के माध्यम से उन्होंने यह विचार प्रकट किया था कि कविता एक आन्तरिक राग है और मेरा दीप मन अविचल लौ लेकर इसकी साधना करता रहेगा, भले ही मेरी पीढ़ी के लोग अपना रास्ता क्यों न छोड़ जाए। बावजूद इसके महादेवी वर्मा मार्क्सवादी चिन्तन की बौद्धिकता को हिन्दी जगत में प्रविष्ट होने से नहीं रोक पायी और इसका तात्कालिक प्रभाव यह हुआ कि गीत, जो मूलत आन्तरिक अनुभूतियों को प्रकट करने का एकमात्र माध्यम था, अपनी लय तोड़ बैठा, उसकी गति मन्थर हो गयी, न केवल इतना वर्षों वर्षों स्वयं महादेवी वर्मा जैसी अथक साधिका भी चुप्पी मार गई और एक प्रश्न चिह्न खड़ा हो गया कि इन परिस्थितियों में गीत कैसे रचा जाए, किस प्रकार रचा जाए।

नवीन गीतात्मक चेतना

सन् १९५० तक आते-आते स्वाधीन भारत में गणतन्त्रीय चेतना पैदा हुई और मार्क्सवाद का उथला प्रभाव जो आन्दोलन बनकर आकाश में छा गया था, धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा था और इस प्रकार कवि रचनाकार पहले की अपेक्षा कुछ अधिक स्वस्थ होकर जनमानस के बीच खड़ा हो गया था। चूंकि गणतन्त्रीय

व्यवस्था ने उसे व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का अधिकार दे दिया था इसलिए वह धरती के अधिक नजदीक आ गया था और नये लहजे से उसकी हर धड़कन एवं समस्या को शब्दित करने लगा था। जाहिर है ऐसे में गीत का परम्परित विधान टूटना अनिवार्य था। ऐसी व्यवस्था में गीत व्यक्तिगत रागात्मक क्षणों का उच्छ्वास नहीं रह गया बल्कि जन-जीवन से जुड़कर उसमें यत्किंचित् बौद्धिकता आई, लोक धुनों का प्रवेश हुआ, लोक जीवन की धड़कन आई और इस तरह उसका विषय अपनी सीमित परिधि को लाँघ कर बंधे-बंधाये चौखटों को तोड़ने लगा। यद्यपि इस चेतना की अभिव्यक्ति सर्वप्रथम छायावादी कवि निराला के गीतों में हुई थी। उन्होंने पहले-पहल गीत के छन्द, राग और लय में बहुत कुछ तोड़ा और नया जोड़ा था लेकिन बौद्धिक दुरूहता के कुहरे में यह धारा नैरन्तर्य नहीं पा सकी और सन् १९५० तक आते आते इस चेतना को मुखरता मिल पायी। कहना न होगा, कि यह नवीन गीतात्मक चेतना अपने वस्तु शिल्प एवं दर्शन की दृष्टि से अपनी परम्परा से काफी भिन्न थी।

यह नवीन गीतात्मक चेतना क्या है? इस सम्बन्ध में अनेक कवियों और आलोचकों ने अपनी अलग अलग राय दी है लेकिन प्राय सभी ने यह अवश्य घोषित किया है, कि इसे 'गीत'[1] नहीं कहना चाहिए क्योंकि कहीं-न-कहीं 'गीत' शब्द परम्परित चौखटे की गंध देता है और इस तरह उसमें उसकी नवीनता का बोध नहीं हो पाता अतः इस नव्य बोध के लिए गीत को नयी संज्ञाओं से अभिहित किया गया।

सियारामशरण प्रसाद ने गीत के इस नये स्वर को 'आज का गीत'[2] कहा तो बालस्वरूप राही[3] और शलभसिंह[4] ने इसे 'नया गीत' कहना पसन्द किया। गंगाप्रसाद विमल[5] और ओंकार ठाकुर[6] इसे 'आधुनिक गीत' की संज्ञा से अलंकृत करते नजर आए तो रामदरश मिश्र[7] ने सियारामशरण की ही भाषा में इसे 'आज का गीत' कहना अधिक पसन्द किया लेकिन उन्होंने जब इस विषय पर निबन्ध लिखा तो 'आज का गीत' उनकी कलम से 'नये गीत'[8] के रूप में अन्तर्निहित हो गया। अन्त में राजेन्द्रप्रसाद सिंह द्वारा इस गीत विधा को एक नया शीर्षक मिला—नवगीत[9]। अपनी 'गीतांगनी' के सम्पादकीय में राजेन्द्रप्रसाद सिंह ने न केवल इस शब्द का प्रयोग किया बल्कि अपने सहयोगियों के समन्वित प्रयास से इस नवगीत को आधुनिकता का सन्दर्भ, बिम्ब और उसकी तात्त्विकता के आधार पर विवेचन-विश्लेषण भी किया। अन्ततः अपनी संक्षिप्तता और अभिनवता के कारण नवगीत प्रचलित हो गया और सन् १९५० के बाद लिखे जाने वाले गीतों को 'नवगीत' की संज्ञा दी जाने लगी।

गीत की इस नयी प्रवृत्ति को 'आज का गीत' कहा जाए, अथवा 'नया गीत', 'आधुनिक गीत' कहा जाए अथवा 'नवगीत'—समस्या यह नहीं है बल्कि विचार-

•णीय यह है कि गीत से पूर्व के ये सम्बोधन सज्ञा हैं अथवा विशेषण, मूल्य है अथवा •प्रक्रिया। दुर्भाग्य से इन पूर्व शब्दो को सज्ञा अथवा मूल्य माना जाने लगा है और गलती यही से शुरू होती है। थोडा विवेक से सोचा जाए तो हर बदलते युग का काव्य अपने समय मे आज का होता है, नया होता है, आधुनिक होता है अथवा 'नव' होता है लेकिन परिस्थिति बदलते ही वह अपनी आन्तरिक और बाह्य लय को तोडता हुआ पुन फिर आज का, नया, आधुनिक अथवा 'नव' बन जाता है। जाहिर है, कि ये शब्द परिस्थिति सापेक्ष्य एक विशेषण तो बन सकते है अथवा इन्हे प्रक्रिया तो कहा जा सकता है किन्तु सज्ञा अथवा मूल्य की घेरेबन्दी मे नही बाधा जा सकता। और दुर्भाग्य से यदि ऐसा होता है तो उसके पीछे अवश्य कोई निहित स्वार्थ होता है जमने जमाने की चाल होती है अन्यथा यह कभी नही हो सकता कि कहानी को नई कहानी का नारा देने वाले, उसका मूल्य मानने वाले कमलेश्वर को अन्तत यह कहना पडता है—"कहानी ने एक बार फिर अपनी मुक्ति का अहसास किया है। अच्छा है कि यह मुक्ति किसी आन्दोलन का नाम अख्तियार नही कर रही है, आन्दोलनो और प्रति-आन्दोलनो से ऊबी हुई कथा-चेतना अब अपनी दृष्टि-सम्पन्नता के साथ ही आत्मबोध से आप्लावित है।"[१०]

लेखक द्वय का मत भी यही है कि गीत चेतना अपनी दृष्टि सम्पन्नता और आत्मबोध से ही आप्लावित रहे और नामो के व्यामोह से जहा तक सम्भव हो मुक्त रहे, अन्यथा इसकी भी नियति अन्तत वही होगी जो कहानी की हुई है।

युग सापेक्षता

अपनी समान प्रक्रिया और विशेषण के बावजूद नवगीत और नयी कविता अपनी दृष्टि सापेक्षता को अभिनव छन्दो मे कहते हैं। और नयी कविता छन्दमुक्त होकर अपना इजहार करती है। कहना न होगा, कि अपनी दृष्टि-बिम्ब मे नव-गीत माना भेद से नयी कविता के ही समानान्तर है। इसकी सापेक्ष्यता पर विचार करते हुए शम्भूनाथ सिंह[११], डॉ० विजयेन्द्र स्नातक[१२] तथा डॉ० रवीन्द्र भ्रमर[१३] आदि ने अलग-अलग ढग से विचार किया है किन्तु उनकी केन्द्रीय धारणा यही है कि नवगीत नाम नयी कविता के वजन पर ही आया है जिसम आधुनिक कविता को, गीतो को व्यतीत जीवी भाव बोध और बासी शैली शिल्प म लिखे जाने वाली लम्बी कतार से आधुनिक गीतो को अलग किया जा सकता है। लेकिन जैसा ऊपर कहा गया है कि यह आधुनिकता अथवा नयापन महज प्रक्रिया है मूल्य नही, इसे रेखाकित करना होगा। इस सन्दर्भ मे डॉ० इन्द्रनाथ मदान आधुनिकता की चुनौती को सतत् स्वीकार करन के लिए 'नव' शब्द की अनिवार्यता स्वीकार करते हुए जोर देकर कहत है कि—'लकिन छायावाद के बाद की कविता म आधुनिकता की चुनौती की स्वीकृति अधिक है, अस्वीकृति कम। उत्तर

छायावादीकविता मे जब कभी इस प्रक्रिया मे गतिरोध आया है तब कविता को या तो नये वाद से पुकारा गया है या इसे अपने से नया नव शब्द जोडना पडा है, इसमे प्रक्रिया एक ही है, चुनौती आधुनिकता की ही है।"'यहा तक कि गीति काव्य भी नये नाम की खोज मे, नवगीत।'[१४] प्रक्रिया की इस अनिवार्यता को समझते हुए ही शायद विष्णुकान्त शास्त्री ने नवगीत आन्दोलन के सम्बन्ध मे यह लिखा था कि "नव विशेषण एक तरफ सन्निकट अतीत एव वर्तमान के सस्ते रोमानी गीतो से अपनी पृथक्ता और दूसरी तरफ नवीन साहित्य-चेतना से अपनी सम्पृक्तता घोषित करता है। नयीकविता, नयीकहानी के वजन पर नया गीत सज्ञा के स्थान पर 'नवगीत' सज्ञा की स्वीकृति सम्भवत नवगीतकारो के अवचेतन मानस म सक्रिय छायावादी सस्कार की सूचिका है जिसम बालचाल की सपाट भाषा के ऊपर कोमलकान्त पदावली को वरीयता दी जाती रही।"[१५]

सक्षेप मे, 'नवगीत' शब्द का प्रयोग चाहे आधुनिकता की चुनौती के रूप मे हो या 'व्यतीत भाव-बोध तथा बासी शैली-शिल्प' की विभिन्नता का प्रकट करने के लिए हो अथवा नयीकविता, नयीकहानी, नयीआलोचना के समक्ष इस 'नव' शब्द को व्यवहृत किया गया हो अथवा गीत की प्रतिष्ठा की पुर्नस्थापना के रूप मे, किन्तु इसमे इकार नही किया जा सकता कि उलझी हुई परिस्थितियो मे, इतिहास की सीमाओ और भाषा की असमर्थता को देखते हुए समकालीन साहित्य म नये बोध, नए विचारो, नई सवेदनाओ को विशिष्टताओं को प्रतिष्ठित करने के लिए 'नव' 'नया' 'नई' जैसे सम्बोधन सुविधाजनक होने के साथ साथ युग-सापेक्ष्य थे। अत इस 'युग-सापेक्ष्यता' 'नूतन भाव बोध', और बौद्धिक चिन्तन को देखते हुए उसे 'नवगीत' की सज्ञा देना उचित था। युगानुरूप नई चेतना एव स्फूर्ति के आधार पर भी 'नवगीत' अभिधान ही सर्वाधिक ग्राह्य था, यह बात और है कि गीत का यह नामकरण सस्कार अपनी मूल प्रवृत्ति मे प्रक्रिया भर है, मूल्य नही।

इतिहास-बोध

छायावाद के बाद युगीन परिस्थितियो ने काव्य की विभिन्न प्रवृत्तियो को जन्म दिया—वैयक्तिक, प्रगतिवादी, राष्ट्रीय-सास्कृतिक तथा प्रयोगवादी। प्रयोगवाद का यही विकसित रूप 'नयी कविता' है। नयी कविता के अन्तर्गत एव समानान्तर कुछ ऐसे गीतो की रचना हुई जो प्राचीन परम्परा के प्रति रूढ न होकर उससे वैभिन्न्य लिये हुए थे। इन गीतों की विशिष्टता थी—इनकी रचना प्रक्रिया, इनका युग-बोध और उनका सहज, सरल, सरस भाषा मे अभिव्यक्तिकरण।

प्रश्न उठता है कि इन नवीन क्षितिजो, नये आयामो के उद्बोधक नवगीतो

का आविर्भाव कब, क्यों और कैसे हुआ ? पहले-पहल छायावाद के अन्तर्गत महाप्राण निराला ने परम्परागत गीतों के वस्तु, कथ्य एवं शिल्प में, गीति-विधा के विकास की असमर्थता एवं अशक्तता का अनुभव कर गीतों के शिल्पिक-विधान का पुनसस्कार कर गीतों की खोई हुई प्रतिष्ठा का पुनर्स्थापन किया था। निराला के पद चिह्नों का अनुसरण करते हुए आगे आने वाले गीत-कारो की आत्मा भी गीतो को नई चेतना से अनुप्राणित करने के लिए सततशील थी। छायावाद के उपरान्त जिस प्रगतिवादी चिन्ताधारा का उदय हुआ उसमे यद्यपि बौद्धिकता का समावेश अधिक था और सम्भवत इसी कारण कविता उथलेपन का शिकार हो गई थी लेकिन इस तथ्य को नकारा नही जा सकता कि बावजूद इसके प्रगतिवादी कवियो मे भी गीत को नया साज और आवाज देने की छटपटाहट पूरी तरह विद्यमान थी। शायद इसी का शुभ परिणाम है कि प्रगति-वादियो से यथार्थ की नई जमीन लेकर, प्रयोगवाद म गीत अपने नये बिम्ब लेकर, भाषा की नई ताजगी लेकर, जन जीवन के निकट आये थे। धर्मवीर भारती, केदारनाथ सिंह, गिरजाकुमार माथुर आदि प्रयोगशील कवियो ने गीत-जगत् को निश्चित रूप से श्रेष्ठ और अभिनव गीत प्रदान किए हैं।

बदलती हुई मानव दृष्टि के इस बौद्धिक युग मे गीतकार को 'काल्पनिक वायवीय और अतीन्द्रिय' के रथ से उतर 'भैंसा गाडी' मे सवार होना पडा। छायावाद की अप्सराओं से दृष्टि फेर कवि की आत्मा 'किसान की नई बहू की आखो में' अपनी विषय वस्तु खोजने लगी। आधुनिक मानव जिस समाज का 'व्यक्ति' है उसमे विघटन, विसगति और आत्म प्रवचना के प्राबल्य के कारण गीतो मे दु ख और विषाद का भाव भरा जान लगा, लेकिन इससे गीत की स्थिति 'त्रिशकु' जैसी हो गयी क्योंकि गीत न तो 'समाज के स्पन्दन का उद्-घोषक' रहा और न ही व्यक्ति के मानसी आलोडन का साक्ष्य ही।' परि-णामत महिमामय गीत केवल उर्दू के मुशायरे का अनुकरण मात्र रह जाने से अपनी गरिमा और साहित्यिक-मूल्य से वचित हो गया। किन्तु बच्चन के कुछ समकालीन गीतकारो के प्रयत्नो से 'गीत' की स्थिति 'मुशायरे' से उभरकर 'मुजरे' तक पहुच गयी। एक ओर 'आज काशी मे मेरा कोई खरीदार नही' जैसी रचनाए प्रतिष्ठित होने लगी तो दूसरी ओर उर्दू गजल और नज्म से प्रभावित गीत-रचनाए लोकप्रिय हुई किन्तु गीत की आत्मा नवीन सवेदनाओ के परिप्रेक्ष्य मे इस तीव्र प्रवाह को झेलन मे असमर्थ हो 'नान सीरियस' विधा बनकर रह गयी। हिन्दी साहित्य मे प्रचलित 'ग्राम-अभिप्राय' और 'आचलिक परिवेश' से भी 'गीत' की प्रकृति का सामजस्य न हो पाने के कारण यह गीत परिवर्तित वस्तु सत्य एव नवीन सौन्दर्य बोध से बहुत दूर हो गये। वास्तविकता तो यह है कि जीवन के मूल्यो मे परिवर्तन होने स गीतो मे परिवर्तन अवश्यम्भावी था किन्तु छायावादी,

वैयक्तिक या प्रगतिवादी कवियों की 'तात्विक भ्रांति' के परिणामस्वरूप कृतियां एक ही परिपाटी की अनुयायी होकर आयी थी। उस 'तात्विक भ्रान्ति' का परम्परित गीति क्षेत्र मे अभाव था। इसलिए गीतो मे आधुनिक मूल्य-बोध और आधुनिक सवेदना के सामजस्य की अपेक्षा व्यर्थ थी। इसी कारण ऐसे गीतो मे एकरूपता का बोलवाला था। क्या शब्द और अर्थ, क्या भाव और विचार और क्या अभिव्यजन प्रणाली—सभी मे अजीब साम्य होने से गीत की मौलिकता पर आलोचको का प्रश्नचिह्न लगाना स्वाभाविक था। जो गीत कवि की आत्मा का सहज स्फुरण था अब मात्र 'यान्त्रिक-रूढि' बनकर रह गया। काव्य की महत्त्वपूर्ण गरिमामय यह गीति-विधा 'रीति' बन गई। अधिकाश गीतो मे यही प्रक्रिया परिलक्षित होती है। ऐसे बधे-बधाये जड रूपाकारो मे, स्वीकृति सवेदना तथा स्वीकृत विषय वस्तु ही अधिकतर प्राप्त होती है, अत उनमे स्वय माध्य अनुभूति का अभाव हो जाता है। कल्पनाजन्य भावभूमि, रूढिगति तापहीन निर्वैयक्तिक भाषा, सतही सवेदना और मर्म के सूक्ष्म स्तरो तक जाने वाली दृष्टि के बदले नाजुक ख्याली से गीतो की परिपाटी खोखली हो गई।"[1]

बदलते हुए परिवेश मे इस पुरानी गीत-गागर का न तो बाह्य रूप ही आकर्षक लग रहा था और न ही अतिरिक्त बौद्धिकता के कारण विषय वस्तु की गम्भीरता पाठक/आलोचक को रास आ रही थी। ऐसी परिस्थितियो मे उसका कुण्ठित और दमित होना आश्चर्यजनक नही। प्रयोगवाद के 'प्रवर्तक' अज्ञेय द्वारा गीत को 'गतानुगतिक रचना' कह देने से गीतकारो ने गीत लिखना लगभग छोड दिया था। उन्हे ऐसा आभास हुआ कि कवि का कर्म केवल कविता करना है और अगर कविता के इतर 'गीति' की सर्जना की तो कवि से निकृष्ट श्रेणी म परिगणित होने लगेंगे। ऐसी स्थिति म 'गीत' की स्थिति बहुत ही विकट और शोचनीय हो गयी थी। जहा कवियो ने गीत की सर्जना बन्द की वही प्रतिष्ठित पत्रिकाओ ने गीतो के प्रकाशन पर पूर्णविराम सा लगा दिया। ऐसी स्थिति मे 'गीत' को अत्यधिक सामर्थ्य और सशक्तता की आवश्यकता थी, जिससे वह अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुन प्राप्त कर सके। प्रयोगवाद मे गिरजाकुमार माथुर, केदारनाथ सिंह जैसे सशक्त गीतकारो के सत्प्रयत्नो से निर्जीव, निष्प्राण और मृत प्राय 'गीत' धारा मे कुछ जान आई। उन्होने गीतो को कविता का कठिनतम माध्यम कह कर गीत का जन्म उस भाषातीत गूज से माना जो कविता करने के उपरान्त बच जाती है। उनके ही प्रयासो का परिणाम था कि गीत आलोचको मे पुन चर्चा का विषय बना।

'नवगीत' को साहित्यिक चर्चा का विषय सर्व प्रथम सन् १६५१-५२ मे माना गया। 'सन् १६५१-५२ म काशी मे हुए साहित्यिक सघ के अधिवेशन मे हिन्दी के नये गीतो पर चर्चा हुई थी। चादनी रात मे गगा की धारा पर हुई

नौका-गोष्ठी में उस दिन भारती, नरेश मेहता, जगदीश गुप्त, रामदरश मिश्र, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, शम्भूनाथ सिंह, नामवर सिंह तथा अन्य कितने ही नये कवि उपस्थित हुए। लगभग सभी कवियों ने अपने नये से नये गीत सुनाए थे। काल की तरंग में यह पूरी रात बहकर किसी अनजाने घाट से लग गयी।"[१७] सन् १९५१-५२ में नये गीतों पर हुई चर्चा सम्भवतः एक घटना थी, कार्यक्रम नहीं। अन्यथा ऐसा न होता कि आगे के सालों में गीत-परम्परा इतनी उपेक्षित रह जाती कि सन् ५५-५६ के प्रयाग अधिवेशन में कविता के संदर्भ में नये गीतों की चर्चा न हो। यद्यपि प्रयाग अधिवेशन के समय नयी कविता के विवेचन पर आयोजक कृपावश तैयार हो तो गए लेकिन जब गम्भीरतापूर्वक नयी भाषा और शैली के प्रश्न पर विचार करने की बात उठी तो जहां किसी एक खास शहर की एक साधारण गली के लुहारों और सुनारों की भाषा को लेकर घण्टों चर्चा होती रही वहां नये गीत के अवदान पर विचार करने की आवश्यकता भी न समझी गयी।' इस अभाव को महसूस करते हुए सन् १९५७ में इलाहाबाद के साहित्यकार-सम्मेलन की कविता-गोष्ठी में वीरेन्द्र मिश्र ने 'नयी कविता, नया गीत मूल्यांकन की समस्याएं' नामक अपना निबन्ध-लेख पढ़ा। उन्होंने घोषणा की—"हिन्दी में नये गीत का जन्म हुआ है। यह नया गीत फार्म और कण्टेण्ट दोनों ही पक्षों में समृद्ध हुआ है। यह विचारणीय है कि आज की विक्षिप्त साहित्यिक काव्य-शैलियों की चकाचौंध में कहीं हम गीत की दशा में सम्पन्न हो रहे प्रयोगों तथा जागरूक विचारशक्ति को भुलाए नहीं दे रहे हैं।"[१८]

इस सम्मेलन के उपरान्त ५ फरवरी १९५८ में राजेन्द्रप्रसाद सिंह ने गीतांगिनी के सम्पादकीय में गीतों के नये भाव-बोध और इसके स्वरूप पर विचार करते हुए कहा —"समकालीन हिन्दी कविता की महत्वपूर्ण और महत्त्वहीन रचनाओं के विस्तृत आन्दोलन में 'गीत परम्परा' 'नवगीत' के निकाय में परिणति पाने को सचेष्ट है। 'नवगीत' नई अनुभूतियों की प्रक्रिया में संचयित मार्मिकता, समग्रता का आत्मीयतापूर्ण स्वीकार होगा, जिसमें अभिव्यक्ति के आधुनिक निकायों का उपयोग और नवीन प्रविधियों का संतुलन होगा। इस स्थापना का आभास उन पांच तत्त्वों (जीवन-दर्शन, आत्म निष्ठा, व्यक्तित्व बोध, प्रीति-तत्त्व और परिसंचय) के समकालीन साक्षात्कार से हो सकता है, जो नवगीत का स्वरूप रचने में सचेष्ट हैं।[१९]

गीतांगिनी के प्रकाशन से 'नवगीत' की सृजन-प्रक्रिया ही आरम्भ नहीं हुई बल्कि 'नवगीत' उपयुक्त अभिधान के साथ ही हिन्दी साहित्य में प्रतिष्ठित होने लगा था लेकिन पुराने के उखड़ने और नये के जमने के बीच का संघर्ष जारी था। इस संघर्ष के दौर का प्रारम्भ 'वासन्ती' पत्रिका १९६० के प्रकाशित होते ही हुआ, जिसमें शम्भूनाथ सिंह, गिरिजा कुमार माथुर, त्रिलोचन शास्त्री, रामदरश

मिश्र, वीरेन्द्र मिश्र, रवीन्द्र भ्रमर आदि के निबन्ध प्रयत्न ने इसके उचित मूल्यांकन का आह्वान किया। इसी समय डा० शिवप्रसाद सिंह की टिप्पणी 'गीत कविता के प्रति ऐसी वक्र भृकुटि क्यो ?' शीर्षक से 'वासंती' पत्रिका में प्रकाशित हुई। इसी से प्रेरित होकर १६६२ (वासन्ती-पत्रिका) मे 'नये गीत-नये स्वर' नामक एक लेख माला का प्रकाशन हुआ जिसमे सभी नवगीतो के गतिशील आदोलन का अभिनन्दन किया गया। १६६४ मे नवगीत का समवेत सकलन ओम प्रभाकर और भागीरथ भार्गव के सम्पादकीय निरीक्षण मे प्रकाशित हुआ। इसमें 'नवगीत' के 'इतिहास' 'विशिष्ट व्यक्तित्व', 'उपलब्धि', और 'सम्भावनाओं पर आकलित निबन्ध थे। इनके प्रकाशित होते ही 'नवगीत' वैचारिक धरातल पर प्रतिष्ठित हो गया। इसे नवगीत के 'तार सप्तक' की सज्ञा दी गई थी। इसकी प्रस्तुति मे नवगीत को लेकर कई महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाये गये। 'नवगीत क्या है ?' उसका आविर्भाव कब से है ? क्या उसकी कोई ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी है ? नवगीत नामधेय इस काव्य-विधा का क्या कोई स्वतन्त्र-व्यक्तित्व भी है ? इसकी उपलब्धि क्या है ? इसके सर्जक कौन व कितने हैं ? नवगीत नयी कविता और गीत से कहा अलग है कितना सम्बद्ध ? और यह भी कि आधुनिकता 'ससक्ति' की उसमे कितनी सामर्थ्य है ? आदि प्रश्नो, जिज्ञासाओ का यथोचित उत्तर सकलन के नवगीत और निबन्ध दे सकेंगे—ऐसी आश्वस्ति हम है।[१०] अत सभी आलोचक एव गीतकार गीत की अनिवार्य आवश्यकता पर बल देन लगे और आह्वान किया गया कि 'नयी कविता लिखते हुए भी मुझे कुछ ऐसा अनुभव होता है कि कुछ ऐसा छूट गया है जो गीत के माध्यम से व्यक्त होने के लिए आकुल है।'[११]

गीतो की बदलती हुई दिशा और इस आदोलन के स्वर को स्वीकृति देते हुए बीकानेर की 'वातायन' मासिक पत्रिका के सम्पादक श्री हरीश भादानी ने १६६४, १६६५, १६६६ तीन वर्ष तक एक-एक 'गीत अक' प्रकाशित किये। १६६५ के 'वातायन' गीत-अक मे डॉ० रमेशकुन्तल मेघ ने नवगीत' को "इतिहास-बोध के परिवर्तन से सयुक्त कर उसमे आगत बदलाव को इतिहास का अनिवार्य सन्दर्भ" सिद्ध किया है। डॉ० महावीर दाधीच ने अपनी विशिष्ट शैली मे नवगीत की नवीनता, मौलिकता तथा गीत-परम्परा को समञ्जित करने का प्रयास किया है। नवगीत के सम्बन्ध मे परिव्याप्त कुछ प्रश्नो का समाधान इसी गीत अक मे रवीन्द्र भ्रमर ने किया।[१२] १६६६ के 'वातायन' के गीत-अक मे प्रकाशित डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने अपने लेख—' आधुनिक गीत और नवीन युग बोध" मे नवगीत के वैशिष्ट्य की ओर सकेत किया।

नवगीत का यह आन्दोलन 'कविता १६६४' के पश्चात् मात्र अपनी पहचान का आन्दोलन न रहकर उपलब्धि और सम्भावना का आदोलन बन गया। सन् १६६४ मे लखनऊ की मासिकी 'उत्कर्ष' ने 'मेरा अपना आकाश' नाम के नये

स्तम्भ मे उदीयमान नवगीतकारो के गीतो को समय-समय पर प्रकाशित किया।

'गीत' नामक पत्रिका (१९६५) ने नयी धारा के गीतकारों के आत्म-वक्तव्य तथा आलोचको की गीत-सम्बन्धी मान्यताओ को एक साथ प्रकाशित किया। इसके सम्पादक द्वय दिनेश सक्सेना 'दिनेशायन' तथा भूपेन्द्र स्नेही ने 'गीत के नये रूप' की घोषणा करते हुए कहा—"नयी पीढी के हाथों ही गीत नया रूप ले रहा है। ये वे हाथ हैं जो गीतो को साँचा मे नही ढाल रहे, उसे नये नये रूपों मे तराश रहे हैं। ये वे स्वर हैं जो लोकगीतो की अनुगूज बनकर ही नही रह गये, जिन्होंने भारत के औद्योगिक केन्द्रो मे मनुष्यता की आवाज लगायी है।"[१] प्रस्तुत वक्तव्य मे भले ही आलोचक का अनुशासन न हो लेकिन यह कहना होगा कि विचारो मे रोमानियत के बावजूद कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य सकेत—लोक गीतो की अनुगूंज, औद्योगिक केन्द्रो मे मनुष्यता की आवाज—अवश्य मिलते है। इसी सम्पादक द्वय ने सन् १९६७ म 'गीत-२' अक निकाला जिसमे प्रकाशित डॉ० हरिवश राय बच्चन, डॉ० नामवर सिंह, डॉ० रामदरश मिश्र, डा० रवीन्द्र भ्रमर, बालस्वरूप राही एव शलभ श्री रामसिंह के लेख ने 'नवगीत' के विभिन्न पहलुओं को नवीन दृष्टि से प्रतिस्थापित किया है।

जनवरी १९६७ मे 'लहर' पत्रिका मे ओम प्रभाकर तथा वीर सक्सेना के दो लेख 'सवाल नवगीत का' तथा 'नवगीत समानान्तर स्थापना और उभरते प्रश्न चिह्न' नवगीतो के मूल्याकन का मार्ग प्रशस्त करते हुए प्रकाशित हुए। 'नवगीत' के पक्ष और विपक्ष के प्रस्तुत-कर्त्ता तथा नवगीत के स्वरूप विकास को स्पष्ट करते हुए लेख प्रकाशित हुए—इलाहाबाद से नि सृत पत्रिका 'माध्यम' मे। नवम्बर १९६४ के इसके अक मे वीरेन्द्र मिश्र ने 'हिन्दी नवगीत' नामक लेख मे 'नवगीत' के आविर्भाव का अभिनन्दन किया किन्तु मई, १९६५ मे सकलदीप सिंह ने 'नवगीत बनाम भावुकता का अन्तिम दौर' लेख प्रकाशित कर गीति आदोलन को झुठलाने का असफल प्रयास किया। माध्यम के जुलाई १९६६ के अक मे गोपी कृष्ण शुक्ल का 'नवगीत कुछ आधारिक बातें' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ जिसमे नवगीत की प्रवृत्तियो को एक सूत्र मे बाधने का सराहनीय प्रयास किया गया है। अप्रैल १९६७ मे गीत तथा सगीत के सम्बन्धो को दृष्टि मे रख 'गीत और सगीत : अनुभूति तथा ध्वनि' नामक लेख प्रकाशित हुआ। जनवरी १९६८ मे उदयभान मिश्र का एक विवादास्पद 'लेख नयी कविता बनाम नवगीत' मे नयी कविता और नवगीत के सम्बन्ध-सूत्रो को स्थिर करने का प्रयास किया गया। ज्योत्स्ना[३], आजकल,[४] कल्पना,[५] ज्ञानोदय,[६] लय,[७] मूल्याकन,[८] सम्बोधन,[९] नीरा,[१०] शताब्दी,[११] नयी धारा,[१२] राष्ट्रवाणी,[१३] साहित्य परिचय,[१४] वातायन[१५] ने नवगीत के स्वरूप, रचनात्मक-विधान पर लेख प्रकाशित कर गीत-साहित्य को समृद्धि प्रदान की।

धर्म युग

धर्म युग मे सर्वप्रथम बालस्वरूप राही,[१०] नीरज[११] तथा वीरेन्द्र मिश्र[१२] के गीत तथा उनकी गीत सम्बन्धी विचारणा प्रकाशित हुई। नये गीत हस्ताक्षर[१३] के माध्यम से उभरते हुए गीतकारो को प्रोत्साहित किया गया। डॉ० रवीन्द्र भ्रमर का लेख 'समकालीन हिन्दी कविता का एक अनिवार्य सन्दर्भ नवगीत'[१४] मे नवगीत के उद्भव तथा विकास की विभिन्न दिशाओ को उद्घाटित करते हुए उन्होने नवगीत को समकालीन हिन्दी कविता का एक अनिवार्य सन्दर्भ घोषित किया। 'नया गीत' शीर्षक लेख मे 'नवगीत' की रचना-प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया।[१५] दो वर्ष पश्चात् विष्णुकान्त शास्त्री द्वारा प्रणीत 'गीत और नवगीत' लेख दो किश्तो मे प्रकाशित हुआ जिसमे उन्होने गीति-परम्परा का विवरण देते हुए नवगीत के 'स्वतन्त्र अस्तित्व'[१६] की ओर भी सकेत किया है। १८ और २५ अप्रैल १९८२ के अको मे छपे डॉ० विश्वनाथ प्रसाद के 'हिन्दी नवगीत और नवगीतकार' शीर्षक लेखो ने नवगीत पर बहस को आगे बढाया।

साप्ताहिक हिन्दुस्तान

'नवगीत' विधा को विकसित करने का प्रथम चरण नीरज द्वारा प्रणीत 'प्रश्न चिह्नो की भीड मे घिरा गीत'[१७] लेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उन्होने नवगीत के स्वरूप को नवीन परिप्रेक्ष्य मे देखने का प्रयास किया है। शचीन्द्र भटनागर का लेख 'आधुनिक गीत का छद विधान'[१८] गीत के शिल्प-पक्ष को उजागर करता है। 'आधुनिक गीत और नवीन युगबोध' शीर्षक से डॉ० विजयेन्द्र स्नातक का एक महत्त्वपूर्ण लेख अप्रैल १९६६ मे प्रकाशित हुआ था जिसमे उन्होने युग सन्दर्भ के परिप्रेक्ष्य मे गीत की रचना धर्मिता पर विचार करते हुए नवगीत और नवगीतकारो को सचेत करते हुए निष्कर्ष दिया था कि यदि "नवगीत अपने रागात्मक, सवेदनात्मक एव रजनात्मक रूप को छोडकर दुर्बोध अभिव्यक्तियो के फेर मे पडेगा तो निश्चय ही वह नयी कविता के समीप खडा हो जाएगा।"

चर्चा परिचर्चा एव गोष्ठियों का आयोजन

'प्रज्ञा' सस्था (दिल्ली) द्वारा आयोजित एक सगोष्ठी ७ जनवरी १९६६ मे उदयभानु मिश्र द्वारा पढे गये गीत, नयी कविता के गीत और नवगीत सम्बन्धी लेखो पर चर्चा हुई। इस सगोष्ठी मे डॉ० रामदरश मिश्र और मुद्राराक्षस ने भाग लिया। गोष्ठी मे नवगीत के मिजाज को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया।

नवगीत' विषय पर कलकत्ता मे दो विचार-गोष्ठियो का आयोजन सन् १९६६ के मध्य मे किया गया था जिसमे डॉ० बच्चनसिंह, डॉ० विद्यानिवास

मिश्र, डॉ० रवीन्द्र भ्रमर, ओमप्रभाकर, शलभ श्रीरामसिंह, श्री भवरलाल सिंधी, प्रो० कल्याणमल ओढा, प्रो० विष्णुकान्त शास्त्री तथा चन्द्रदेव सिंह[६] आदि ने भाग लिया।

'साहित्यिकी' संस्था (दिल्ली) द्वारा १६ अप्रैल से २३ अप्रैल तक 'पाच काव्य सन्ध्याओ' का समायोजन किया गया था। इस कार्यक्रम के चौथे दिन श्री रामानन्द दोषी की अध्यक्षता मे 'गीत-गोष्ठी' सम्पन्न हुई। इस अवसर पर बाल-स्वरूप राही और डॉ० रवीन्द्र भ्रमर ने 'नवगीत' विषयक निबन्ध पढे।

'नवगीत-आन्दोलन' से बम्बई नगरी भी असम्पृक्त न रह सकी। डॉ० धर्मवीर भारती की अध्यक्षता मे 'रगायन' संस्था द्वारा २६ अप्रैल १९७० को 'युगीन सन्दर्भ और हिन्दी गीत' विषय पर एक परिचर्चा हुई जिसमे गिरिजाकुमार माथुर, ठाकुरप्रसाद सिंह, शम्भूनाथसिंह, चन्द्रसेन विराट् तथा राममनोहर त्रिपाठी भी उपस्थित थे।

इसी प्रकार की गोष्ठिया पटना और अलीगढ[७] मे भी हुई जिनका एकमात्र उद्देश्य 'नवगीत' के रचनात्मक स्वरूप की चर्चा करना ही था।

गीत-संकलन

जहा 'नवगीत' काव्य-विधा को पत्र-पत्रिकाओ, विचार गोष्ठियो, चर्चा-परिचर्चाओ ने स्वतन्त्र-व्यक्तित्व प्रदान करने मे सहयोग दिया, उसी प्रकार नवगीत के समर्थक, सहयोगी तथा गीतकार इसके सृजनात्मक पहलू को सकलन के रूप मे प्रस्तुत करने के आकाक्षी थे। वह प्रयत्न दो दिशाओं में हुए। प्रथम कवियो के अपने स्वतन्त्र नवगीत सकलन जिनमे रवीन्द्र भ्रमर के गीत, वीरेन्द्र मिश्र कृत 'अविराम चल मधुवती' बालस्वरूप राही कृत, 'जो नितान्त मेरी है' ओम प्रभाकर कृत 'पुष्प चरित' तथा रमेश रजक का 'हरापन नही टूटेगा' आदि सग्रह अधिक प्रसिद्ध है। दूसरा प्रयत्न था कुछ नव-गीतकारो के समवेत सकलनो का जिसमे 'कविता' १९६४ (राजस्थान) 'गीत' (सख्या १, २) १९६५ और १९६७ तथा पाच जोड बासुरी (स० चन्द्रदेव सिंह १९६९) इसी परम्परा को विकसित करते हैं।

२ परम्परा से वैभिन्न्य

नवीन-गीत-प्रयोग तो काव्य के प्रत्येक क्षण की प्रकृति है किन्तु कब और किस समय वह 'नवीन-प्रयोग' साहित्य की लीक से हटकर नई सज्ञा प्राप्त कर ले—इसके विषय में कुछ निश्चित नही कहा जा सकता। इसमे सन्देह नहीं कि जिन मान्यताओ के आधार पर हमारे आचार्यो ने 'गीत' को परिभाषित किया था उन मान्यताओं मे बहुत वैभिन्न्यता रखने वाला छायावादी गीत है। इसी प्रकार युगीन-सन्दर्भ मे छायावाद और नवगीत मे भी अन्तर आया है। यह

सत्य है कि नवगीत से पूर्व हुए गीत प्रयोगो को 'नवगीत' जैसी सज्ञा से अभिहित नही किया गया। भले ही, इस तथ्य से इकार नही किया जा सकता कि अपनी पूर्व परम्परा में वे नये अवश्य थे। सम्भवत इसका कारण गीतो के आदोलन के स्वरूप' का अभाव रहा हो। नवगीत प्राचीन गीतो के परम्परा भजक रूप मे प्रसिद्ध हो गए। इस उभरते हुए गीत-आदोलन ने आलोचक-समीक्षको को अपना मूल्याकन एक नये रूप, नये तेवर और नये अन्दाज म करने पर विवश किया है। कालान्तर मे इन्ही गीतो को नये रूप, नयी दृष्टि और नयी भगिमा के आधार पर 'नवगीत' सज्ञा से व्यवहृत किया गया। नवगीतो मे न-तो छायावादी कल्पना लोक की रमणीयता है और न ही आध्यात्मिक रहस्य भाव-बोध। मार्क्सवाद या प्रगतिवाद की तरह नवगीत राजनीतिक प्रचार का माध्यम नही बने। इन गीतकारो ने हर सम्भव कोशिश की है कि वह वैयक्तिक प्रणय की यथार्थोन्मुख धारा से मुक्त रह। राष्ट्रीय सास्कृतिक काव्यधारा की भाति नवगीतकारो न मिथ्या गौरव, प्रशस्तियो की झूठी-सच्ची नामावली प्रस्तुत नही की। यद्यपि नवगीत का जन्म प्रयोगवादी गीतकारो की शक्ति और सम्मति से हुआ है किन्तु नवगीत 'प्रयोगशील गीत' का पर्याय कभी नही बन पाया। इसका जन्म तो मचीय गीतो की भोंडी भावुकता तथा मुशायरो के मुजरा का रूप धारण करन, परम्परा का अन्ध सहयात्री बनने की प्रतिक्रियास्वरूप हुआ था। वस्तुत नवगीत प्राचीन गीति-परम्परा का अगला किन्तु ठोस, मौलिक चरण है। युगीन परिस्थितियो के परिप्रेक्ष्य मे भल ही यह परम्परा भजक हो गया हो किन्तु इसका मूल एव ठोस त तु प्राचीन परम्परा से समन्वित अवश्य है। इन नवगीतो की महती उपलब्धि है कि इन्होने गीत को 'उपकरण' की अपक्षा साध्य की भूमिका के रूप मे प्रस्तुत किया। पिछले पृष्ठ पर स्वतन्त्र अस्तित्व' की बात कही गई है। प्रत्येक नवगीतकार का 'स्वतन्त्र अस्तित्व' है, जो दूसर ने अनुशासित नही होना चाहता। यही कारण है कि इन गीतो म दूर तक सूत्रताया परस्पर सम्बद्धता नही मिलती। इन्ही उपकरणो ने नवगीत को परम्परा-भजकका रूप प्रदान किया है।

छायावाद और नवगीत

छायावादी गीतो का रचना वैभव मूलत भारतीय कम और पाश्चात्य लिरिक परम्परा का छायानुवाद अधिक था। क्योकि पहले-पहल इस पाश्चात्य लिरिक परम्परा का प्रभाव बगला भाषा पर पडा। इसलिए कहना यू चाहिए कि हिन्दी की छायावादी कविता पाश्चात्य प्रभाव को बगला के माध्यम स आयातित करके लायी। जबकि नवगीत मे यह शिकायत कम है। यह कहना तो कठिन है कि इन पर पाश्चात्य प्रभाव पडा ही नही लेकिन वह यदि हो भी तो अत्यधिक न्यून

इसलिए लगता है कि नवगीत अपनी जमीन पर खड़ा होकर उसकी गन्ध को गुनगुनाता है। और इस तरह छायावादी रोमानियत और लिजलिजेपन से हटकर वह यथार्थ बात कहता है, शायद इसीलिए नवगीत की भाषा में छायावादी आभिजात्य अथवा मसृणता न होकर सहज स्वाभाविक सीधी-सादी युग-सन्दर्भ की भाषा है। नवगीतों में आत्मसत्य की अपेक्षा 'लोक-सत्य' के 'गीत-धर्म' की परिकल्पना है। प्रतिपाद्य या वर्ण्य-विषय की दृष्टि से भी दोनों में कोई साम्य दृष्टिगत नहीं होता। 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' करने वाले छायावादी गीतकारों के गीतों में मानव-हृदय की सूक्ष्म अनुभूतियों का अंकन है। छायावादी कवि 'रहस्य लोक' में विचरण करता हुआ 'आराध्य' की 'आराधना' में अध्यात्म की 'दीपशिखा' को चिरकाल तक 'ज्योतिर्मय' करने में संलग्न है। इसके विपरीत नवगीतकार ने अपने गीतों में 'लोक सत्य' की 'स्थूलता' का उद्‌घाटन करते हुए आध्यात्मिकता के तिलस्म को भंग करने का सफल प्रयास किया है। इन्होंने 'प्रणय' को जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में, 'सुखद गार्हस्थिक जीवन' के प्रतीक रूप में ग्रहण कर 'सामाजिक कवच' के रूप में चित्रित किया है। नवगीतकारों ने गीतों में 'जीवन संघर्ष को चुनौती के रूप में स्वीकार किया है जबकि छायावादी कवियों की वृत्ति जीवन में 'पलायन' की है। छायावाद को 'व्यथा का सवेरा' बनाने वाली कल्पना की कमनीयता व रमणीयता को त्याग नवगीतकार ने अपने गीतों में बौद्धिकता की प्रतिष्ठा की है। कदाचित् रागात्मक चेतना के प्रतीक गीतों को बौद्धिकता का धरातल प्रथम बार नवगीतकारों द्वारा ही प्रदान किया गया था।

नवगीत का भाव-क्षेत्र वैविध्यपूर्ण है, जबकि छायावाद की भाव दृष्टि 'प्रणय, सौन्दर्य, प्रकृति तथा दर्शन' तक ही सीमित है। नवगीत में 'भोगे हुए आत्मपरक सत्यों का उद्‌घाटन' है, "वह न तो लोक जीवन से विमुख हुआ और न नागरिक जीवन में उपेक्षित, न तो राष्ट्र की भौगोलिक सीमा में बद्ध है और न अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों से तटस्थ। नया गीतकार अपने परिवेश के प्रति सजग तथा अस्तित्व के प्रति व्यापक रूप से सतर्क है।"[४८]

प्रतिपाद्य की दृष्टि से नवगीतकार की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यही है कि उसने 'संवेदना के विभिन्न आयामों को गीतजीवी' बना दिया है।

छायावादी गीतों ने 'कलात्मक-उपकरणों' की विविधता और विशिष्टता की दृष्टि से भी 'युगान्तर' प्रस्तुत किया था किन्तु यह 'क्रान्ति' धीरे-धीरे रूढ़ता की ओर कदम बढ़ाने लगी, परिणामतः गीत का 'रचना-शिल्प' जटिल से जटिलतर हो गया। ऐसा आभासित होने लगा मानो 'कोमलकान्त पदावली', 'सारगर्भित भाषा एवं सीमित छन्द-विधान' छायावाद की 'पहचान' के 'मूल मन्त्र' हो गए हों। इसके साथ ही अलंकारों की 'अनावश्यक भीड़' तथा पदान्त में तुकों के

'साग्रह प्रयोग' ने गीतो के 'स्वाभाविक स्फुरण' के समक्ष 'प्रश्न-चिह्न' लगा दिया किन्तु 'नवगीत' ने गीतों मे सरलता और स्वाभाविकता लाने के लिए छायावादी कला की उत्कृष्टता पर तीव्र प्रहार किया है। पत के 'खुल गये छद के रजत पाश' के आधार पर वीरेन्द्र मिश्र ने भी गीतो को 'छन्दो के बन्धन' मे मुक्त कर दिया।[३४]

जैसाकि पहले ही सकेत किया जा चुका है कि नये गीतकारो का 'स्वतन्त्र-अस्तित्व' था अत सभी गीतकारो ने अपने 'मौलिक छन्दो' का प्रयोग कर छायावादी छन्दो क सुव्यवस्थित, सन्तुलित अनुशासन को विशृखलित कर दिया। सम्भवत इसीलिए छन्दशास्त्र भी उन्हे केवल 'नये' नाम के अतिरिक्त 'कुछ' नहीं कह पाया। नवगीतकार की प्रवृत्ति 'अलकारों' मे नहीं रमी, कदाचित् इसका कारण गीत के भावजगत् को प्राथमिकता देना रहा हो। भाषा मे प्रवाह तो है किन्तु छायावादी लाक्षणिकता एव चित्रमयता का नितान्त अभाव है।

गीत के शिल्पिक-उपकरणों मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उसकी 'सगीतमयता' है, जिसके अभाव मे 'गीत', 'गीत' नही रहता। नवगीतकार ने छायावादी गीतो की भाति सगीत सिद्ध और 'सगीत-मुक्त' को अपने गीतों मे स्थान तो दिया है लेकिन 'साग्रह' पूर्वक उस बन्धन से अपने गीतो को नही बाधा। उन्होने 'सगीत' का स्थान 'सलाप' को देना अधिक उचित समझा है। नवगीतो के नूतन 'बिम्ब' और 'प्रतीक-विधान' ने इनकी गीति-कला को निश्चय ही परिष्कृत किया है।

प्रगतिवादी गीत और नवगीत

छायावादी रोमानियत का मोहभग उस समय होता है जब प्रगतिवादी परम्परा अपने नये तेवर के साथ बुलन्दी से सिर उठाती है, उसके बीच से गुजर जाती है। यद्यपि नवगीत इसके बहुत बाद की उपज है लेकिन इन दोनो के मूल स्वभाव म, दृष्टि बिम्ब मे ज्यादा फर्क नही। नवगीत भी प्रगतिवादी प्रगीत-परम्परा के ही समानान्तर सामाजिक यथार्थ के प्रति निष्ठावान है—फर्क सिर्फ इतना है कि प्रगतिवादी गीतों मे अपनी वैचारिक अस्पष्टता और सही भाषा के अभाव म सनहीपन अधिक आ गया था जबकि नवगीत इस लिहाज से काफी साफ-सुथरा और दूध का जला छाछ को फूक-फूक कर पीने वाला सिद्ध हुआ है। इसमे दृष्टि अवश्य है लेकिन सवेदना की आच मे घुली-मिली, अत न वह वही लय को तोडती है और न ही अलग से खडी होकर पाठक और गीत के बीच दीवार बनती है।

प्रगतिवादी प्रगीतो मे नवगीतो की भाति ही 'प्रेम और सौन्दर्य के उन्मुक्त तथा स्वस्थ गीतो की रचना हुई है। दोनो ही प्रकार के गीतों मे 'जीवन-सघर्ष' को प्रमुखता मिली है, अन्तर केवल इतना है कि प्रगतिवादी-प्रगीत चूकि 'राज-

-नीतिक छाप' के थे, अतः 'विद्रोह, क्रान्ति और वर्ग-संघर्ष' की प्रमुखता होने से इसमें 'ध्वंस' की प्रवृत्ति अधिक मुखरित हुई है जबकि नवगीत के 'जीवन-संघर्ष' में 'सृजन' के कण मौजूद हैं। इसी प्रकार 'शिल्पगत साम्यता' भी देखी जा सकती है क्योंकि प्रगतिवाद का मूल लक्ष्य राजनीतिक क्रांति था। अतः उसके 'प्रचार' के लिए 'लोकजीवन' का आश्रय अवश्यम्भावी था। फलतः उन्होंने काव्य को 'छायावादी कल्पना-लोक' से 'यथार्थ-लोक' पर उतार कर गीत-माध्यम से अपनी भावाभिव्यक्ति की। यद्यपि 'नवगीत' भी 'लोक-जीवन' से अनुबंधित है, उद्देश्यभिन्नता होने पर भी 'उपकरणों की उपयोगिता' ने उन्हें एक सूत्र में बांध दिया है। प्रगतिवादी प्रगीत में 'व्यंग्य' तो है लेकिन जिस बौद्धिक धरातल पर उसे परिपुष्ट किया जाता है उसका इसमें नितान्त 'अभाव' है। उस 'अभाव' की 'क्षतिपूर्ति' करते हुए नवगीतों ने 'व्यंग्य' का मार्ग प्रशस्त किया है। इतना होने पर भी प्रगतिवादी प्रगीत और नवगीत में कुछ ऐसा है जो इनमें 'विभाजक रेखा' खींच देता है। यह सत्य है कि छायावादी काव्य-शिल्प अलंकारों की 'अनावश्यक-भीड़' तथा प्रगीतों ने उसे बोझिलता से मुक्त होने के बहाने उसे तो 'ओछा' किया ही, साथ ही वर्ण्य-विषय के लिए भी 'सीमांकन' कर दिया। । इनकी भाषा सरल होने पर भी 'सहजता' जैसे गुण से वंचित ही रही। इनकी भाषा में न तो शाब्दिक सौन्दर्य है, न बिम्बों के 'आकर्षक' चित्र और न ही 'चुम्बकीय' प्रतीक-विधान। चाहे इसका कारण इनकी राजनीतिक चेतना ही रही हो लेकिन काव्य-सौन्दर्य के 'अपेक्षित-तत्त्व' से विहीन यह 'प्रगतिवादी-प्रगीत' नवगीत के समक्ष नहीं टिक सकता। क्योंकि सर्वत्र नवगीतों में भावानुकूल भाषा का प्रयोग है। उसका अन्य आकर्षण 'नवीन' किन्तु 'स्वस्थ' बिम्ब एवं प्रतीक-विधान है छन्द एवं अलंकारों के क्षेत्र में जिस 'उन्मुक्तता' का परिचय नवगीतकारों ने दिया है, निश्चित ही वह सराहनीय है।

राजनीति के प्रवेश से साहित्य का सौन्दर्य, उसकी सहजता और उसके उद्देश्यों का विशृंखल हो जाना स्वाभाविक है। चूंकि प्रगतिवादी-प्रगीत पूर्ण रूप से मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से प्रभावित थे। यही कारण है कि 'प्रगीत' मात्र एक मुखौटा था जबकि उसका लक्ष्य था अपने मत का प्रचार। वस्तुतः प्रगतिवादी प्रगीतकार : "जीवन के सही यथार्थ से वंचित मात्र नारेबाजी में केन्द्रित होकर गीतों की शक्ल में अखबार ढाल रहे थे।"[४] ऐसी स्थिति में गीत और गीतकार की उपयोगिता का प्रश्न ही नहीं उठता। इसके विपरीत 'नवगीत' न तो किसी 'वाद' से सम्बन्धित था और न ही किसी व्यक्ति-विशेष द्वारा इसका प्रणयन हुआ बल्कि यह तो विभिन्न कवियों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों से अद्भुत प्रतिभा का परिणाम था, जिसे कालान्तर में नवगीत की संज्ञा दे दी गई। अतः प्रगतिवादी प्रगीत और नवगीत दोनों के 'साम्य' का प्रश्न ही नहीं उठता।

यह बात अलग है कि एक ही 'राह के राही' कही सम्बद्ध हो गए हो किन्तु वास्तव मे प्रगतिवादी प्रगीत राजनीतिक-चेतना से अनुप्राणित है जबकि नवगीत का स्वतत्र विकास हुआ है।

वैयक्तिक प्रगीत और नवगीत

'छायावादी सामन्ती काव्य-चेतना' को लोक-शैली का स्वरूप-प्रदान करने का श्रेय व्यक्तिपरक गीति धारा के कवियो को ही जाता है, जिन्होने छायावादी दार्शनिक, वायवी, काल्पनिक, आत्मानुभूत तथा राजनीतिक-चेतना से अनुस्यूत प्रगतिवादी 'सिद्धान्त बोझिल सामाजिक अनुभूतियों' के प्रति विद्रोह कर, 'आत्मा के सहज और निश्छल उद्वेलन' को गीतो की भावभूमि के रूप मे स्वीकारा और इसीलिए इस काव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ कवि बच्चन के प्रति नवगीतकारो ने कृतज्ञता[९१] ज्ञापित की है। यद्यपि इन नवगीतकारो ने गीत के क्षेत्र मे 'बच्चन' को 'आदर्श' *मान उनका 'अनुकरण' नही किया किन्तु गीतों की 'सहजता' एव 'प्रामाणिकता'* उन्होंने उन्ही से गृहीत की है। व्यक्तिपरक गीतकारो की अपेक्षा नवगीतकारो मे 'अनुभूति का स्वरूप और सवेदन' सामाजिक अधिक रहा है क्योकि नवगीतकार के पास यदि एक ओर प्रेम पत्र है तो दूसरी ओर राशन कार्ड है।[९२]

इन दोनो धाराओ मे 'एक सूत्रता' का दूसरा आधार—विशुद्ध गीत-धर्मी होना है। छायावादोत्तर युग के युगीन-प्रवाह मे जिन प्रवृत्तियो को जन्म मिला, वे गौणविधा के रूप मे तिरोहित हो गयी किन्तु वैयक्तिक-प्रणय की धारा के उपरान्त नवगीत ही है जो विशुद्ध रूप मे गीतात्मक चेतना से अनुस्यूत है। इसी प्रकार कलात्मक उपकरणो मे भी वैभिन्न्य बहुत कम है। 'गीत' की अनिवार्य शर्त सगीत है लेकिन दोनो ही धाराओ ने 'सगीत की शास्त्रीयता' पर प्रश्न चिह्न सकेतित कर दिया है। भाषा एव शब्द-प्रयोग के प्रति दोनो की दृष्टि एक ही बिन्दु पर केन्द्रित है। इतना होने पर भी वैषम्य की रेखाए यहा भी देखी जा सकती है क्योकि दोनो के उद्भव के कारणो मे पर्याप्त अन्तर है। जहा व्यक्तिपरक गीतिधारा का जन्म छायावाद की प्रतिक्रिया-स्वरूप हुआ था वहा नवगीत के लिए किसी प्रकार की (न साहित्यिक, न राजनीतिक और न ही सामाजिक) कोई पृष्ठभूमि तैयार नही थी बल्कि यह प्राचीन प्रगीत-परम्परा के विकास का ही अगला चरण है। परिणामत इनकी 'भाव-दृष्टि' की अपेक्षा वैयक्तिक कवियो की भाव-दृष्टि अधिक सकुचित और सीमित है। छायावाद की ही भाति 'भग्न-प्रणय-स्वप्न', 'अवसाद की घनीभूत छाया', 'मृत्यु-बोध', 'पलायन', 'विषाद का धीमा स्वर', आदि का चित्रण करते समय युग-सदर्भ और युग-बोध से सर्वथा अपने को मुक्त रखते हुए इन कवियो के गीतो ने यथार्थता की अपेक्षा कल्पना का दामन थाम लिया, फलस्वरूप इनके गीतो मे निजी 'अहसास' को भी अभिव्यक्ति

मिली। लेकिन जहा अपने आस-पास के अभावगत दर्द को शब्दित करने की बात थी, वहा वे न-केवल चूक गए बल्कि उस जगह मे कतरा कर निकल गए जबकि नवगीत मे एक तरफ जहा एकान्त क्षणो का 'निजी' अहसास मिलता है वहा उनकी कल्पना के पख अपने आस-पास के अभावगत दर्द को छाया भी देते नजर आते है। यहा तक कि कभी-कभी ऐसा लगता है कि नवगीत का निजी अहसास न होकर उसके आस-पास छाया हुआ दिखाई पडता है और इस तरह वे परम्परित निजी अहसास से अलग हो गए है। वैसे भी नये बिम्ब, नये प्रतीक तथा छन्द के वैविध्य-प्रयोग ने नवगीतो को वैयक्तिक गीतो मे बिल्कुल अलग कर दिया है। केवल बच्चन के प्रगीतो मे आचलिकता के समावेश से लोक धुनो की मौलिकता देखी जा सकती है, इधर नवगीतो मे आचलिक शब्दावली का प्रयोग बहुत स्वाभाविक होकर आया है। 'निराशा', 'पलायन', तथा 'मृत्यु' के जीवन-दर्शन को अपनाने वाले व्यक्तिपरक गीतकारो ने स्थान-स्थान पर नियतिवाद की व्याख्या की है किन्तु नवगीत का उद्देश्य मात्र आस्था, विश्वास और निरन्तर सघर्ष की ओर अग्रसर होना है।

यह सत्य है कि नवगीत ने गीत-विधा को नयी चेतना दी है लेकिन 'गीत' विधा को लोकप्रिय बनाने का श्रेय व्यक्तिपरक गीतकारो को ही है। कभी कभी यह प्रश्न अधिक मुखरित हो उठता है कि क्या नवगीत अपनी साहित्यिकता की रक्षा करता हुआ वैयक्तिक प्रणय की यथार्थोन्मुख काव्य-धारा के प्रगीता के समक्ष लोकप्रियता प्राप्त कर सकेगा? इस प्रश्न का उत्तर तो भविष्य के गर्भ मे सुरक्षित है किन्तु जिस ठोस भूमि पर नवगीत पल्लवित हो रहा है उसके प्रति विश्वास तो प्रकट किया ही जा सकता है।

राष्ट्रीय-सास्कृतिक प्रगीत और नवगीत

राष्ट्रीय सास्कृतिक प्रगीत और नवगीत दोनो धाराए परस्पर विरोधी हैं। नवगीत स्वतत्र और साहित्यिक काव्यधारा है, जबकि राष्ट्रीय सास्कृतिक काव्य धारा प्रमुख रूप से उभर कर साहित्य-मच पर कभी उपस्थित ही न हो सकी, यह तथ्य और है कि आदिकाल से आज तक के साहित्य मे यह कविता धारा अत सलिला के रूप मे प्रवाहित अवश्य होती रही है। इसका मूल वर्ण्य विषय गीतकार की 'अनुभूति' की अपेक्षा 'अभिव्यक्ति' पर निर्भर करता है। राष्ट्रीय-सास्कृतिक कवि स्वर्णिम और गरिमापूर्ण अतीत का गान, वर्तमान की व्यथा तो प्रकट करता ही है, आशात्मक भविष्य का चित्रण भी करता है। दूसरी ओर नवगीतकार इससे भिन्न कथ्य अपनी दृष्टि मे रखकर गीत रचना करता है। उसके स्वरो मे वर्तमान के सघर्ष से टकराने-जूझने का दृढ सकल्प है। राष्ट्रीय सास्कृतिक प्रगीतो का शिल्पगत सौन्दर्य फीका है, नवगीत की भाति उसमे नवीनता परिलक्षित नही

होती।

मचीय गीत और नवगीत

नाटक की भांति गीत की सार्थकता 'मचीयगान' मे है किन्तु युगीन-प्रवृत्तियो के प्रवाह मे जब 'मचीयगान' की प्रतिष्ठा समाप्त होने लगी तो गीत ने सगीत' तक ही अपनी सीमा रेखाकित कर दी 'मचीयगीत' और 'नवगीत' के प्रेरणा-स्रोत खोजने पर स्पष्ट हुआ कि केवल 'सजातीय विधा' होने के अतिरिक्त इनमे कोई विशेष भाव, रूप अथवा दर्शन सम्बन्धी समता नही है। अपवादस्वरूप कुछ नवगीतकार मच के भी श्रेष्ठ गीतकार हो सकते हैं किन्तु प्रत्येक गीतकार मचीय कलाकार होगा ही—असम्भव है। कथ्यदृष्टि से 'मचीय-गीतो' मे 'कवियो के दमित और कुठित आवेग' के साथ-साथ 'नारे' उगलता हुआ इन्कलाब है और है *मसान जगाकर चमत्कार दर्शाना अथवा कोई बीमार-सा फलसफा जो विभिन्न* गीतो मे स्वय विरोधाभास उत्पन्न करता है।"[3] दूसरी ओर नवगीत मे न तो अनुभूतिया काल्पनिक हैं और न ही खोखला आकर्षण बल्कि वह तो आधुनिक बोध से सम्पन्न परिपक्व गीत है जो *आज के यान्त्रिक, कठोर जीवन की निर्मम* अनुभूतिया का भोक्ता एव प्रयोक्ता है। मचीय गीतो की छिछली और रोमानी भावुकता से काफी दूर है। 'मचीयगीत' का आधुनिक युग मे प्रणयन उर्दू के मुशायरे के आधार पर होने के कारण उर्दू और फारसी से प्रभावित था, फलत छद-बन्धनो की कठोरता, तुकबन्दी के प्रति विशेष आग्रह, सगीताभिव्यक्ति, उक्ति-चातुर्य, बिम्ब, बासी प्रतीको का सहारा लेकर मचीयगान मचस्थ हुआ लेकिन नवगीत जैसी सशक्त, यथार्थत अनुभूति के अकन वाली विधा ने मचीय-गीतो को विश्रृखलित कर दिया। न तो मचीय-गीतो का कोई गम्भीर दर्शन था और न ही कोई उद्देश्य। जबकि नवगीत दर्शन और उद्देश्य को प्रारम्भ से ही नकारते चले हैं। ऐसी स्थिति मे दोनो मे कोई साम्य ही नही है। दूसरे 'मचीयगान' इतना प्रतिष्ठित और महत्त्वपूर्ण नही है कि वह नवगीत के विरुद्ध तुलना के लिए खडा हो सके।

नयी कविता और नवगीत

प्राय 'नयी कविता' और 'नवगीत' शब्द विद्वानो मे विवाद का विषय बन जाते हैं। एक तो परस्पर समकालीन और दूसरे 'नयी' और 'नव' विशेषण के कारण एक आलोचक वर्ग *नयी कविता की अन्त सलिला'* के रूप मे 'नवगीत' को मान्यता देता है तो कुछ चिन्तक नयी कविता के 'समानान्तर' नवगीत के काव्य-प्रवाह को प्रतिष्ठित करते हैं। अथवा कुछ विचारक नयी कविता और नवगीत को 'परस्पर पूरक' मानते हैं। अत इनके अन्तर को स्पष्ट करने से पूर्व यह आवश्यक

हो जाता है कि इनके विषय मे उत्पन्न भ्रान्तियो और उनके कारणो का विश्लेषण कर लिया जाए।

नयी कविता का इतिहास इस बात का साक्षी है कि सन् १६३८ मे 'तार सप्तक' के प्रकाशित होते ही जिस 'प्रयोगवादी आन्दोलन' का सूत्रपात हुआ उसी के विकास के रूप मे नयी कविता का आविर्भाव मान लिया गया। प्रयोगवाद के दौरान ही कवियो के हृदय मे काव्य की समस्त विधाओ को त्याज्य मानकर, केवल 'कविता' रूप की ही प्रतिष्ठापना हुई। परिणामत इस 'कविता' से हटकर लिखने वाले कवि या गीतकार को भय था कि उसकी रचना को कही 'बासी' और 'युगीन परिप्रेक्ष्य के प्रतिकूल' न घोषित कर दिया जाए। इसीलिए जो मूलत गीतकार थे, गीति-रचना का पहलू छोड, कविता-सृजन मे लग गए। किन्तु प्रकृति के विरुद्ध कार्य करने मे असमर्थ यही कवि-मन कुठा और हीनता से ग्रस्त हो गीत को ही 'नयी कविता का परिधान' ओढाने की कल्पना करने लगे। इस प्रकार जहा 'गीत' 'गीति-परम्परा' से हटकर सृजित होने लगे वही वे नयी कविता से विभिन्न होते हुए भी कथ्य और शिल्प दृष्टि से नयी कविता के समानान्तर प्रतीत होने लगे, इसीलिए यह मान लिया गया कि 'नवगीत' का कोई 'स्वतत्र-अस्तित्व' नही बल्कि वह तो नयी कविता का ही एक महत्त्वपूर्ण अश है। वस्तुत. साहित्यिक सम्मेलनो व गोष्ठियो मे 'नवगीत' पर चर्चा करना व्यर्थ समझा गया। लेकिन नयी कविता द्वारा उपेक्षित 'नवगीत' गीतो का पुनरुत्थान कर 'स्वतत्र-अस्तित्व' के लिए प्रयास करने लगा। 'नवगीत' को 'नयी कविता' के 'महनीय अश' के रूप मे कल्पित करने का एक और कारण था—'नयी कविता' शब्द का प्रयोग और अर्थ व्यापक धरातल पर किया गया है—"नयी कविता का तात्पर्य प्रयोगवादी कविता से न होकर उस कविता से है जो प्रगति, प्रयोग और गीत की विभिन्न धाराओ मे पिछले दशक मे गुजित हुई है।"[५४]

'नयी कविता' और 'नवगीत' के 'प्रवृत्तिगतसाम्य' ने 'नवगीत' को नयी कविता की 'शृखला' कहने मे योगदान ही दिया है। प्रयोगवाद के प्रणेता अज्ञेय ने नवगीत को नयी कविता के अन्तर्गत ही समाहित किया है—'नयी कविता और नवगीत के इस प्रकार के नामो से तो एक कृत्रिम विभाजन ही आगे बढेगा और कविता की प्रवृत्तियो को समझने मे बाधा ही अधिक होगी।"[५५] डॉ० धर्मवीर भारती को तो विश्वास ही नही कि नवगीत का जन्म और प्रतिष्ठापन भी हो चुका है—"क्या नवगीत (यदि वह है और यदि वह स्थापित हो चुका है ? तो नयी कविता) से वह अलग कहा है, यह अभी मेरे सामने स्पष्ट नहीं।"[५६] गिरजाकुमार माथुर और शम्भूनाथ सिंह के मतो मे साम्य है—"मैं यही नही मानता कि प्रगीत का नयी कविता मे स्थान नही' नयी कविता के बहुत से अशो मे पर्याप्त रूप से प्रगीतात्मक तत्त्व तथा रसमयता है।"[५७]

और शम्भूनाथ सिंह की दृष्टि में—"कविता और नवगीतों" के उदय की परिस्थितियां उसी प्रकार की थीं। नयी कविता छायावादी प्रयोगवादी और प्रगतिवादी भाव-बोध से भिन्न आधुनिक भाव-बोध की कविता है और नया गीत उसी का अंश है।"

'नयी कविता' को 'तीव्र काव्यात्मक' प्रदान करने का श्रेय नवगीत को है—'नयी कविता के गद्य-पद्य को बिना इसके समसामयिक बोध को रोमांटिक बनाए और तीव्र काव्यात्मक मार्ग में पुनः वापस लाने में सेतु का काम करेंगे 'नव गीत'। नवगीत माध्यम हो जायेंगे और इस नये हसीन माध्यम के अन्तराल में नयी कविता में और भी गाढ़े, कवितापन की रंगरेजी होती चली जाएगी।"

उदीयमान कलाकारों में देवेन्द्रकुमार की दृष्टि में नवगीत नयी कविता का आन्तरिक विवशता है, औपचारिकता नहीं जो जीवन की गद्यात्मकता को तोड़कर उसमें छिपी कोमल मानवीय अनुभूति को खींचकर बाहर लाता है और जिन्दगी के सीधे सम्पर्क को स्थापित करता है। नवगीत निजी कविता की अतरंग है।[*] माहेश्वर तिवारी भी देवेन्द्रकुमार से सहमति प्रकट करते हैं—"नया गीत नयी कविता की भीतरी संवेदना का अभिव्यक्त रूप है उसके खुरदरे व्यक्तित्व के भीतर मुलायम पर्त है। वह अपने में कोई स्वतंत्र विधा नहीं और न ही नयी कविता के आगे की कोई उपलब्धि है।"[१]

उदयभानु मिश्र भी नयी कविता और नये गीत में अभिन्नता ज्ञापित करते हैं—'नया गीत नयी कविता ही है उससे स्वतंत्र कोई विधा नहीं और नये गीतों का सकलन नयी कविता की लयात्मक क्षमता परिमार्जित गेयता और स्फूर्जित चेतना की एक झलक पाने का प्रयास मात्र होगा नये गीत को नयी कविता से अलग हटाकर उसे प्रतिष्ठित करना कदापि उचित नहीं।"[१]

आलोचकों के दूसरे वर्ग ने नवगीत एवं नयी कविता को समानान्तर स्वतंत्र काव्य प्रवाह मानने में स्वीकृति देना ही अधिक उचित समझा है। ठाकुरप्रसाद सिंह दोनों को विभिन्न मन स्थितियों और परिस्थितियों का काव्य मानते हैं—'नयी कविता की बौद्धिकता तथा नये गीतों की हार्दिकता को परस्पर एक दूसरे का पूरक मानते हुए भी यह स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए कि ये दोनों दो परिस्थितियों और मन स्थितियों के काव्य हैं।"[१] डॉ॰ नामवर सिंह भी गीत और कविता दोनों के 'स्वतंत्र-अस्तित्व' की कल्पना करते है—"मेरे ख्याल में गीतों की सार्थकता सच्चे अर्थों में गीत होने में है। नयी कविता की होड़ में बेडौल मुक्तछन्द होने और बिम्ब आदि की जटिलता की ओर दौड़ने में नहीं।"[१४] डॉ॰ महावीर प्रसाद दधीच तो दावे के साथ कहते हैं कि 'नवगीत नयी कविता नहीं हो सकता·· नवगीत नयी कविता हो ही नहीं सकता उसका एक अंग होना भी उसके लिए कठिन है। नवगीत को नयी कविता होना भी

नही चाहिए। नवगीत को नयी कविता बनाने का प्रयत्न ही आत्मघाती सिद्ध होगा।"[६]

किन्तु, एक आलोचक वर्ग ऐसा भी है जो उपर्युक्त विचारो से साम्य नही रखता बल्कि 'नवगीत' और 'नयी कविता' को 'पूरक' स्वीकारता है। आधुनिक युग बोध की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने दोनो की सयुक्ति की अनिवार्यता पर बल दिया है।

भवानीप्रसाद मिश्र की दृष्टि मे—"कविता और नयी कविता, गीत और नवगीत ये एक-दूसरे के विरोधी नही, एक-दूसरे के पूरक है, एक-दूसरे के सहायक हैं और सम्भव है कि नयी कविता और नये गीत अब तक की कविता और अब तक के गीत से आगे बढने की बैसाखियाँ भी हैं।"[६६] इन्ही के मत का समर्थन करते हुए डॉ० रामदरश मिश्र का विचार है कि "नवगीत नयी कविता का पूरक है अर्थात् नवगीत आज के समूचे कथ्य को अभिव्यक्ति नही दे सकता...अत. नवगीत नयी कविता के सहवर्त्ती हैं, विरोधी नही...।"[७]

डॉ० रवीन्द्र भ्रमर वर्तमान कविता की दो शृ खलाओ के रूप मे नयी कविता और नवगीत को ग्रहण करते हैं—"नवगीत को नयी कविता के विरोध मे ग्रहण करना एक भ्रान्ति के अतिरिक्त कुछ नही है। नवगीत के विकास-इतिहास मे प्रयोगशील कविता का पर्याप्त योग रहा है। 'नवगीत' वस्तुत. 'नयी कविता' का 'पूरक' है। उसने समकालीन हिन्दी कविता को एकांगी पक्षाघाती होने से बचा लिया है...दोनों वर्तमान कविता की शृ खलाएं हैं और दो स्वतन्त्र प्रकार के भाव-क्षणो का अकन करने के लिए दोनो की समान रूप से आवश्यकता है। मन को आन्दोलित कर देने वाले रागात्मक क्षणों की अभिव्यक्ति के लिए गीत-रूप जारी है तो वैज्ञानिक यथार्थ से परिचालित विवेकशील अनुभूतियो के लिए नयी कविता का सृजन अपेक्षित है।"[६८]

यह निर्विवाद है कि नवगीत और नयी कविता समकालीन काव्य-प्रवृत्तिया हैं, न केवल इतना बल्कि इनकी दृष्टि भगी मे युग-सन्दर्भ के अनुरूप काफी कुछ समानताएं भी हैं, लेकिन स्वय कुछ नयी कविता वालो द्वारा ही नवगीत को अपने से अलगाने के पीछे जो दुश्चक्र कार्य कर रहे थे, वे शायद ये हैं कि नयी कविता वाले छन्द मुक्ति का नारा देते थे जबकि नवगीत अभिनव छन्द के प्रयोग का हामी था और ये नयी कविता वाले अपने को इन छन्द-प्रयोगो मे फिट बैठता हुआ न देखकर नवगीत को नयी कविता से अलगाते ही रहे थे। इसी के चलते दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण यह भी हो सकता है कि नयी कविता, नयी कहानी, नवगीत जैसी सज्ञाए देकर हिन्दी ससार मे जो जमने-जमाने का, अपने को प्रतिष्ठित करने-कराने का जो चक्र चल रहा था उसमे नवगीत वाले कही-न-कही नयी कविता वालो के आडे आते थे, अत. उन्हे पछाड कर अपने को प्रतिष्ठित

करने का यही एक उपाय था कि उन्हे अपने काव्य-परिवार से नकारा जाए और स्वय भौतिक सिद्धान्तो के आसन को ग्रहण किया जाए। लेकिन आज यह सब दुष्चक्र ठण्डा पड चुका है, अत इन दोनो की भिन्नता-अभिन्नता पर तटस्थ विचार किया जा सकता है। कहना न होगा कि नवगीत की प्रवृत्ति प्रारम्भ में नयी कविता का आविभाज्य अग थी।[१] किन्तु राजेन्द्रप्रसाद द्वारा नामकरण के उपरान्त आलोचक वर्ग ने भी इस आदोलन को नयी कविता से अलग कर दिया है।[२] जिसके परिणामस्वरूप जो 'नवगीत', 'नयी कविता' मे पर्यवसित होने के कारण 'परम्परा-विद्रोहक' मान लिया गया था, अब उसे 'परम्परा-पोषक' *मान नवगीतो की नयी सम्भावनाओ की आकाक्षा* की जाने लगी। इसमे सन्देह नही कि नवगीत युग-बोध की दृष्टि मे गीति-परम्परा के विकास का ही चरण है जिसने बदलते हुए जीवन-मूल्यों मे अपनी परम्परा को नयी गति, नयी चेतना और सवेदना के विभिन्न आयाम दिए।

'नवगीत' शब्द के प्रयोक्ता ने भी इसे नयी कविता का पूरक मानते हुए इनके तत्त्वो पर टिप्पणी की है—"नयी कविता के अनेक कवि भी गीत रचना करते हैं और उन के गीतो मे 'टेक्नीक' की आधुनिकता तो रहती है, वैयक्तिक कविता का प्राय अभाव ही रहता है, फिर भी वे पूर्वागत निकायो के गीतकारो का विरोधी अपने को ही समझ लेते हैं, आश्चर्य है···प्रगति और विकास की दृष्टि से इन रचनाओ का मूल्य है, जिनमे नयी कविता के पूरक बनकर 'नवगीत' का निकाय जन्म ले रहा है। नयी कविता के यदि सात मौलिक तत्त्व हैं—ऐतिहासिकता, सामाजिकता, व्यक्तित्व, समाहार, समग्रता, शोभा और विराम, तो पूरक के रूप मे नवगीत के पाच विकासशील तत्त्व हैं—जीवन दर्शन, आत्म-*निष्ठा, व्यक्तित्व-बोध, प्रीति-तत्त्व और परिसचय।*"[३] *तात्त्विक दृष्टि से यदि इन* मौलिक बिन्दुओ पर आनुपातिक विचार किया जाए तो बात स्पष्ट हो जाएगी।

बौद्धिकता और रागात्मकता

'नयी कविता'—बौद्धिक भूमि पर विचरती हुई ही 'विकास' का स्पर्श कर पायी है। यह 'बौद्धिकता', 'दुरुहता' और क्लिष्टता से सर्वथा दूर रागात्मक भावों को आत्मसात् किए हुए है। "कुछ नये कवि ऐसे हैं जिनकी कविता रागात्मकता को पर्याप्त महत्त्व देती है। व्यक्तिगत रूप मे मुझे विश्वास है कि भविष्य मे हिन्दी कविता बुद्धि और हृदय, विचार और राग के बीच सन्तुलन स्थापित कर *सकेगी और उसे जन-रुचि का आश्रय भी मिलेगा।*"[४] इसमे सन्देह नही कि 'नयी कविता' बौद्धिकता की छाया मे विकस रही है इसीलिए उसमें एक अन्तर्निहित आलोचनात्मकता मिलती है। यथार्थ-चित्रण का आग्रह, सूक्ष्म व्यग्य तथा शैली-गत वैचित्र्य एक नये-नये अर्थों को ध्वनित करने वाला अभिनव प्रतीक-विधान

आदि जिन्हें नयी कविता की प्रमुख विशेषताएं कहा जा सकता है, सभी के पीछे प्रेरणा का बुद्धिगत रूप स्पष्ट झलकता है।

'नवगीत' जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है अर्थात् गीति-परम्परा को कुछ नवीन उपलब्धि प्रदान करना। इसीलिए बौद्धिकता को गीत के लिए वर्जित नहीं माना जा सकता, क्योंकि वह नयी उपलब्धियों से पूर्ण है।" बौद्धिकता के कारण ही गीतों में आधुनिकता, युग-बोध और संवेदना के नये धरातलों का समावेश हो पाया है। बालस्वरूप राही ने 'बौद्धिकता एवं हार्दिकता' के समजन' से ही 'नवगीत' की उत्पत्ति मानी है।"

'बौद्धिकता' का परिणाम 'व्यंग्य' है किन्तु जब बौद्धिकता' का समजन 'रागात्मकता' से हो जाता है तब 'व्यंग्य' सहानुभूति में पर्यवसित हो जाता है, इसीलिए नवगीत और नयी कविता परस्पर विरोधी होते हुए भी पूरक है। 'परस्पर-पूरकता' की अगली श्रृंखला इनकी गैर-रोमानी दृष्टि है। नयी कविता और नवगीत दोनों 'एण्टी रोमाण्टिक हैं और स्वप्न-विमुख वैज्ञानिक यथार्थ को विषय के रूप में ग्रहण करते हैं। प्रौढता के लिए जिस गुण का उल्लेख हमने नयी कविता की उपलब्धि के सन्दर्भ में किया है, वह आधुनिक गीत का प्राण-तत्व है। "भावुकता का कोई भी रूप आधुनिक गीत को स्वीकार्य नहीं है चाहे वह भावुकता रोमानी हो या आदर्शों के प्रति।"" इसमें सन्देह नहीं कि 'कुण्ठित' और 'विक्षिप्त' युगबोध ने एक ओर 'रोमानी-भावनाओं को 'अपंग' और 'सार-हीन' कर दिया था तो दूसरी ओर वह भावी गीत की सम्भावनाओं को भी निःशेष कर रहा था किन्तु इस 'एण्टी रोमाण्टिक एप्रोच' ने गीत की निःशेष होती हुई सम्भावनाओं को रूप देने के साथ-साथ कवि-कल्पना के 'बोल्गा-भटकाव' को नियन्त्रित भी किया है।

नयी कविता पर जहां अंग्रेजी-कवि डी० एच० लारेन्स, टी० एस० इलियट, एजरा पाउण्ड की चिन्तनों का प्रभाव है वहीं उनकी प्रवृत्तियां में बिम्बवाद, प्रतीकवाद, अस्तित्ववाद, अतियथार्थवाद का प्रभाव भी स्पष्ट देखा जा सकता है जबकि 'नवगीत' में 'दर्शन पक्ष' इतना विवेच्य नहीं है क्योंकि उसे न भारतीय दर्शन ने इतना प्रभावित किया और न ही पाश्चात्य दर्शन ने। नवगीत का उद्भव मूलतः अपने युग सन्दर्भ की सामाजिकता से हुआ जो अपनी गीतात्मकता में युगीन धड़कन को लय देने में समर्थ हुआ। फलतः नवगीत प्रगीत-परम्परा में एक अभिनव-सोपान सिद्ध हुआ। परिवर्तित होते हुए सामाजिक एवं साहित्यिक मूल्यों में गीति परम्परा का स्वर दबता चला जा रहा था। मूलतः हर 'कवि गीतकार होता है' इस संस्कारजन्य प्रवृत्ति को भूलकर कवियों ने गीत रचना छोड़ दी थी। बाद में जो 'नवगीत' के रूप में उभरा, उसमें आधुनिकता के प्रति आग्रह और परम्परा के प्रति विद्रोह तो है किन्तु अपनी परम्परा

के प्रति सम्मान और सस्कार के भाव भी हैं, इसके विपरीत नयी कविता का मूल उत्स 'पाश्चात्य साहित्य व दर्शन' रहा है। परिणाम स्वरूप उसम परम्परा के प्रति विद्रोह एव आक्रोश अधिक है, जिसने उसे 'भारतीय काव्य-सस्कारों' स वचित कर दिया है। 'नवगीत' का आग्रह आधुनिकता की ओर तो अवश्य है लेकिन उसने अपने जातीय सस्कारो को धूमिल नही होने दिया। अत 'नवगीत आज की कविता का एक ऐसा रूप है जो पूर्वापर निष्ठा सवेदना और विशुद्ध मानवीयता से युक्त पूर्ण यथार्थ से साक्षात्कृत अनुभूतिया की काव्य अभिव्यक्ति है। आज वस्तुत उसी के माध्यम से वास्तविक हिन्दी कविता की खोज की जा सकती है।"[1] यथार्थ का चित्रण भी दोनो काव्य धाराओ में मिलता है किन्तु 'नवगीत' का यथार्थ चित्रण सयत, व्यवस्थित, सन्तुलित और स्वस्थ है जबकि नयी कविता असयत, अव्यवस्थित, घृणित और कुत्सित यौन चित्रो से भरपूर है। नवगीत ने बौद्धिकता की दुरूहता और क्लिष्टता से उभरे रहने के लिए 'हार्दिकता' से सम्बन्ध सूत्र जोड लिया, इसीलिए उसके (गीत के) 'प्राण-तत्व 'सगीत' और 'लय की रक्षा भी सम्भव हो पायी। नयी कविता मे 'बौद्धिकता' का आग्रह होने से जहा वह अन्य काव्य-धाराओ मे अपना वैशिष्ट्य प्रतिस्थापित करती है वही 'आवेश और भावान्विति' को उपेक्षित कर जाती है। इसी बौद्धिकता के अतिरेक का परिणाम है कि नयी कविता की अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनो ही 'गद्यात्मक' बनकर रह गई हैं। 'गद्यात्मक-वृत्ति' के विरोध मे ही शायद नवगीत का उदय हुआ—ऐसी विचित्र स्थिति मे नयी कविता और नवगीत 'परस्पर-पूरक' कैसे सम्भव हैं?

अत समाहारात्मक रूप से केवल यही कहा जा सकता है कि जहा नयी कविता और नवगीत परस्पर एक-दूसरे के पूरक बनकर काव्य-जगत् मे अवतरित हुए वही 'स्वतत्र-अस्तित्व' के रूप मे भी वे प्रतिष्ठित हैं।

३ प्रगीत-परम्परा के अभिनव सोपान

"गीतो का युग समाप्त हो चुका', 'गीत मर गया', जैसी बातें सुन कवि गोष्ठियो और साहित्य सम्मेलनो मे 'गीत के अवसान' पर गहरी सवेदना ही प्रकट नही की गई अपितु कई रचनाकारो ने तो इस अवसर पर 'मर्सिया' भी रच डाले। पर वस्तुत न तो गीतो का युग समाप्त हुआ और न ही गीत की मृत्यु ही हुई, क्योकि 'जब तक मनुष्य मे सनातन मनुष्य जीवित है तब तक कविता मे गीत भी रहेगा।'"[2] यह बात अलग है कि गीत' युग विशेष मे उपेक्षित भले ही हो जाये किन्तु हर कवि मूलत गीतकार होता है'—इस बात को अनायास ही नही भुलाया जा सकता। सबसे मजेदार बात तो यह है कि आज हिन्दी के जितने भी

प्रतिष्ठित या प्रसिद्ध कवि हैं वे सभी अपने कवि-जीवन के आरम्भ मे गीतकार रह चुके है। कुछ तो अब भी गीत लिखते हैं, पर गीतकार कहलाने मे झेंपते है लेकिन न-जान क्यो वे गीतकार कहलवाना पसन्द नही करते ? सम्भवत गीतकार कहलाने पर लोगो को उनके पिछडेपन का कोई सबूत मिल जायेगा···उन्हे यही अदेशा है।

निर्दिष्ट जीवन-दर्शन का अभाव

नवगीत···जो 'परम्परा-भजक' और 'परम्परा का नियन्ता' है···के आविर्भाव की कहानी बडी ही विचित्र है। इसके उदभव की पृष्ठभूमि मे न कोई आन्दोलन था, न विचारधारा', न कोई राजनीतिक या सामाजिक चेतना थी और न ही इसका कोई विशिष्ट दल था और न निर्दिष्ट जीवन-दर्शन, बल्कि इन रचनाकारो मे एक सूत्रता' का भी नितान्त अभाव है। इनके पास उस समग्र जीवन-दृष्टि का अभाव है जो किसी भी साहित्यकार के लिए पहली आवश्यकता है क्योकि बिना उसके टूटे हुए सन्दर्भों और गलत अर्थो के आवरण मे लिपटे जीवन की बेशुमार कशमकश की पकड पाना असम्भव है।[6] कहने का अभिप्राय यह है कि 'नवगीत' किसी 'निर्दिष्ट जीवन-दर्शन के अभाव' मे ही प्रगति के पथ पर अग्रसर होता चला जा रहा था। इतिहास इस बात का साक्षी है कि कोई अन्य काव्यधारा' साहित्य मे इस प्रकार कभी प्रतिष्ठित नही हो पायी। अत मस्तिष्क की क्रिया न जाने कितने शोध परक प्रश्नो से टकराती-जूझती है कि जीवन-दर्शन के बिना विकास पाने वाली यह काव्यधारा 'अपवाद-स्वरूप' कैसे है ? प्रश्न का उठना जितना स्वाभाविक है उसका उत्तर भी उतना ही सहज है। पिछले पृष्ठों पर सकेत किया जा चुका है कि तात्कालिक परिस्थितियो के परिप्रेक्ष्य मे कवियो की मन स्थिति कुछ इस प्रकार की हो गई थी कि उन्हे 'गीतकार' कहना मानो उनके 'पिछडेपन का सबूत देना' अथवा 'गुनाहगार कहना' था। इसीलिए जिन कवियो की 'आत्मा' गीतो से निर्मित थी उन्हे गीत का यह अपमान असह्य हो उठा। वे किसी विशेष अवसर की प्रतीक्षा किए बिना ही गीत के 'पुन सस्कार' के प्रयत्न में जुट गए। गीतो के ये पुनरुद्धारकर्त्ता थे·· राजेन्द्रप्रसाद सिंह ओम प्रभाकर, नईम, नरेश सक्सेना, केदारनाथ सिह, बालस्वरूप राही शलभ रामसिंह आदि। नाम-परिगणन से हमारा तात्पर्य केवल इतना ही है कि यह 'नवगीतकार मण्डल' सर्वथा एक-दूसरे से अपरिचित, विभिन्न क्षेत्रो म रहते हुए, गीतों के पुनरुत्थान के लिए अपने-अपने ढग मे सभी दिशाओ मे प्रयत्नशील थे। किन्तु इनका यह प्रयास 'वैयक्तिक परिधि' मे आवद्ध था। अत 'पूर्व नियोजित योजना के अभाव' मे यह कार्य व्यवस्थित रूप मे न होकर अव्यवस्थित रूप मे ही हुआ।

'जीवन-दर्शन' के अभाव का एक दूसरा पहलू भी है और वह यह कि इस

विराट् काव्यधारा के रचनाकार चूकि एक-दूसरे से अपरिचित तथा विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित थे, अतः इनके 'परस्पर विरोधी वक्तव्य' मिलते हैं जो कही स्वय का ही विरोध करते हैं तो कही दूसरे नवगीतकार का। ऐसी स्थिति मे इस सम्पूर्ण आदोलन का नेतृत्व असभव था। परिणामत जीवन-दर्शन, लक्ष्य और इसके रचनात्मक स्वरूप को निश्चित करना एक दुष्कर कार्य हो गया। इसीलिए इनके गीतो में वैभिन्न्य झलकता है।

इनके 'परस्पर-विरोधी वक्तव्यो' के परिप्रेक्ष्य मे 'जीवन-दर्शन' के अभाव का एक तीसरा कोण भी उभरता है—इनके चिन्तन-मनन के स्वरूप-वैषम्य का। यदि किसी 'नवगीत' के विश्लेषणोपरान्त एक नवगीतकार के हृदय मे कोई समस्या उत्पन्न होती है तो दूसरे नवगीतकार का मन किसी अन्य समस्या मे उलझा हो सकता है। ऐसी उलझी हुई वैचारिक-समस्या मे कोई काव्यधारा निर्दिष्ट जीवन दर्शन की प्राप्ति कैसे कर सकती है ?

इसके अतिरिक्त नवगीतो की सर्जना केवल नवगीतकारो ने ही नही की, बल्कि उन्हे तो सभी काव्यधाराओ के कवियो ने अपने साहित्य मे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। ऐसी परिस्थितियो मे नवगीत का 'रचनात्मक-स्वरूप', 'प्रतिपाद्य' और जीवन दर्शन 'निर्दिष्टता' की रेखाओ मे आबद्ध न हो सका।

बौद्धिकता · नये आयाम

नयी कविता की 'दुरुहता' और क्लिष्टता' का दायित्व बौद्धिकता पर आता है और इस दृष्टि से गीतो का मूल्याकन होता है तो प्रश्न उठता है कि जब नयी कविता के क्षेत्र मे बौद्धिकता का परिणाम दुरुहता और क्लिष्टता है तब 'गीत', जिसका अपनी परम्परा मे सीधा-सम्बन्ध हृदय की 'रागात्मिका-वृत्ति' से है, बौद्धिकता के समावेश से मनुष्य की 'आत्मा का सहज-उच्छलन' क्या जटिल नही हो गया ?

इसी प्रश्न को दृष्टि मे रखते हुए एक आलोचक वर्ग ऐसा है जो 'बौद्धिकता' को 'गीतात्मा' के विकास-पथ की सबसे बडी बाधा स्वीकार करता है। उनकी दृष्टि मे नवगीतो मे बौद्धिकता प्रेरित आधुनिकता का प्रवेश गीति-परम्परा की स्वस्थता के लिए घातक है। उनका मत है—"आधुनिकता का सम्बन्ध युग की सवेदनशीलता से है। बौद्धिकता के बिना आधुनिकता की कल्पना नही कर सकते···आधुनिकता एक प्रक्रिया है, गीत एक परम्परागत विधा है। इसलिए आधुनिकता गीत के लिए अपने आपको बदलने के लिए तैयार नही होगी। गीत अपने केन्द्रीय भाव को त्याग देगा तो वह गीत नही रह जायेगा।"[७] इस आलोचक वर्ग की दृष्टि मे "बौद्धिकता गीत की शत्रु है क्योकि वह इसके आधार अर्थात् रागात्मक-जगत् को निगल जाती है।"[८] उन्हें सन्देह है, "यदि आधुनिक युग

विशुद्ध बौद्धिकता का है तो गीत समाप्त हो जायेगा । बौद्धिक युग की अपनी विधाए होगी । केवल उनकी नकल करके गीत प्रगति नही कर सकेगा ।"[८]

डॉ० रामदरश मिश्र को बौद्धिक निस्सगता से गीत के चिरकाल तक जीने मे सदेह है। अपने एक लेख मे वे कहते हैं—"गीत हृदय का सहारा लिए रहता है, उसके माध्यम से अनेकानेक प्रश्न मुखर नही हो सकते, जटिल-सम्बन्धो की गहरी बौद्धिक विवृत्ति नही हो सकती, उसमे किसी-न-किसी मात्रा मे गीतकार का व्यक्तिगत राग स्पर्श रहता ही है । वह वैज्ञानिक तटस्थ या बौद्धिक निस्सगता से नही जी सकता । वह हृदय को जिलाय रखता है और हृदय का जीना व्यक्ति और समाज दोनो के स्वास्थ्य के लिए हितकर है ।"[९]

लोकप्रिय गीतकार नीरज की दृष्टि मे—'गीत का दूसरा वायदा है—भावुकता रागात्मकता का । भावुकता रागात्मकता का एक सनातन मूल्य है। भावुकता राधा है, बुद्धि रुक्मिणी । रुक्मिणी स्वकीया होकर भी कृष्ण के साथ एकाकार नही हो सकी और राधा परकीया होकर भी सदा सदा के लिए उनसे सयुक्त हो गई ।"[१०]

उपर्युक्त आलोचक वर्ग से विचार-वैभिन्नय रखता हुआ आलोचको का एक दूसरा वर्ग है जो नवगीत के लिए 'बौद्धिकता' को 'आवश्यक' ही नही अनिवार्य भी मानता है। इस वर्ग की दृष्टि मे ' जिस गीत का स्नायुबल जितना ही व्यवस्थित होगा, उतना ही वह टिकाऊ, पुष्ट व प्रभविष्णु होगा। कोरी पिलपिली भावुकता कभी भी गीत के रूप मे उपस्थित होकर धोखा देने का प्रयत्न करने पर भी वाछित कलात्मक प्रभाव उत्पन्न नही कर सकती ।"[११] अत बौद्धिकता को गीत के लिए वर्जित नही माना जा सकता क्योकि वह नयी उपलब्धियो से पूर्ण है । नवगीत में उसका भी स्थान है। यद्यपि वही सर्वस्य नही । गीत केवल रागात्म-

म बौद्धिकता या वैज्ञानिक-चिन्तन को अछूत क्यो मानें ?[१२] "मचीयता ने गीतो को सगीत एव लय और नये कवियो द्वारा रचित गीतो ने नवगीतो को बौद्धिकता प्रदान की, अत गेयता और बौद्धिकता को 'नवगीत' का सेतु जोडता है, श्रोता और पाठक की दूरी कम करता है ।"[१३] इतना होने पर भी नये गीत को बौद्धिकता से बचाना होगा । गीत नया बनाने की धुन मे उसकी सहजता को विस्मृत कर देना भूल होगी ।[१४]

नयी कविता और आधुनिक गीत को 'एण्टी-रोमाटिक' बताते हुए बौद्धिकता के समर्थक बालस्वरुप राही का विचार है—"भावुकता का कोई भी रूप आधुनिक गीत को स्वीकार्य नही है चाहे वह भावुकता रोमानी हो या आदर्शों के प्रति" नया गीत भावुकता विरोधी होते हुए भी विशुद्ध बौद्धिक नही है।

इतने अधिक व्यापक और प्रसरित क्षेत्र मे 'सृजन-सम्भावना' भी बहुत अधिक है। चाहे वह वैयक्तिक या सामूहिक हो अथवा अन्तर्मुखी हो। नवगीतकार चूकि सघर्ष के थपेडो से ही प्रतिष्ठित हो पाया है इसीलिए उसका यथार्थ तीखा और पैना है। बौद्धिकता उसके लिए एक ऐसा अकुश है जिससे भाव और कल्पना को वह अनुशासित करता है। इसमे सन्देह नही कि नवगीत सौन्दर्य के नवीन बोधो से अनुप्राणित, अनुभूति की सहजता, प्रणय-सम्बन्धी नवीन-दृष्टि, मानव-हृदय की आशा-निराशा, आस्था-अनास्था को चित्रित करती हुई वह मनोभूमिका है जिसमे तात्कालिकता के स्वर की अनुगूज है। इन्ही के परिणामस्वरूप 'नयी कविता' के प्रति कवियो का आग्रह तथा 'गीत मर गया' जैसी घोषणा के उपरान्त भी 'गीतात्मा' नवगीतो मे पूर्ण सुरक्षित ही नही बल्कि वह प्रगीत के पथ पर प्रवाहमान है

सौन्दर्य के प्रति नया दृष्टिकोण

परम्परा का विद्रोही नवगीतकार न तो नयी कविता की भाति 'विदेशी केशर' की सुगन्धि की ओर आकर्षित है, न ही 'बासी कमल-गीत परम्परा' को अपनाने का इच्छुक, बल्कि वह तो 'जीवट' से परिपूर्ण हो 'जीवन-सघर्ष' से नि सृत गीत की अपेक्षा करता है।[६] उसने सौन्दर्य को 'छायावाद' की भाति वायवीय और काल्पनिक न मानकर उसकी 'भोगपरक्ता' को अगीकार किया है। उसने अपने गीतो का सौन्दर्य 'ह्रासशील मूल्यो मे खोजकर, तराशकर 'नवीनता' के आवरण मे प्रस्तुत किया है।

सौन्दर्य-सम्बन्धी यह धारणा नवगीतकारो मे मूलत एक फैशन परस्ती न होकर स्वस्थ दृष्टिकोण के आग्रह को दर्शाती है। गणतान्त्रिक व्यवस्था ने नवगीतकारो के मानस मे न-केवल जनमानस को बैठाया ही बल्कि उसके प्रति रागात्मक आकर्षण भी पैदा किया जिसका शुभ परिणाम यह हुआ कि उनके गीत न तो व्यक्तिगत फफोलो को फोडते नजर आते थे और न ही परम्परागत विशिष्ट पात्रो को विशिष्ट बिम्बो मे उजागरित करने की उनकी ललक अपितु धरती की सौधी महक मे उभरने वाला सीधा-सादा जन-जीवन ही उनकी सौन्दर्य-दृष्टि बन गया था। यही आकर उनका गीत पुराने गीत स अलगाता है और नयी दृष्टि सौन्दर्य की व्यापकता को जीवन्त भाषा मे उकेरती हुई नवगीत को व्यापक आयाम दे जाती है।

अन्तरग अनुभूतियों की सहजता

लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि नवगीतकार जन-जीवन का सौन्दर्य उकेरने मे अपनी अन्तरग अनुभूतियों को भूल गये हो। असल म अन्तरग अनुभूति

और जनमानस की धड़कन नवगीतकार की एक पारस्परिक विवशता एवं रुचि बन गया था, परिणामत: उसकी इस अभिव्यक्ति में दोनों धरातल अपनी इस सहजता से मुखर हुए हैं कि एक-दूसरे को अलग कर पाना कठिन हो जाता है। इसी सहजता का सुफल है कि इन गीतकारों का राग और कल्पना इनके गीतों में अपनी परम्परा से भिन्न एवं यथार्थवादी हो गयी है।

'भोग' और 'कल्पना' दो भिन्न दृष्टि-बिन्दु हैं। छायावादी कवि 'काल्पनिक-लोक' में विचरते हुए अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देते हैं किन्तु नवगीतकार 'काल्पनिक लोक' से बहुत दूर 'यथार्थ लोक' में भ्रमण करता हुआ 'भोगे हुए आत्मपरक सत्यों का उद्घाटन करता है। उसकी अनुभूतियाँ 'सहजता और सरलता' के कणों से अनुस्यूत हैं। छायावादी कवियों की भाँति 'जीवन से पलायन' की अपेक्षा उसने जीवन-संघर्ष को स्वीकार किया है। उसे लगा कि अनुभूतियाँ चाहे 'गरल' अथवा 'असत्य' हो—वह केवल उसी की हैं—इसीमें सुख और आनन्द है।[9] सहजता को जीवन का अनिवार्य तत्त्व स्वीकार करने वाला गीतकार नयी कविता के विदेशी प्रभाव से उधार लिए गये चिन्तन और भावों पर करारा व्यंग्य[10] करता है। नवगीतकार जीवन के भोगे हुए यथार्थों से प्रेरित होकर रचना करता है, इसीलिए उसकी अनुभूति सहज और अभिव्यक्ति सरल है।

प्रणय नयी दृष्टि

नवगीतकार ने 'प्रणय' को 'व्यापक दृष्टि'[11] से देखा है। उसने प्रणय की अभिव्यक्ति युगबोध के अनुकूल और अनुरूप की है। अपने प्रणय को उसने 'छायावादी रहस्य अवगुंठन से आध्यात्मिकता का स्पर्श' देने की अपेक्षा मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित किया है। यह सत्य है कि प्रणय के प्रति नयी दृष्टि के कारण उसने उसे 'शहरी एवं लोकजीवन' के सन्दर्भों में ही चित्रित किया है। जहाँ 'प्रणय' का धरातल शहरी है वहाँ वह 'बौद्धिकता' से सम्प्रेषित है। और जहाँ 'प्रणय' लोक जीवन का स्पर्श करता वहाँ 'प्रणय' अपनी समस्त गरिमा और महिमा से जीवन को स्पर्श करता रहता है। इतने पर भी उसने प्रणय को यान्त्रिक, काल्पनिक, रूढ़िबद्ध और परम्परागत रूप में देख उसका अपनी 'एण्टी-रोमाण्टिक वृत्ति से साक्षात्कार कराया है। इसी वृत्ति को अपनाते हुए उसने जिस 'प्रेम की ऊब'[12] का चित्र खींचा है, निश्चय ही वह सराहनीय है। इसके साथ-साथ रूपासक्ति तथा मिलन के मांसल-क्षणों की अनुभूतियों[13] को भी गीतों में बाँधने का प्रयास दिखाई देता है। नये बिम्ब, नये प्रतीक विधान का आश्रय लेकर उसने अपना कार्य सफलता से सम्पन्न किया है। रूप-सौन्दर्य के साथ ही 'वासना की सहज अनिवार्यता'[14] को बेझिझक स्वीकार कर चलने वाला नवगीतकार, 'दिन

भर की अलसित बाहों के 'मौन' को 'तोडने' की उलझन मे उलझा कवि मन, 'रस भीनी रात की कथा' कहता हुआ उसका मौन हृदय प्रिया के प्रेरक रूप के प्रति श्रद्धावनत है।[103] उसकी प्रिया उसके समस्त नैराश्यान्धकार को दूर करने मे समर्थ, 'पूरनमासी'[104] के चन्द्रमा की भाँति है। प्रिया को देखते ही व्यतीत-व्यथा[105] से उभर जाना उसकी नियति है। सही कारण है कि विरह के क्षण-युगो को सहते हुए जहा प्रिय को 'प्रिया का गार्हस्थिक बोध' होने लगता है वही कवि का 'प्रणय और प्रणयिनी'[106] पर विश्वास भी अमर और चिरन्तन है। प्रणय के प्रति यही दृष्टि नवगीतकारो की 'एण्टी रोमाण्टिक एप्रोच' है जिसमे उन्होने 'अतिशय भावुकता' का 'रागात्मकता' मे पर्यवसित कर दिया है। इनके 'प्रणय' की सर्वप्रमुख विशेषता है...प्रत्येक रचना को अनुभूति का ही अग मानकर चलना किन्तु नवगीतकारो के प्रणय चित्र जहाँ उर्दू-फारसी[107] से प्रभावित है वही वे 'नयी कविता के प्रणय-भाव[108] और 'रीति कालीन शृङ्गार चित्रो[109] के प्रभाव से अछूत भी नहीं हैं।

महानगरीय सन्त्रास

'नयपन के 'मोह' के वशीभूत ग्रामीण भारतीयो का दिन ब-दिन नगरो, शहरो, महानगरो की ओर प्रयाण ने जहा हमारे समक्ष सास्कृतिक सकट उत्पन्न कर दिया है, वही वह हमारी सस्कृति के मानव-मूल्यो को 'दीमक' की भाति भीतर-ही भीतर खाने लगा है। शहरो, नगरो-महानगरो की औद्योगिकी सभ्यता का सब से बडा दुष्परिणाम हुआ—'आत्मीयता' का 'औपचारिकता' मे परिवर्तन-औपचारिकता की परिणति[110] ऊब, ऊब से उत्पन्न सशय, तनाव, व्यस्तता, भीड-भाड, निराशा, अनास्था, घबडाहट, हृदयहीनता, कुण्ठित मनोविज्ञान, रोजी-रोटी का भीषण सकट तथा दफ्तर मे बन्दी जिन्दगी आदि विभिन्न कोणो से नवगीतकार ने 'महानगरीय सन्त्रास' को चित्रित किया है।[111]

'शहरी-मच' पर 'सतही सामाजिकता' का 'साम्राज्य' होने से कवि को इसके 'शहरीपन' पर सन्देह होने लगा है। इन शहरो मे 'मानव-मूल्य' मानो 'मुद्रा-मूल्य' हो। ऐसे सशय, तनाव, कुण्ठाओ मे पलते हुए मानव की 'इच्छाए' मर भी जाए तो आश्चर्य नही है।

शहरी वातावरण के सन्त्रास से त्रसित कवि हृदय ने जीवन के 'निषेधात्मक मूल्यो को अनायास ही गृहीत कर लिया है। इस वातावरण की अस्तव्यस्तता मे 'जिन्दगी भागती हुई सी'[112] प्रतीत होती है जिसका प्रत्येक पल उसे 'घुटन और टूटन'[113] की ओर धकेलने का उपक्रम कर उसके हृदय मे 'अनास्था' को जन्म देता है—'अनास्था' निराशा[114] को, 'निराशा' सशय को। सशय के कारण कवि-मन 'द्वन्द्व'[115] मे उलझकर रह गया है। परिणामस्वरूप उसके हृदय की 'सृजन

आकाक्षा' धीरे धीरे विशृ खलित होने लगती है ।

सामाजिक और राजनीतिक चेतना

नवगीतकार के हृदय से वही नि सृत होता है जो उसका हृदय भोगता है । परपरा विद्रोही इस गीतकार ने न अपने पैरो को सहलाने की जरूरत महसूस की और न ही दूसरो के तलुये सहलाने की । सप्तक के अन्वेषी कवियो का कार्य उसने भी चुना है । वह मतानुगामी नही है ।[११७] समसामयिक परिस्थितियो के परिणाम स्वरूप 'परम्परा' एव 'सस्कारो' का दिव्य रूप नवगीतकार के समक्ष था, उस 'दिव्यरूप' का दर्पण छिन्न भिन्न हो गया । जिन 'मानवीय मूल्यो से मानव की प्रतिष्ठा है, वह व्यावसायिक हो गये । इसी के परिप्रेक्ष्य मे नवगीतकार सामाजिक चेतना के साथ तेजी से परिवर्तनशील मूल्यो के चित्र भी खीचता है ।[११८] उसकी 'आत्मा' समसामयिकता के कारण उद्भूत हुई 'सुविधावादी' प्रवृत्ति से समझौता नही कर पाई । 'सुविधावाद' के युग मे मनुष्य के आचरण की सवेदनहीनता का अहसास कर, खोखली नारेबाजी जबरदस्ती ओढी हुई आत्मीयता को कवि ने आत्मीयता से महसूस किया ·[११९] परिणामत यथार्थ भूमि का 'मोह भग'[१२०] स्वाभाविक था । उसने जान लिया था कि खुशामद के बिना जीवित[१२१] रहना असम्भव है । इसके बाद भी उसने इसके समक्ष घुटने नही टेके, बल्कि जीवन-सघर्ष[१२२] को अपनाया । उनका राष्ट्रीय प्रेम 'काल्पनिक जगत्' का न होकर यथार्थ जगत् की पूजी है क्याकि नवगीतकारो के उद्भव के समय देश स्वतन्त्र हो चुका था इसलिए उनकी 'राष्ट्रीय चेतना' काल्पनिक और वायवी न होकर समसामयिक है । विद्रोही प्रकृति' के होने के कारण स्वतन्त्र जनता के उत्पीडन को देखकर उन्होने शासक-वर्ग पर करारा व्यग्य किया है । शासक वर्ग द्वारा निर्मित इस राजनीतिक-सामाजिक व्यवस्था पर व्यग्य ही नही[१२३] उसे परिवर्तित करने की अकुलाहट भी इन गीतो मे विद्यमान है । इन गीतकारो मे युग-चेतना सम्पूर्ण आवेग के साथ फूटी है । उदाहरण के लिए हम राही की युगीन छटपटाहट[१२४] को सामने रख सकते हैं ।

प्रकृति : सापेक्षता का माध्यम

'परम्परा विद्रोहक' नवगीतकार ने न तो प्रकृति का उपदेशक रूप ग्रहण किया और न दार्शनिक धरातल पर उसका अकन ही ग्राह्य माना बल्कि उसने तो प्रकृति को 'अन्तरग चेतना के माध्यम' से अभिव्यक्ति दी । नवगीतो मे प्रकृति मनुष्य के सुख और दु ख की सहभागिनी हो गयी है । क्योकि बदलते हुए परिवेश और आयाम से 'प्रकृति' सुख-दु ख, हर्ष विषाद का अनुभव करने वाले 'मानव' का रूप धारण कर 'मानवीय'[१२५] सिद्ध हो गई है ।

मानव का सीधा सम्बन्ध समाज से है, इसीलिए प्रकृति-चित्रो के माध्यम से नवगीतकार ने 'सामाजिक-बोध' को भी स्पष्ट कर दिया है। प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ-साथ अत सलिला के रूप मे वैयक्तिक पीडा का स्वर भी विद्यमान है। इतना ही नही, नवगीतकारो ने प्रकृति के आलम्बन[111] रूप-चित्रण के अतिरिक्त अछूते प्रतीक और जीवन्त बिम्बो[112] को भी प्रस्तुत किया है।

५ शिल्पिक उपकरण

नवगीतकारो ने न-केवल नि शेष होती हुई गीतिधारा को वर्ण्य-विषय की दृष्टि से नए क्षितिज प्रदान किए बल्कि शिल्पिक उपकरणो को भी समृद्धि और सम्पन्नता प्रदान की। युग-बोध के परिप्रेक्ष्य मे छायावादी एव छायावादोत्तर कलात्मक उपकरण एक ओर अपनी निरर्थकता और शिथिलता को सिद्ध कर चुके थे तो दूसरी ओर उनके बासी, रूखे, दीमक से खाए हुए, शिथिल निरर्थक शिल्पिक उपकरणो को नवगीतकार ने स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था। कारण चाहे कुछ भी रहा हो किन्तु इतना निश्चित है कि 'इन नये गीतकारो के लिए अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए विधा का उतना महत्त्व नही है जितना भीतर की अर्ज का।'[126] अत अनुभूति की 'ज्यो की त्यो' अभिव्यक्ति ने नवगीत को 'सक्षिप्तता' के घेरे मे आबद्ध कर दिया किन्तु यह 'सक्षिप्तता' सचेतन और सजीव थी जो नवगीतो का वैशिष्ट्य स्वीकार किया जाता है नवगीतो के 'विशिष्ट वैशिष्ट्य' का आधार है—नवीन छन्द-योजना, प्रतीक-विधान, बिम्ब-विधान।

संक्षिप्तता के प्रति आग्रह

प्राचीन गीत-परम्परा पर दृष्टिपात करते हुए हम ने गीत को 'क्षणिक अनुभूति' माना था, नवगीतकार भी 'गीतो की आत्मा रागमयता'[111] को स्वीकार कर 'क्षणिक अनुभूतियो' के आकलन की ओर सकेत करते हैं। उन्होने सक्षिप्तता का औचित्य प्रभावान्विति के लिए स्वीकार किया है। यदि गीतकार गीत की उपयोगिता के लिए कही 'सक्षिप्तता' का अतिक्रमण करता हुआ विस्तृत परिधि मे आ जाता है तो किसी को आपत्ति भी नही है। सक्षिप्तता के प्रति इनका यह आग्रह मात्र गीत की सहजता, स्वाभाविकता और एकान्विति के लिए ही है।

छन्द · नयी दृष्टि

निराला की भाति नवगीतकार छन्दो के बन्धन तोड 'मुक्त' और 'स्वच्छन्द'[114] गान की ओर आसक्त हुए। 'मुक्त छन्द' यद्यपि कोई विशेष छन्द नही बल्कि "छन्दो के कोरे और शुष्क बन्धनों' से मुक्ति प्राप्त करना है। 'परस्पर विरोधी वक्तव्यो' के कारण जैसे नवगीतकार ने दूसरे के वर्ण्य विषय को न अपना 'वर्ण्य

विषय की वैविध्यता' गीत को प्रदान कर दी वैसे ही एक नवगीतकार दूसरे नवगीतकार के छन्द विधान को नही अपनाता। नवगीत की प्रकृति ही ऐसी है कि उसकी रचना किसी विशिष्ट छन्द अथवा लय मे होती ही नही, ऐसी परिस्थिति मे प्रत्येक नवगीतकार के पास अपने छन्द-विधान का समृद्ध कोश है। नवगीतकारो की दृष्टि मे‥‥"नवगीतो मे छन्द का ठोस अनुशासन टूट (अर्थात् निरर्थक सारहीन) गया है। यह आवश्यक नही है कि गीत छन्द-बद्ध, तुक सम्मत रूपाकार मे ही सम्भव हो सकता है। गीत-शैली के इस प्रचलित स्वरूप और तज्जनित परिभाषा को मैं गीत की यान्त्रिक रीढ मानता हू।"[11] वस्तुत छन्दो के प्रयोग से उत्पन्न हुई *अनावश्यक शब्दो की भीड से तभी मुक्ति सम्भव है* जब 'कठोर छन्दो के अनुशासन की अवमान हो। इस कठोर छन्द के तुक निर्वाह बन्धन ने कविता को नीरस, जड और यान्त्रिक बना दिया था। यद्यपि लोग ' साहित्यिक गीत को आज भी पिया, जिया, हिया आदि तुको की पुनरावृत्ति मानते है, उनके विषय मे केवल यही कहा जा सकता है कि गीत नही, वे ही समय से पिछड गये हैं।'[12] *मुक्त छन्द से जहा गीत की 'नीरसता' समाप्त हो गई वही* इस (मुक्त छद) के प्रणयन से छन्दो की विविधता ने भी स्थान बना लिया है। 'चरणो की भी कोई निश्चित और निर्धारित सख्या नही है, चाहे वह आठ पक्तियो मे समाप्त हो या बीस पक्तियो मे। इन्ही गीतो को सरसता प्रदान करने के लिए नवगीतकार ने लोक धुनो और छन्दो का प्रयोग किया है। निराला ने जो बात सिद्धान्त रूप मे कही थी उसी का अनुकरण करते हुए उसे व्यावहारिक रूप देकर जो 'नयी दृष्टि छन्दो' के क्षेत्र मे, नवगीतकार ने दी है, निश्चित ही वह श्लाघ्य है।

नवगीतकारो द्वारा मुक्त छन्द अपनाकर 'तुक-बन्दी को अनावश्यक करार देने का उनका अभिप्राय यह कदापि नहीं कि 'सवेगात्मक लय' की भी परिसमाप्ति हो जाये।'*गीत होने के नाते उसमे लय तो रहती ही है* , सगीत चाहे न हो।'[13] क्योंकि लय की उपस्थिति से गीत की असगतिया-विसगतिया निःशेष हो जाती हैं इसीलिए उन्होने 'लय' की अनिवार्य आवश्यकता पर बल दिया है। उनकी दृष्टि में लय गीत का वह आन्तरिक सूत्र है जो उसके अर्थ-शिल्प के रूप को नियोजित किये रहता है। जब एक ही भाव स्वय को एक ही लय मे व्यक्त करता है, तब *उसकी सम्प्रेषण शक्ति म ही वृद्धि नही* होती बल्कि उसकी प्रभाव क्षमता और स्मरणीयता भी बढ जाती है।'[14] अत नवगीतो मे 'लय अर्थानुधावी' है।

नवगीत सगीत निरपेक्ष

नवगीतकारो की मान्यता है कि सगीतातिरेक कवित्व को क्षति पहुचाता है वह गीत को गाना बना देता है।'[15] किन्तु प्रश्न उठता है कि गीत सगीत निरपेक्ष

कैसे सम्भव है, चाहे वह 'नवगीत' ही क्यो न हो ? क्योकि गीत का सगीत से सम्बन्ध चिरन्तन काल से है। गीत की सार्थकता ही सगीत है। लेकिन सगीत स्वरात्मक और स्वराश्रित होता है। उसके लिए स्वर ताल के साथ साथ 'छन्दो के बन्धन' होने भी आवश्यक है किन्तु नवगीत ने स्वर और ताल को अपनाया ही नही और न छन्दो के बन्धन को स्वीकारा, नवगीतकार ने तो मुक्त और स्वच्छन्द होकर गीतो की सर्जना की है। उसने लय' को महत्त्व दिया है किन्तु वह 'लय' अर्थ निरपेक्ष शुद्ध 'गणितात्मक लय' न होकर 'अर्थानुधावी' है, मात्र *इसी आधार पर नवगीतकार ने गीतो की 'सार्थकता' में 'सगीत का बहिष्कार* कर दिया है। इसका एक कारण सम्भवत 'टेक की तुक का परिहार' भी रहा है क्योकि टेक' के आग्रह मे गीतकार की दृष्टि साग्रह टेक पर केन्द्रीभूत *रहती है जिसमे गीत की सहजता, स्वाभाविकता रागात्मकता के नष्ट होने की* आशका रहती है। पाद की जान टेक की तुक नही, टेक का केन्द्रस्थ भाव है। नवगीतकार चाहता है कि उसे इस विषय मे स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि यदि *वह चाहे तो स्वेच्छापूर्वक गीतो की कलात्मकता मे परिवर्तन कर सके। यू तो* इस युग की वैज्ञानिक उपलब्धियो ने परम्परागत वाद्य-सगीत का यन्त्र-सगीत मे परिवर्तित कर दिया है। प्राचीन परम्परागत गीत स्वरात्मक और स्वराश्रित *होता है लेकिन नवगीत इनका परिहार करते हुए गीत मे सवेगात्मक लय की* अनिवार्यता को स्वीकार करता है, चाहे उसमे सगीत हो या न हो।[116] यद्यपि कतिपय नवगीतकारो के गीतो से सगीत का अजस्र निर्झर फूटता है, कारण *उनकी दृष्टि मे "गेयता (सगीत) और बौद्धिकता को नवगीत का सेतु जोडता है।'*[117]

प्रतीक विधान

जीवन की विविधता का रेखाकन करने वाले इन नवगीतकारो ने अपने प्रतीको का चयन भी जीवन के वैविध्य से किया है। एक ओर यदि गार्हस्थिक-जीवन[118] के विभिन्न पक्षो का हृदयस्पर्शी उद्घाटन है तो दूसरी ओर प्राचीन सस्कृति[119] से आधुनिक बोध को अभिव्यजित करने का सहज प्रयास देखा जा सकता है।

बिम्ब विधान

बिम्बो के आगमन से गीतकार का 'निजी अस्तित्व' स्पष्ट न होकर 'सकेत' बन जाता है, इसीलिए 'गीत' मे बिम्बो का स्थान नगण्य है, फिर भी अनायास ही नवगीतो मे बिम्बो के आ जाने से अद्भुत सौन्दर्य[120] बिखर गया है।

व्यंग्य

जहा तक गीत 'आत्मा का सहज उद्वेलन' या रागात्मकता होता है वही तक वह 'अभिप्रेय' रहता है किन्तु जब रागात्मकता का समजन 'बौद्धिकता से हो रहता है, वहीं 'व्यग्य' जन्म ले, तीखे और पैने काटे चुभाता हुआ —अपने अस्तित्व का आभास देने लगता है। नवगीतकारो ने समसामयिक विद्रूपियो, दुर्बलताओ तथा असगतियों-विसगतियों पर करारा व्यंग्य[१५१] किया है।

अलंकार

नवगीतकारो ने विभिन्न-शिल्पिक-उपकरणो से अपने गीत के शिल्प-पक्ष को उजागर किया है लेकिन 'अलकार' एक ऐसा पक्ष है जिसमे उन्होंने कतई रुचि प्रदर्शित नही की। फिर भी यदा-कदा समाज के चित्रो के झुटपुटे मे से सादृश्य विधान[१५२] का सौंदर्य झलक जाता है।

प्रगीत प्रकार

बालस्वरूप राही तथा माहेश्वर तिवारी ने प्राचीन प्रचलित 'गजल' को भी नवगीतो मे स्थान दिया है। लेकिन 'गजल गोई'[१५३] के प्रयोग नवगीतों मे अपवाद स्वरूप आये है। शमशेर, बलवीर सिंह रग, चन्द्रसेन विराट् और दुष्यन्त कुमार की गजलें अपने नये तेवर के कारण इस हद तक विशिष्ट हो गई हैं कि उन्होंने तथाकथित गजलो का दायरा तोडकर नवगीतो मे प्रवेश पा लिया है। यह प्रवेश न तो गैर मुनासिब था और न ही अस्वाभाविक। गजल जैसी विधा इन गीतकारो के हाथ म पडकर अपनी व्यक्तिगत इश्कमिजाजी को छोडकर सामाजिक यथार्थ को बडे बुलन्द तरीके से प्रगट करने लगी थी। शमशेर कहता है—' जहा म अब तो जितने रोज, अपना जीना होना है। तुम्हारी चोटें होनी हैं, अपना सीना होना है।"[१५४] गजल का यह मुखडा अपनी व्यक्ति-इयत्ता के बावजूद क्या क्रूर व्यवस्था पर एक जबरदस्त वार नजर नही आता और इसी तरह दुष्यन्त कुमार की गजलो के य नफीस टुकडे[१५५] अपनी सीमाए तोडते हुए क्या इकलाब का हाथ पेश करते हुए नजर नही आते?

तात्पर्य यह है कि नवगीतकारो ने अपने प्रयोग के लिए भारतीय अथवा अभारतीय किसी भी काव्य-विधा और शिल्प को भले ही अपनाया हो लेकिन उनकी नजर प्रयोग पर कम आन्तरिक लय पर अधिक रही, इसी का शुभ परिणाम है कि दुष्यन्त जैसे कवि के हाथो से गजल की परम्परित धारणा ही बदल गई और पूरी रोमानियत के बावजूद उसमें युग-चिन्तन की विद्रूपता, अभाव, सघर्ष की ललक एव विवशता समाहित हो गई।

भाषा

नवगीत-शिल्पी भाषा' का भी चतुर चितेरा है। यह सत्य है कि भाषा के क्षेत्र में उसने 'नयी' शब्दावली का प्रयोग नहीं किया, किन्तु उसने पुरानी जर्जरित और बासी शब्दावली को अपनी कला द्वारा, इस प्रकार वाक्य-विन्यस्त किया है कि वह अपने 'कथ्य' की अभिव्यक्ति में समर्थ हो, नवीनता से परिपूर्ण हो गई है। नवगीतकारों की भाषा भावानुकूल है। जहाँ उनकी भाषा में नगरीय सन्त्रास' को जीवन्तता के साथ चित्रित करने की क्षमता है वहीं 'आंचलिकता' को साक्षात् प्रस्तुत करने की सामर्थ्य भी। नवगीतकारों की भाषा का सर्वश्रेष्ठ गुण वातावरण निर्माण[४६] का है। 'शब्द' विशेष का कोई मोह नहीं वल्कि *अंग्रेजी (कैक्टस), उर्दू-फारसी (ख्वाब खुदकुशी) आदि शब्दों का प्रयोग* उन्होंने यथावसर यथास्थान किया है। सर्वत्र जीवित भाषा' (अर्थात् जो युग *के अर्थ को सूक्ष्मता से सम्प्रेषित कर सके) का प्रयोग कर नवगीतकारों ने अपने* भावों का सम्प्रेषण सफलतापूर्वक किया है। उनकी भाषा के विभिन्न रूप देखे जा सकते हैं – कल्पनामय किन्तु सौन्दर्य सम्पन्न[४७] आधुनिक जीवन का नग्न यथार्थ-खोज[४८] घुटन, टूटन की अभिव्यक्ति, रोमानीभाव,[४९] तीज त्योहार की संस्कार-मयी भाषा,[५०] आंचलिकता[५१] का स्पर्श आदि।

अतः नवगीत की भाषा थोड़े में बौखलाए हुए बुद्धिजीवियों अथवा राजनीतिज्ञों की बेमानी भाषा नहीं है। उसमें एकालाप अथवा आत्मग्रस्तता के बदले सामाजिक सन्ताप का स्वर प्रमुख है। भाव एवं भाषा दोनों दृष्टियों से नव गीतकार की भाषा वैविध्य-वैशिष्ट्य से परिपूर्ण है। नवगीतकार अपनी सशक्त और सजग भाषा के माध्यम से ही आधुनिक युग बोध को अपने गीतों में जीवन्तता के साथ चित्रित करने में सफल रहे हैं। □□

संदर्भ-संकेत

१ द्रष्टव्य *(सं० भूपेन्द्र कुमार स्नेही तथा दिनेशायन) गीत-पत्रिका (संख्या-१,२) सम्पादकीय।*

२ गीत-पत्रिका (संख्या-१) आज का गीत भावभूमि और वैशिष्ट्य, पृ० १६।

३ द्रष्टव्य धर्मयुग नयागीत २० मार्च, १९६६।

४ द्रष्टव्य गीत पत्रिका (संख्या-२), आधुनिक बोध और नया गीत, पृ० १३।

५. द्रष्टव्य : वातायन, जुलाई, १९६३, पिछले दशक के आधुनिक गीत।
६. द्रष्टव्य : गीत-पत्रिका (संख्या-१), आवश्यकता है आधुनिक गीत की।
७ द्रष्टव्य वही : (संख्या-२) आज का गीत : एक निजी प्रतिक्रिया, पृ० २१।
८. डॉ० रामदरश मिश्र : हिन्दी कविता तीन दशक नये गीत, पृष्ठ २०२।
९ "गीतांगिनी के सहयोगियों ने आधुनिकतर गीत, बिम्ब गीत, तात्त्विक गीत आदि कुछ नामों का सुझाव दिया था किन्तु मैंने गीतों की सम्भावना को काल, प्रवृत्ति और शिल्प की एकान्तिक सीमा में बांधना चाहा था, तभी नवगीत की संज्ञा दी। नयी कविता के कवियों द्वारा प्रस्तुत गीत, पिछली पीढ़ियों के परवर्ती और ईषत् भिन्न गीत और छायावादोत्तर विवेक कल्प गीतकारों के नवायोजित गीत कोई श्रेणिक नाम नहीं पा सके थे। साथ ही नई पीढ़ी के गीतकार भी अपने सहज नूतन गीतों के लिए ऐसे नाम खोज रहे थे "अन्ततः नवगीत संज्ञा ही सर्वाधिक उचित प्रतीत हुई।"—नवगीत अंक : गीतांगिनी पत्रिका : जुलाई, १९६६, पृ० ५३.
१० कमलेश्वर : बयान, पृ० ६।
११ "नवगीत एक सापेक्षिक शब्द है। नवगीत की नवीनता युगसापेक्ष्य होती है। किसी भी युग में नवगीत की रचना हो सकती है। गीत-रचना की परम्परागत पद्धति और भाव-बोध को छोड़ कर नवीन पद्धति और नवीन भाव-सरणियों को अभिव्यक्त करने वाले गीत जब भी और जिस युग में लिखे जायेंगे, नवगीत कहलायेंगे।" —कविता . १९६४, पृ० ७८।
१२ द्रष्टव्य : चिन्तन के क्षण, पृ० ६५।
१३ "नवगीत जैसा नाम नयी कविता के वजन पर ही आया है—लेकिन कुछ समय के लिए इसकी सख्त जरूरत भी है जिससे कि व्यतीत जीवी भाव-बोध और बासी शैली-शिल्प में लिखे जाने वाले गीतों की लम्बी कतार से अत्याधुनिक गीतों को अलग किया जा सके।" —वातायन . अप्रैल १९६५, पृ० २१।
१४. कविता और कविता : भूमिका : पृ० ३।
१५. द्रष्टव्य : धर्मयुग : २५ फरवरी, १९६८, २ मार्च १९६८ (गीत और प्रगीत)।
१६. गिरिजाकुमार माथुर : नयी कविता सीमाएं और सम्भावनाएं, पृ० ११८।
१७. ठाकुरप्रसाद सिंह : हिन्दी गीत कविता : स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य विशेषांक-६, आलोचना : जून, १९६५, पृ० ११।

१८ वीरेन्द्र मिश्र · वासन्ती, दिसम्बर, १९६२, पृ० ३-४।
१९ गीतांगिनी ५ फरवरी, १९५८, पृ० ३-४।
२० कविता (१९६४) प्रस्तुति (भूमिका), पृ० ६।
२१ डॉ० रामदरश मिश्र वासन्ती मार्च, १९६२ गीत और मेरे गीत, पृ० १२।
२२ द्रष्टव्य डॉ० रवीन्द्र भ्रमर वातायन गीत अक, १९६५।
२३ गीत-पत्रिका (सख्या-१) भूमिका।
२४ ज्योत्सना (पटना सितम्बर, १९६१)
२५ आजकल (दिल्ली अगस्त, १९६२)
२६ कल्पना (हैदराबाद अक्तूबर, १९६३)
२७ ज्ञानोदय . (कलकत्ता · अक्तूबर, १९६३)
२८ लय (अलीगढ अगस्त सितम्बर-अक्तूबर १९६७)
२९ मूल्याकन (लखनऊ जनवरी, १९६८)
३० सम्बोधन काकरोली अक्तूबर, १९६८)
३१ नीरा (त्रैमासिक जयपुर जून-अगस्त १९६८)
३२ शताब्दी (जबलपुर मई १९६९)
३३ नई धारा (पटना १९६७)
३४ राष्ट्रवाणी पुणे (सितम्बर, १९७१)
३५ साहित्य परिचय (जनवरी, १९६७, पृ० ५६)
३६ वातायन (अगस्त, १९६६, पृ० ३३)
३७ द्रष्टव्य, धर्मयुग (१६ मई, १९६५)
३८ वही (५ दिसम्बर १९६५)
३९ वही (१९ दिसम्बर, १९६५)
४० वही (२४ अक्तूबर, १९६५)
४१ वही (२ जनवरी, १९६६)
४२ द्रष्टव्य, धर्मयुग (२० मार्च, १९६६)
४३ वही (२५ फरवरी १९६८, ३ मार्च, १९६८)
४४ वही (३० अक्तूबर १९६६)
४५ वही (२७ नवम्बर, १९६६)
४६ हिन्दी साहित्य सघ के तत्त्वावधान म (नवगीत वैचारिकी) २-११-१९६६
४७ हिन्दी परिषद् अलीगढ विश्वविद्यालय बाईसवें अधिवेशन मे।
४८ चन्द्रदेव सिंह पाच जोड बासुरी भूमिका पृ० १३-१४।
४९ द्रष्टव्य लेखनी बेला, पृ० ११।
५० डॉ० शिवप्रसाद सिंह आधुनिक परिवेश और हिन्दी नवलेखन पृ०२३८।

*५१ पाच जोड बासुरी गीत सकलन का समर्पण 'बच्चन' को है।
*५२ देवेन्द्रकुमार उत्कर्ष कविता-विशेषाक, १९६७ पृ० १२८।
५३ डॉ० विनोद गोदरे छायावादोत्तर हिन्दी प्रगीत, पृ० २४८।
५४ वीरेन्द्र मिश्र लोकप्रियता और कलात्मक अभिरुचि वासन्ती, दिसम्बर, १९६१।
५५ कविता, १९६४ (अलवर) प्रस्तुति।
५६. वातायन आज का गीत अक पत्र-गोष्ठी अप्रैल १९६५, पृ० ६६।
५७ गिरिजाकुमार माथुर नयी कविता सीमाए और सम्भावनाए पृ० ११७।
५८ डॉ० शम्भूनाथ सिंह कविता १९६४ (अलवर) नवगीत, पृ० ७८।
५९ डॉ० रमेशकुन्तल मेघ कविता १९६४।
६० देवेन्द्र कुमार उत्कर्ष कविता विशेषाक १९६७, पृ० १२८।
६१ माहेश्वरी तिवारी सम्बोधन अक्तूबर, १९६६।
६२ उदयभानु मिश्र माध्यम जनवरी १९६८, पृ० २१।
६३ ठाकुरप्रसाद सिंह आलोचना (स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य विशेषाक) १९६५, पटना।
६४ डॉ० नामवर सिंह (गीत-१ दिल्ली) गीत सरलता की ओर, पृ० ३८।
६५ डॉ० महावीरप्रसाद दाधीच आधुनिकता और भारतीय परम्परा गीत एक विवेचन, पृ० ९३।
६६ भवानीप्रसाद मिश्र (गीत-१) गीत को अभी पख देने हैं, पृ० ३६।
६७ डॉ रामदरश मिश्र कविता, १९६४, पृ० ११८।
६८. रवीन्द्र भ्रमर धर्मयुग, २ जनवरी १९६६, पृ० १७।
६९ द्रष्टव्य शिवप्रसाद सिंह आधुनिक परिवेश और हिन्दी नवलेखन, पृ० २३८।
७० द्रष्टव्य देवेन्द्र कुमार उत्कर्ष अकविता विशेषाक, जनवरी १९६७, पृ० १२७।
७१ गीतागिनी ५ जनवरी, १९५८, पृ० ३४।
७२ डॉ० जगदीश गुप्त नयी कविता स्वरूप और सम्भावनाए, पृ० १०२।
७३ वीरेन्द्र मिश्र विमश १९६२, पृ० ५२ (नवगीत विभाजक तत्त्व नव गीत का प्रारम्भ)
*७४ 'मेरी कोशिश यह है कि वस्तु तो बौद्धिक हो क्योंकि वह हमारे युग की सच्चाई के अधिक निकट होगी किन्तु अभिव्यजना रागात्मक होनी

चाहिए बौद्धिक अनुभूतियों को पचाकर, उन्हे सवेदनात्मक बनाकर ही मैं प्रस्तुत करना चाहता हू।"

७५ बालस्वरूप राही नया गीत धर्मयुग, पृ० १७ (२० मार्च, १९६६)

७६ ओम् प्रभाकर विमर्श १९७२, आधुनिक हिन्दी कविता का वास्तविक स्वरूप, पृ० ४९।

७७ गीत पत्रिका (सख्या १) भूमिका।

७८ द्रष्टव्य शिवप्रसाद सिंह आधुनिक परिवेश और हिन्दी नवलेखन, पृ० २४२।

७९ कुंवरपाल सिंह धर्मयुग १४ अप्रैल १९६८ पृ० ६ (गीत नवगीत)।

८० बच्चन (गीत-२) गीत कुछ स्थितिया मे युगबोध और आधुनिकता, पृ० १६-१७।

८१ वही पृ० १६-१७।

८२ डॉ० रामदरश मिश्र वासन्ती मार्च १९६२ गीत और मेर गीत पृ० ११।

८३ नीरज धर्मयुग ५ दिसम्बर १९६५, पृ० २३।

८४ डा० रामेश्वर दयाल खण्डेलवाल वातायन गीत अक अप्रैल १९६४, पृ० ५६।

८५ वीरेन्द्र मिश्र विमर्श १९६२, गीत नवगीत विभाजक तत्त्व तथा नवगीत का प्रारम्भ, पृ० ५२।

८६ द्रष्टव्य वही धमयुग १९ दिसम्बर १९६५ पृ० २३।

८७ द्रष्टव्य वही वासन्ती दिसम्बर १९६२ लोकप्रियता और अभिरुचि, प० २०।

८८ बालस्वरूप राही धर्मयुग २० मार्च १९६६ नया गीत पृ० १७।

८९ (क) "गीत नया जन्मालय को मानवता से
मन को सवेदन से जोडेगा। लेकिन भावुकता की
रीत गए छदा की रूढिया तोडेगा।'
—वही जो नितान्त मेरी हैं पृ० २।
(ख) 'सोन जूही की सुरभि नही भाति। हमे कक्टस ने ललचाया है।"
—वही पृ० २।

९० आम् प्रभाकर अकन जुलाई १९६७ पृ० २० नवगीत।

९१ 'मैं तुम्हारे चरण चिह्नो पर चलू मैं तुम्हारे दिए साचे म ढलू
ऐसा दुराग्रह क्यो ?। ऐसी दुराशा क्यो ?
—उमाकान्त मालवीय धर्मयुग मई, १९६८।

९२ द्रष्टव्य · राजेन्द्रप्रसाद सिंह : नवगीत . वैचारिका, जुलाई, १९६९, पृ० ५६।
९३ द्रष्टव्य · वीरेन्द्र मिश्र · विमर्श, १९७२, पृ० ५१।
९४ चन्द्रदेव सिंह पाच जोड बासुरी, पृ० १३-१४।
९५. 'कैसा वातावरण अनोखा है, स्वर जिसको बाँध नही पाता।
थोडी-सी भूमि गुनगुनाता हू, ज्यादा आकाश छूट जाता है।"
—वीरेन्द्र मिश्र धर्मयुग . २१ जुलाई, १९६८।
९६. "हम को क्या लेना है परदेशी केशर से। बूढे हिमपात
सडते तालाबो मे खिले हुए बासी जलजात स
हम को तो लिखने हैं गीत नये। पिघले इस्पात से।"
—बालस्वरूप राही · जो नितान्त मेरी है, पृ० ८६।
९७ "चाहे वे कडवी हो, चाहे वे हो असत्य
मुझ को तो प्यारी हैं वे ही अनुभूतिया
जो नितान्त मेरी हैं।"
—बालस्वरूप राही · जो नितान्त मेरी है, पृ० ७८।
९८. "यह कब हुआ कि हमने अपने अनुभव स सीखा हो
कुछ उधार के लिए भाव,
कुछ ओढ लिया चिन्तन को।"
—पुष्पा राही : ओढा हुआ चिन्तन . गीत-२, पृ० ६७।
९९. "पीर मेरी कर रही गमगीन मुझको
और उससे भी अधिक तेरे नयन का नीर रानी
और उससे भी अधिक तेरे पाव की जजीर रानी।"
—वीरेंद्र मिश्र गीतम, पृ० ६३।
१००. "चीजो के कोने टूटे। बातो के स्वर डूब गए
हम कुछ इतना अधिक मिले। मिलते-मिलते ऊब गए।"
—ओम प्रभाकर पाच जोड बासुरी, पृ० १३२।
१०१. आओ उस मौन को दिशा दे दें
जो अपने होठों पर अलग-अलग पिघलता है।"
—चन्द्रदेव सिंह · गीत-२, पृ० ७१।
१०२. "आखो की शाख, देह का तना। ऊपर से महुवे का टपकना
मेरे हाथो हल्दी-सी लगकर। छूटो मत प्राण! पास मे रहकर
झरती है चाद किरन झर-झर-झर।"
१०३. "खेत खम्बे तार। सहसा टूट जाते हैं
हमारे साथ के वे लोग। हमसे छूट जाते हैं

मगर फिर भी । हमारी बांह गर्दन पीठ को छूते
गरम दो हाथ रहते हैं । हमारे साथ रहते हैं ।"
—ओम् प्रभाकर लहर : सित जन १९६७ ।

१०४ "तोड दे उदासी, अरी ओ पूरनमासी"
—वीरेंद्र मिश्र · पाच जोड बासुरी, पृ० ८१ ।

१०५ "एक पल निहारा तुम्ह । एक दु ख रीत गया ।"
—रवीन्द्र भ्रमर के गीत, पृ · २५ ।

१०६. "यो हम जीवन मे कई बार बिछडे
आखो म बसे हुए दृश्य नही उजडे"
—बालस्वरूप राही जो नितान्त मेरी हैं, पृ० १६ ।

१०७ "जब भी तेरा ख्याल आया है । मैंने सोचा है
किस तरह कर दू । चद ताजा गुलाब तेरे नाम ।"
—शेरजग गर्ग गीत-१ पृ० १३ ।

१०८. "मिले लगत हैं । रेल की पटरियों से कभी हम तुम"
—शलभराम सिंह लहर सित जन १९६७ ।

१०९. "तनिक देर का छत पर हो आओ
चाद तुम्हारे घर के पिछवाडे से निकला है ।"
—नरेश सक्सेना पाच जोड बासुरी, पृ० १५५ ।

११०. "केवल औपचारिकता वाहा म कसते हैं
हस हस कर रोते हैं—रो-रो कर हसत हैं ।"
—शेरजग गर्ग गीत १, पृ० ५३ ।

१११. "इन ओढे हुए मुखौटो पर सशय
यह महज औपचारिकता, यह अभिनय
जीविका हेतु यान्त्रिकी व्यस्तताए
अपराध, पतन या नैतिक हत्याए
नारे, सभा, जुलूस, प्रदर्शन क्रोध
त्रास, तनाव, यह उत्पीडक युगबोध ।"
—चन्द्रसेन विराट् साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ४ जून, १९६७ ।

११२ "भागती हुई जिन्दगी का । हर भोगा हुआ क्षण
एक नया उपक्रम है । स्वय से टूटने की तरफ ।"
—भूपेन्द्र कुमार स्नेही (गीत-१) पृ० २४ ।

११३. 'सडका पर घूम रही । निर्वसन आस्था ।"
—वीर सक्सेना लहर सित जन १९६७ ।

११४. 'खोले तो कौन सी दिशा खोलें । इतने सारे सवाल एक साथ

किसको छोड़े किसका होलें।"
—नीलम सिंह · पाच जोड बासुरी, पृ० १५२.

११ "रात आख मूद कर जगी हूँ। एक अनकही लगन लगी हूँ
नयन बनू। पवन बनू गगन बनू। कि क्या करू।"
—राजेन्द्रप्रसाद सिंह . अकन . जुलाई १९६९.

११६. "जीवन के महक भरे स्वप्न कहा बोऊ मैं
आधे में मृत्यु हो और आधे मे धर्म हूँ।"
—बालस्वरूप राही शताब्दी, पृ० १४३।

११७ द्रष्टव्य डॉ० कमलाप्रसाद पाण्डेय छायावादोत्तर काव्य की सामाजिक और सास्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ० ३८०।

११८ थे व्यूल्यो की टकराहट। और ये रिक्तता बोध
—हम मूल्य हीन लोग क्या करें।"
—भूपेन्द्रकुमार स्नेही (गीत-१), पृ० १५।

११९ 'हर तरफ कागजी भव्यता हैं। आखो मे घिर रही शून्यता हैं
आज का युग भले दे सके क्या। वक्त के कोष मे रिक्तता हैं।"
—वही, पृ० १५।

१२० 'पक्ष लिया जब जब सचाई का। बहुमत स हारा हू
वे सब है शीलवान। सहते अन्याय जो किन्तु मूक रहते है
मैं तो अवारा हू गीत विह्वल भीडो ने बार-बार रौंदा है
शुभ-चिन्तक लोगों के बावजूद। अचरज है मैं अब भी जीवित हू।"
—बालस्वरूप राही जो नितान्त मेरी हैं, पृ० ७०।

१२१. "ठाकुर सुहाती बडी जमात। यहा यह मजा
मुँह देखी यदि न करो बात। तो मिले सजा
सिर्फ बधिर, अन्धे गूगे। के लिए जगह।"
—उमाकान्त मालवीय पाच जोड बासुरी, पृ० १२८।

१२२. "जिस युग मे विज्ञापन। और सुयश मे तनिक न अन्तर
उस युग मे सम्मानित होना सब से। बडा अनादर है।"
—बालस्वरूप राही : जो नितान्त मेरी हैं, पृ० २८।

१२३ "बल्ब की रोशनी शेड मे बन्द हैं। सिर्फ परछाइँ उतरती है
बडे फुटपाथ पर।"
—हरीश भादानी : (गीत-१), पृ० १५।

१२४. "दरपन दो जिस से मैं पत्तंहीन दिख पाऊ
साहस दो, जैसा भी देखू। मैं वैसा ही लिख पाऊ।"
—बालस्वरूप राही : (गीत-१), पृ०१०।

१२५ "वही शाम पीले पत्तों की गुमसुम और उदास
वही रोज का मन खोजने का एहसास
टाग रही है मन को एक नुकीली खालीपन से
बहुत दूर चिड़ियों की कोई उड़ती हुई कतार।
फूले फूल बबूल कौन सुख, अनफूले कचनार।"
—नरेश सक्सेना धर्म युग २४ अक्तूबर १९६५।

१२६ 'दूध से नहा रही निर्वसना चादनी। किरण मे निचोड़ धवल
मर-मर की शिला पर। वसन को सुखा रही निर्वसना चादनी।"
—चन्द्रसेन विराट् कादम्बिनी जनवरी, १९६७।

१२७ 'तैरते हैं फेन फूलों के सुबह की धार पर
श्वेतपखी एक चिड़िया-सी कुदकती। धूप उतरी द्वार पर।"
—रामदरश मिश्र वासन्ती २ मार्च १९६२।

१२८. चन्द्रदेव सिंह पांच जोड़ बासुरी, पृ० १२-१३।

१२९ बालस्वरूप राही शताब्दी अक जनवरी मई १९६७, पृ० ५७।

१३० क—'गीत नया जन्मा है···
रीत गए छन्दों की रूढ़ियाँ तोड़ेगा।"
—वही जो नितान्त मेरी हैं पृ० २।
ख—'छन्दों की मर्यादा तोड़े बिना आवश्यक शब्दों से बच पाना चूकि सरल नहीं है इसलिए नवगीतकार छन्द तोड़ने को बाध्य हैं। चूंकि समान आकार की पक्तिया ऊब पैदा कर सकती हैं। अत छद टूटने से एक रसता भी टूटती है।"—वही भूमिका (सम्बोधन)
ग—'छन्द रे स्वच्छन्द होकर गा। मत कहीं भी बन्द होकर गा।"
—वीरेन्द्र मिश्र लेखनी वेला, पृ० ११।

१३१ गिरिजाकुमार माथुर नयी कविता सीमाए और सम्भावनाए, पृ० ११७।

१३२ बालस्वरूप राही धर्म युग १६ मई १९६५।

१३३ बालस्वरूप राही शताब्दी अक जन मई १९६७, पृ० ५७।

१३४ द्रष्टव्य नीरज लय अगस्त सितम्बर अक्तूबर, १९६३, पृ० ११।

१३५ द्रष्टव्य बालस्वरूप राही शताब्दी अक जनवरी—मई, १९६७, पृ० ५७।

१३६ द्रष्टव्य बालस्वरूप राही शताब्दी अक जनवरी मई १९६७, पृ० ५७।

१३७ वीरेन्द्र मिश्र लेखनी वेला, पृ० ६२-६८।

१३८ "दो हथेलियाँ मिलकर। थकी हुई धान कूटती होंगी

चूड़िया पुरानी जो। किस्मत-सी रोज फूटती होगी
काई मे फसे दो पावो-सी। याद तुम्हारी आती।"
—नईम धर्मयुग · १६ मई, १६६८।

१३६. —"आल्हा की पुकार, रामायन की कथा। वृन्दावन के रास गोपियो की कथा"—वीरेन्द्र मिश्र : लेखनी बेला, पृ० १५२।

१४० ५क—' लहरो पर रोशनी गिरि, पानी मे पड गई दरार
चादी की एक अरगनी बाध गयी कापते कगार
—रमेश रजक हरापन नही टूटेगा, पृ० ३७।
ख—एक घडा उठा सिर पर। एक उठा हाथ मे
मैं चलती। जल चलता साथ मे।"—ठाकुरप्रसाद सिंह वशी और मादल, पृ० २६।

१४१ क—घिस गए जिन्दगी के सारे मन्सूबे। दफ्तर की सीढी चढते और उतरते—बालस्वरूप राही जो नितान्त मेरी हैं, पृ० ७७।
ख—"सब इतना साधारण कि मनोवृत्तिया भी। ओढने लगी हैं टैरालिन · यह ठीक ही है। कि कुछ ठण्डे क्षण। देती है एनासिन।"
—भूपेन्द्रकुमार स्नेह शताब्दी जनवरी मई, १६६६, पृ० १४४।

१४२ "नवीन शिशु सी लगी लुभाते। प्रसन्न मूरत खिले सुमन की।"
—वीरेन्द्र मिश्र लेखिनी बेला, पृ० ६०।

१४३. "कीच है बेहिसाब काई। पर न जहा जलजात है जहा मैं हू
दरपनो से नजर चुराते सब। झूठ हर बात है जहा मैं हू।"
—बालस्वरूप राही जो नितान्त मेरी हैं, पृ० ३०।

१४४. शमशेरबहादुर सिंह · कुछ कविताए, पृ० ५६।

१४५ "कहा तो तय था चिराग हरेक घर के लिए
कहां चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए।"
"सैर के वास्ते सडको पर निकल आते थे
अब तो आकाश मे पथराव का डर होना है।"
"हिम्मत से सच कहो तो बुरा मानते हैं लोग
रो-रो के बात कहने की आदत नही रही।"
"न हो कमीज तो पावो से पेट ढक लेंगे
ये लोग कितने मुनासिब हैं इस सफर के लिए।"
यहा तो सिर्फ गूगे और बहरे लोग बसते हैं
खुदा जाने यहां पर किस तरह जल्सा हुआ होगा।"
"इस शहर मे वो कोई बारात हो या वारदात
अब किसी भी बात पर खुलती नही हैं खिडकिया।"

"भूख है तो सब्र कर, रोटी नहो तो क्या हुआ ?
आज कल दिल्ली मे है, जेरे बहस ये मुद्दआ ।"
—सारिका दुष्यन्त कुमार स्मृति अक मई, १९७६ ।

१४६ "इन ओढे हुए मुखौटों पर व्यग्य
यह महज औपचारिकता, यह अभिनय
जीविका हेतु यान्त्रिकी व्यस्तताए
अपराध, पतन या नैतिक हत्याए
नारे, सभा, जुलूस, प्रदर्शन, क्रोध
त्रास, तनाव, यह उत्पीडक युग बोध ।"
—चन्द्रसेन विराट साप्ताहिक हिन्दुस्तान ४ जून, १९३७ ।

१४७ "एक पेड चादनी । लगाया है "आगने । फूल तो, आ जाना । एक फूल"'मागने
ढिबरी की लौ जैसी लीक चली आ रही
बादल का रोना है, बिजली शरमा रही
मेरा घर आया है । तेरे"'सुहागन"'।"
—देवेन्द्र कुमार पाच जोड बासुरी, पृ० १३४ ।

१४८ 'परिधि पर दौडते हुए'''''
पहाडी कौआ, तपन से त्रस्त । झकझोरता, इलैक्ट्रिक पोल
उखडी हुई परता को । रुक रुक कर आती खामोश आवाज
तपती हुई धूप स । खेलता हुआ विवश तारकोल
खीझ उठी आखिरकार । क्षितिज की सहमी-सहमी पोर ।'
—अशोक-अग्रवाल गीत २, पृ० ६२ ।

१४९ द्रष्टव्य ओमप्रभाकर पाच जोडी बासुरी, पृ० १३३ ।

१५० "यह अजोरे पाख की एकादशी । दूध की धोयी बिलोयी-सी हसी ।"
—उमाकान्त मालवीय, वही, पृ० १२४ ।

१५१. 'देखे रहना जोति । दिये को जीवित रखना रे'''।"
—नईम धर्मयुग : १९ मई, १९६८ ।

●●

२

उपलब्धि–एक

प्रतिनिधि गीतकार

१. शम्भूनाथ सिंह

डॉ० शम्भूनाथ सिंह नवगीतकारो मे प्रमुख हस्ताक्षर हैं। इन्होंने छायावादी-अनुभूति कुहासे को चीरकर मुक्त दृष्टि से जीवन और मानव को देखने-परखने का नवीन प्रयास किया है। डॉ० सिंह के गीतो मे रूप एव प्रेम सुख के लिए उत्तर छायावादी व्यक्ति-परक धारा के सर्वमान्य कवि बच्चन की सी मरण कामी दुर्दान्त प्यास की ज्वालाओ का अतुष्ट हाहाकार, नैराश्य का कुहान्धकार और भोगेच्छा की एकान्तिक ललक की चटकार नही दिखाई देगी। बच्चन ने छायावादी अति-मानवीयता एव आकाशीय पलायन के विरुद्ध विद्रोहक भाव तो अवश्य प्रदर्शित किया, पर उनके इस विद्रोह में यौवन की उन्मुक्त निरकुशता और असफलताओ के साथ भयावह निराशा की चीखती हुई भ्रान्त पुकार नही सुनाई देगी। बच्चन का विद्रोहक भाव जड हो गई चट्टानो पर सर पटकती हुई भोगोतृपित जवानी का विद्रोह है, इसलिए उसमें धूम धुध की मार्ग-रोधी कुज्झटिका भी स्पष्ट है लेकिन डॉ० सिंह के गीतो मे रूप के प्रति ललक, सुखोपभोग की तृषा एव प्रेम की पुकार है, किन्तु यह तृषा और पुकार कल्पना-शक्ति के हृदयस्पर्शी चित्र बिम्बों, प्रकृति के अनुभूति प्रवण रूपो आसक्ति-अनासक्ति के बीच सेतु निर्माण करती जीवन-

वाही प्रवृत्तियो की प्रेरणाओ से सम्पोषित होकर जहा एक ओर पाठको को छाया-वाद के अस्पष्ट अनुभूति-लोक से उतारकर जानी पहचानी भाव-भूमि पर खडा कर देती है, वहीं अत्यन्त सुपरिचित जीवन-सघर्षो एव समाज-सबधो को भी भाव-कल्पना की आन्तरिक फुहारो से रगीन एव रसमय बना दती है।

काव्य-यात्रा

'रूपरश्मि,' 'छायालोक,' 'मन्वन्तर,' 'उदयाचल, 'दिवालोक,' 'समय की शिला पर,' 'खण्डित-सत्य' आदि शम्भूनाथ सिंह के प्रकाशित काव्य-सग्रह हैं। 'रूप-रश्मि' और 'छायालोक' कवि की आरम्भिक रचनाए हैं। उपरोक्त कृतियो मे प्रणय और प्रकृति चित्रा के परिवेश जहा छायावादी स्वप्निल जगत् का विचरण तथा भावुकता के अयथार्थवादी क्षणो की घनीभूत छाया का बाहुल्य है वहा वेदना और नैराश्य की स्वीकृति से उत्पन्न भावाभिव्यक्ति तथा यौवन के सहज आत्मिक फलो की अनुभूति का व्यापक फलक भी दिखाई पडता है।[1] रूप-रश्मि' मे प्रणय सयोग का नही, प्रत्युत वियोग का सूचक बनकर अपना परिचय दे सका है। यही कारण है कि गीना मे विरहजन्य अनुभूतियो का प्राधान्य है, सयोग-सुख यदा-कदा 'स्मृति' बनकर ही प्रकट हुआ है। वस्तुत इन गीता म विरह की साधना है जो महादेवी से कम, पर 'बच्चन' के 'एकान्त-सगीत' से पूर्ण सादृश्यता प्रकट करती है। 'एकान्त-सगीत' मे प्रणय के अभाव म 'बच्चन' ने अपनी अनुभूतिया म पूर्ण डूबकर जिस व्यापक और प्रगाढ निराशा, व्यथा-वेदना तथा अपने एकाकी भूखे तन और भूखे मन वाले, नियति तथा असफलताओ भरे जीवन के जो चित्र दिये थे, लगभग वैसे ही चित्र यहा भी उपस्थित हैं और उनमे अनुभूतिया की अकृत्रिम, मार्मिक, निश्छल और सजीव अभिव्यक्ति भी बहुत कुछ वैसी ही। महादेवी का प्रभाव है तो इतना ही कि कवि भी उन्हीं की भाति अपनी वेदना तथा पीडा को प्यार करने लगता है, शनै शनै अतर्मुखी होता हुआ अन्तत प्रेम पीर की अमरता घोषित कर जाता है। 'छायालोक' म भी भावनाओ का उपर्युक्त क्रम ही चला है, अन्तर केवल इतना है कि इसमे व्यथा, वेदना और अभाव आदि के इतने प्रगाढ चित्र नही हैं। सयोग-सुख के लिए आकुल कवि के हृदय की विरह जनित अनुभूतिया यहा भी बडी ही स्पष्टता से अभिव्यक्त हुई हैं तथा अपने प्रणय के प्रति कवि की गहन निष्ठा का भी उतना ही तीव्र निदर्शन हुआ है। वस्तुत 'रूप रश्मि' और 'छायालोक' दोनो का निर्माण समान अनुभूतियो के ही तानो-बानो से हुआ है।[2]

कवि की प्रेम और प्रकृति सम्बन्धी अनुभूतिया की अभिव्यक्ति का मौलिक उदय 'उदयाचल' म देखने को मिलता है। यहा कवि पुरातन भावो की केंचुली छोडकर जीवन के कर्मक्षेत्र मे नवीन विश्वास और आत्मिक आस्था के दृढ स्वरो को लेकर उतरा है। वह जीवन के कर्मक्षेत्र से यहा पला यननही करता बल्कि

वाग्नविक्ता एव यथार्थ का सामना करते हुए सघर्षो के तमान्धकार को चीरने की तीव्र भावना से लालायित कुछ कर गुजरने के सकल्पो को बुनता दिखाई देता है। जीवन के प्रति उसकी यथार्थ सकल्पात्मक दृष्टि स्वस्थ स्वाभाविक सौन्दर्य-बोध को जन्म देती है। 'उदयाचल' का कवि इसी सहज पोषक धरती पर अपने ठोस कदम रखकर नवीन आशा-सन्देश, आस्थामय जीवन-विश्वास के गीतो से आनन्द-मय स्वर-रश्मियो को विकीर्ण करता हुआ सगीत के आत्मिक सम्बन्ध-सूत्रो का सृजन करता है।[3] चर्चित काव्यकृति से अधिकतर गीत आस्था और आत्मिक विश्वास के स्वरो म मानवता के नवनिर्माण का दर्शन समझाने को व्यग्र है। अस्वस्थ, वीतराग मन की फलायनवादी वृत्तियो का विकृत सगीत इन गीतो की मूल चेतना से कोसो दूर है। सामाजिक वैषम्य से उत्पन्न अव्यवस्था का घोर अभिशाप कवि मूक होकर नही देखता वल्कि इस अभिशप्त सामाजिक कैंसर से ग्रस्त जीवन के विभिन्न पक्षो से निर्भीकता के साथ मलमल का रेशमी कफन उठाता है। ऐसे यथार्थवादी कठोर क्षणो मे कवि किसी प्रकार के दर्शन अथवा राजनीतिकवाद से प्रभावित नही है बल्कि सहज मानवीय अनुभूतियो को अपनी प्राण चेतना मे व्यवस्थित कर अपनी विचारोर्मियो को नवीनता स सस्कृत करता है। वैयक्तिक स्वप्नो के इन्द्रधनुषी स्वप्नो के स्वप्निल महलो को घरौंदे सा गिरा-कर वह व्यक्तित्व के सामाजिक पक्ष को तो मान्यता देता ही है मानव-मात्र कल्याण की कामना करता हुआ आनन्द और सुख के अशीष भी लुटाता है।[4] 'उदयाचल' की गीत सृष्टि मे कवि की सामाजिक दृष्टि आत्मपरक सत्या का अन्वपण कर मुखरित हुई है। अनेकाधिक गीत कलात्मकता का भावप्रवण सौन्दर्यावरण ओढे हुए हैं लेकिन इस सग्रह की बहुत सी रचनाओ के आत्मिक सौन्दर्य को उद्बोधनात्मक स्वर ने गहरा आघात लगाया है।

जिस कवि ने 'उदयाचल' म अपनी वाद-हीनता का अत्यधिक तीव्रता से प्रकाशन किया था तथा उसे ही अपना साध्य घोषित किया था, अनायास 'मन्वन्तर' म एकवादी प्रचारक बनकर उतरा है। चूकि वह इस सग्रह म प्रचारक है और प्रचारक तथा कवि मे बहुत अन्तर होता है इसी कारण उसकी अधिकाश कविताए अनुभूति शून्य, नीरस और प्राणहीन बन गई हैं। नये काव्य-रूपो का ग्रहण भी उसका गीतकार रूप नही कर सका है। प्रचारात्मक रचनाओ को छोड दिया जाए तो अन्य कविताए जिनम मानवता की प्रगति का जयघोष किया गया है, प्रभावोत्पादक है लेकिन यह निस्सकोच कहा जा सकता है कि कवि 'मन्वन्तर' म अपनी उस प्रतिभा को प्रमाणित नही कर सका जिसके दर्शन 'छायालोक' अथवा 'उदयाचल' म हुए थे।[5] मन्वन्तर को पढकर ऐसा अनुभव होता है कि कवि सैद्धान्तिक आग्रहो की कुहेलिका म जान बूझ कर घिरा है। गीतकार की सहजता से कवि यहां स्वय ही पीछा छुडाता प्रतीत होता है। गीतकार की अपेक्षा यहा

कवि प्रचारक अधिक है। सवेदना की आच यहा मधुर नही लगती, मानवीय तत्त्वो का पूर्वाग्रह कवि की प्रभावोत्पादक गीत-क्षमता को सकुल बनाये है।

'दिवालोक' कवि की प्रौढ़ काव्य-कृति है "इसके प्रति कवि का वक्तव्य द्रष्टव्य है" इस अवधि मे मेरे कवि ने अपनी वैयक्तिक चेतना की सीमाओ से सघर्ष करते हुए जिस प्रकार वस्तु जगत् और लोक-चेतना को अगीकार करने की सतत चेष्टा की, उसकी अभिव्यक्ति इन कविताओ मे क्रमिक विकास के रूप मे दिखलाई पडेगी। वस्तुत ये कविताए एक सक्रान्ति-काल के कवि की कृतिया हैं जिनमे विषय-वस्तु और रूप-शिल्प मे परिवर्तन करने का आकुल आग्रह अन्तर्निहित है।[१] वस्तुतः इन रचनाओ मे कवि 'उदयाचल' से आई हुई भावनाओ और आरम्भिक वैयक्तिक प्रणय की अनुभूतियो के बीच मे निर्णय की भूमिका खोज रहा है। इस भूमिका की यही खोज उसकी सक्रान्ति है। यहा कवि वस्तु और शिल्प मे परिवर्तन के साथ नयी कविता की प्रतियोगिता मे गीतो को सामर्थ्य देने की चिन्ता मे है। कदाचित् यहा से शम्भूनाथ सिंह का कवि 'नवगीतो का सर्जक' हो रहा है। 'मधु ऋतु'[७] कविता द्रष्टव्य है। इसी प्रकार 'सुधि के सावन' रचना है। इनमे आचलिक और गुप्त सास्कृतिक चेतना को गीतकार प्रकाश मे लाना चाहता है। 'माध्यम मैं' मे कवि 'नवगीत' परम्परा के अधिक निकट आया है। युगानुभूति के प्रति कवि की जागरूकता और सजगता बढ गई है। मानव की कोमलतम भावनाओ का सस्पर्श, आचलिक जीवन का समग्र-बोध और देश की करुण-कहानी इस सग्रह के गीतो मे कवि को विशिष्ट स्थान दे देती है। शम्भूनाथ सिंह के गीतो मे छायावादी सस्कार से लेकर नये युग की पहचान और उसके अन्तर्बोध तक व्याप्त हैं। लोक-रुचि की अछूति शक्ति को कवि ने सहानुभूति के साथ ग्रहण किया है। उनकी रचनाओ मे यदि सगीतात्मकता है तो लोक-धुनो की। लोक-धुनो पर आश्रित गीतो मे सगीत की लहरें शब्द और अर्थ मे पची हुई रहती हैं। बाह्यारोपण तो शास्त्रीय-सगीत का वैशिष्ट्य है। भाव, कल्पना और चिन्तन की समृद्धि के कारण कवि को नये गीत-कारो मे प्रमुख स्थान प्राप्त है। उन्होने नवगीत की पृष्ठभूमि स्वय उस यात्रा को पार कर तैयार की है कि आने वाले नवगीत हस्ताक्षर इनके ऋणी हैं।[८] अपने व्यक्तित्व को सकीर्णताओ से सुरक्षित बचाकर लम्बी काव्य-यात्रा के सोपानो को पार करते हुए शम्भूनाथसिंह निश्चित रूप से नवगीतकारो की श्रेणी मे आ गए हैं। कवि ने अपनी कृति के पूर्वकथन मे जिस सक्राति-कालीन स्थिति को स्वीकार किया है उस सक्रान्तिकालीन द्विधा-पूर्ण मन.स्थिति के सघर्षमय क्षणो मे रची जाने के बाद भी 'दिवालोक' के गीतो का अन्यतम महत्त्व इसलिए है कि द्वन्द्व-सघर्ष के गहन कुहासे को चीर कर साहस और शौर्य के साथ निराशा को झेलकर अन्तत सिद्धि प्राप्त करने की अपनी दृढ निष्ठा का परिचय कवि ने दिया है। इसीलिए कवि 'दिवालोक' मे और अधिक स्पष्ट, कलात्मक दृष्टि लेकर उपस्थित

हुआ है। लोक-गीतो के प्रभाव को आत्मसात् कर कवि ने यहा अपने गीतो का शृङ्गार नवीन सौन्दर्य से किया है। यहां उनका श्रम साध्य कलात्मक रूप दिखाई नही देता बल्कि गीतो की सहजता को उन्होंने यहा सहज ही उपलब्ध कर लिया है। कलात्मक प्रक्रिया की विकासात्मक सफलता ने उनको 'सहजता' का उपहार प्रदान किया है। सम्भवत इसी कारण मानवीय जीवन से सम्बद्ध व्यापक परिवेश को परिभाषित करने का दायित्व कवि ने सहज-स्नेह म ही सदैव के लिए स्वीकार कर लिया प्रतीत होता है। प्रेम-सम्बन्धी इस काल-विशेष की रचनाओ मे लोक जीवन के सहज-स्पर्श की अभिव्यक्ति विशिष्ट है।[९]

अपनी तीव्र सामाजिक चेतना की अनुभूति के कारण शम्भूनाथ सिंह छाया-वादी प्रभाव को लाघ कर प्रगतिवादी धारा की ओर उन्मुख हुए हैं। यद्यपि इनके गीतो मे छायावादी भाव एव शिल्प का आग्रह परिलक्षित अवश्य होता है लेकिन विकास-क्रम की दृष्टि से वे अपनी भावभूमि को युगानुकूल लचक देते रहे हैं।

जीवट, सघर्ष एव क्रान्ति

समय की सुनिश्चित धारा साहित्यकार पर अपना एक निश्चित प्रभाव अवश्य डालती है, आज का गीतकार भी इससे अछूता नही है, वह मुख्यत भावना के स्तर पर वैयक्तिक एव कल्पना-जगत् म विचरण करते हुए भी मानसिक स्तर पर सुषुप्त नही है। वह अपने आस पास बिखरे सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक कुचक्रो म न जाने अपने जैसे कितने निरीह प्राणियो को फसे देखता है, परिणाम-स्वरूप उसकी चेतना पर तीव्र कुठाराघात होता है। कवि अपनी आखो से देख-परख कर अनुभव करता है कि जो इस समाज के वास्तविक निर्माणकर्त्ता है—उन्ह अपने अधिकारो को भोगने का अधिकार भी प्राप्त नही है। उनकी विडम्बना जीवन के सारतत्त्व को समूल नष्ट कर देने के लिए विवश है। उनकी श्वासे दु ख, विपत्ति आदि कष्टो की गन्दगी से मैली झोपडियो म बिखर जाती हैं।[१०] लेकिन कवि मानवता के शाश्वत मूल्यो का समर्थक है और उसके चिन्तन की प्रक्रिया मानव होने के नाते उनसे भी मानवीय व्यवहार की अपेक्षा करती हैं।[११] इस प्रशस्त पथ पर चलते हुए एक समय ऐसा आता है कि जब सघर्ष ही उसका एकमात्र लक्ष्य बन जाता है और उसमे विजयी होने के लिए वह अपने और अपने मन को शक्ति-शाली बनाने के लिए सन्नद्ध हो उठता है। शनै शनै अर्जित शक्ति का घनत्व बढता है और अन्तत इतना सघन हो जाता है कि शापित और पीडित मानवता के प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति व्यक्त करता हुआ, जीवन और समाज मे व्याप्त विषमता का विरोध करता हुआ, वह पूरी तरह से मानव की विजय और नई मानवता के गीत गा उठता है। आशा-आस्था, दृढता और मानव तथा मानवता की विजय-कामना से युक्त कवि के ये स्वर इसी कारण प्रभावित करते हैं कि इनमे एक

जागृत कवि की वास्तविक निष्ठा का योग है। इस मानवीय व्यवहार को मूर्त करने के लिए कवि अपनी ओर से श्रेणी-साम्य अर्थात् साम्यवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है।[12] श्रेणी-साम्य के सिद्धान्त को अक्षरश ईमानदारी स व्यावहारिक रूप देने के लिए एक भीषण क्रान्ति आवश्यक है और कवि इसी भीषण--क्रान्ति का उन्मुक्त प्रचारक है।

भीषण-क्रान्ति का प्रबल इच्छुक होते हुए भी कवि जब साधनो का मूल्याकन करने लगता है तब उसे निराशा ही हाथ लगती है। चूकि क्रान्ति के आकाक्षी वर्ग के पास साधनो का एकातिक अभाव तो है ही, कोई दिशा देने वाला शक्तिशाली सहायक भी नही है। यदि उनके पास है तो केवल मात्र जीवट तथा कुछ प्राप्त कर लेने का दृढ सकल्प।[13] इसी जीवट दृढ-सकल्प के बल पर कवि उस भीषण-क्रान्ति *का स्वप्न सजोता है जो निरतर उसके कल्पना-जगत् मे विचरण कर उद्वेलन मचाए* रखती है।[14] कवि के सजोये स्वप्न के अनुसार क्रान्ति होगी तो उसकी उथल-पुथल मे ध्वस भी उपस्थित होगा। कवि ऐसे ध्वस का आकाक्षी नही है जिससे विकृति उत्पन्न हो अथवा मानवतावादी परम्पराए टूटकर बिखरें। कवि ऐसी क्रान्ति नही चाहता जिसमे लोक-कल्याण की पावन भावनाए विस्मृत कर दी जाए, वह तो ऐसी क्रान्ति का आकाक्षी है जिसमे शक्ति के साथ-साथ लोक कल्याण की भावना निहित है।[15] सम्पूर्ण मानवता की कल्याण-भावना के पश्चात् यदि सिद्धि की उपलब्धि नही हुई—जीवन के कर्मक्षेत्र का रथ तम के पथ पर भटक गया अथवा विपत्ति के लाल अगारो की सेज मे परिणत हो गया, तब भी कवि नैराश्य की प्रबल प्राचीर को चीरने का सकल्प मन मे लेकर नवजागरण गान गाने का तैयार है। उसका कण्ठ[16] जीवन के कठिन-से-कठिन क्षणो म भी उल्लसित सदेश देने को उद्यत है।

शृङ्गार

शम्भूनाथ सिंह के गीतो का प्रमुख विषय शृङ्गार ही रहा है। प्रणय-प्रेम क अनुभूतिजन्य शब्द-चित्र अकित करते हुए कवि ने सयोग-सम्मिलन की तुलना मे विरह के मार्मिक शब्द-चित्र खीचने को अधिक महत्त्व दिया है। इसका प्रमुख कारण कवि की प्रारभिक गीत-साधना है जिसमे विरह तत्त्व प्रमुख रूप से उभर कर आया है। जहा कही सयोग-सम्मिलन के चित्र उजागर हुए हैं व मात्र अतीत स्मृति के रूप मे उभर कर आए हैं। अन्यथा कवि प्यार भरी छलना, वेदना और पीडा का ही सान्निध्य चाहता है।[17] क्रान्ति-गायक कवि सामाजिक कर्तव्य के मध्य अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को तिलाजलि नही देता वरन् उनके मध्य एक सेतु का निर्माण कर वह अपनी आत्मा और मन की पुकार को जगत् की अनिद्य स्वप्न सुन्दरी प्रेयसी तक पहुचाना नहीं भूलता।[18] कवि परम्परागत प्रेमियों की भाति अपनी प्रेयसी के मादक प्रेम की अनभूति मे मदहोश रहता है। स्वप्न के क्षण हो

अथवा जागरण के पल एक ही विचारोर्मियों का ज्वार निरन्तर उसे आंदोलित करता रहता है,[१६] ऐसे क्षणों मे उसे स्वयं की चेतना भी नही रहती इसीलिए वह नि सकोच अपनी आत्म-विस्मरण की स्थिति स्वीकारता है।[२०] कवि के प्रेम की अपनी एक विशिष्ट अर्थवत्ता है वह जानकी वल्लभ शास्त्री के प्रेम की भांति ऋणात्मक नही है और न ही वह कवि की अदम्य शक्ति के वेग को अवरुद्ध करता है। स्वस्थ और निर्भीक दृष्टिकोण के कारण वह कवि की शक्ति को क्षय करने के स्थान पर और तीव्र गति से उसे शक्ति और उल्लास प्रदान करता है। यही प्रेम उसकी आत्मिक शक्ति और उससे उत्पन्न उल्लास का जीता जागता सम्बल है चूंकि यही पावन-प्रेम कवि को वास्तविक जीवन जीने की कला सिखाता है।[२१] और उसके शिथिल चरणों मे करुणा तथा शीतलता का चदन लेपकर जग के जड बन्धनो म कवि को मुक्ति पान का सघर्ष देता है। प्रेम की यही प्रेरणा कवि के प्रेम को मानवीय धरातल से ऊपर उठा देती है और वह अपने प्रेम का उन्नयन कर उसे दैवी धरातल पर प्रतिष्ठित कर देता है। यहा आकर कवि की रूपसी-प्रेयसी मासल जगत् की सीमाओ का अतिक्रमण कर उसकी 'प्रिया' न रहकर 'आराध्या' हो जाती है और कवि अपने प्यार के भाव-सुमनो से उसकी अर्चना करता है।[२२] प्रेयसी के प्रति पूज्य-भाव होने के कारण अर्चना की पावन आरती उतारने के पश्चात् भी कवि ने एकाधिक स्थानो पर शृङ्गार के मासल ससर्ग की भावाभिव्यक्ति की है। वाह्याचार की इस शारीरिक अभिव्यक्ति मे मधुर प्रेम-तत्व की अवहेलना हो, ऐसा नही कहा जा सकता क्योकि अधरो का स्पर्शजन्य अनुभूतिमय चुम्बन निरन्तर अपनी झकार के स्वरा को बिखेरता रहता है।[२३] प्रेम मे वेदना के दश से कवि सर्वथा मुक्त नही है जहा प्रेम होगा वहा स्वभावतः पीडा का भी कभी-न-कभी साम्राज्य होगा ही। प्रेम के इस पीडामय साम्राज्य मे कवि को भी अश्रुओं का आरती सजाकर जडित प्रतिमा-सा नीरव दीपक की लौ की भांति जलना-गलना पडा है।[२४] प्रेम की इस वेदनामय विषाद-अवसाद मे भरी हताशा ने उनके एकाकी-पन को और अधिक मुखर कर दिया है। अपने प्रेम-पन्थ पर चलते हुए लक्ष्य की ओर निरन्तर कदम बढाता कविमन ससार के लोक-कल्याण को विस्मृत नही करता और उसके लिए रश्मियो का मूल उत्स बना रहता है लेकिन उसने प्रेम की हताशा का साम्राज्य उसके वैयक्तिक शून्य-नभ को छलनी नहीं कर पाता, वह निरन्तर और गहरा होता जाता है।[२५]

प्रकृति

प्रकृति चित्रण मे शम्भुनाथ सिंह को विशेष रुचि नहीं है फिर भी विशुद्ध मानवीय भावा से आरोपित प्रकृति चित्रण के कतिपय सामान्य चित्र उनके 'गीतो म उपलब्ध हो जाते हैं। नयी कल्पनाओ से रजित प्रकृति-सौन्दर्य के सहज चित्र भी इनके गीतो

मे परिलक्षित किए जा सकते हैं।[२१] आलम्बन रूप मे शुद्ध प्रकृति-चित्रण उन्होने प्रसन्न-मुद्रा मे अंकित किया है। उनके इस शुद्ध प्रकृति-चित्रण पर भी शृंगार की छाया-सी आभासित होती है।[२२] प्रकृति का उद्दीपन रूप कवि-मन मे अतीत की मधुर स्मृतियो को उद्दीप्त कर हलचल बरपा कर देता है और वे सुषुप्त स्मृतिया कवि के भावातुर मन को उसकी रूपसी-प्रेयसी के और अधिक समीप ले जाती हैं जहा कवि को अपनी रसीली प्रिया के दो बडे-बडे नयनो का स्मरण हो आता है।[२८] एक ओर यदि प्रेयसी के काले-काले मादक दृग युगल उसकी भावना को विस्तार देते हैं तो दूसरी ओर क्षिति और गगन को आलिंगन-पाश मे आबद्ध देखकर कवि-मन के अभाव और अधिक विस्तृत फलकाधार प्राप्त कर लेते हैं।[२६]

शिल्प-दृष्टि

शिल्प की दृष्टि से शम्भूनाथ सिंह की प्रारम्भिक गीत-सृष्टि छायावादी मधुरता सरसता एव सगीतात्मकता से प्रभावित हैं। गीत-रचना के परवर्तीकाल मे कवि प्रगतिवाद की ओर उन्मुख हुआ है, इस कारण उनकी उत्तरकालीन गीत-रचनाओ मे स्पष्टत शिल्प-विषयक साज-सज्जा का अभाव देखा जा सकता है।

कतिपय स्थानो को छोड़कर इनका अप्रस्तुत-विधान प्राय रूढ और परम्परानुमोदित हैं लेकिन कही-कही परम्परागत क्षेत्र मे भी कवि ने सुन्दर प्रयोग किए हैं। ऐसे स्थानों पर विशेषकर कवि के परम्परित रूपक-चित्रो का मूल्याकन किया जा सकता है।[३०] नैसर्गिक क्षेत्र से आलोच्य गीतकार ने कही-कही सुन्दर उपमानो का चयन किया है।[३१] 'मेघदूत' के विरह विमर्दित यक्ष का उपमान स्वरूप प्रयोग उत्कृष्ट है।[३२] आधुनिक नागर जीवन से भी उन्होंने कुछ सटीक उपमानो को ग्रहण किया है।[३३] एकाधिक स्थानो पर विरोधी विशेषणो को प्रयुक्त कर भाषा मे चमत्कार वक्रता उत्पन्न करने का प्रयास सराहनीय है जो निश्चय ही छायावादी कला[३४] के उत्कृष्ट उदाहरण कहे जा सकते हैं।

लोक-गीतो का पुट भी कवि के गीतो मे मुखर है। लोक-सगीत मे बधी उनकी सार्थक धुनो मे निश्चय ही मन को आकर्षित करने की अद्भूत सामर्थ्य है।[३५]

गीतो मे गेयता, सक्षिप्तता, तीव्र भावो का सवेग और गहरी आत्मीयता इनके गीतो मे हर जगह मिलती है। आज के जीवन मे जहा व्यक्ति स्वभाव से ही युग के सघर्षो से थका हुआ क्षीण दिखाई देता है, बहुत थोडे से ऐसे कवि हैं जो हमारे मन मे जीवन के प्रति आस्था और विश्वास के भाव पैदा करते हैं। शम्भू के गीता मे अटूट आस्था का स्वर विद्यमान है। वे गीतो को ही मात्र काव्य विधा मानने वालो मे नही हैं। वे ध्वनियो और लयो के निरन्तर खोजी और सफ उपयोक्तल है। इन्होने गीत, लम्बी कविताओ और मुक्त रचनाओं सभी मे अपने प्राण उडेले

हैं। प्रणय के भाव, स्निग्ध, मधुर गीतो के धरातल मे उठकर वे सुधार की पथरीली, ऊबड-खाबड भूमि की ओर बढ रहे हैं।

मूल्यांकन

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'रूप-रश्मि' की विरह-साधना से प्रारम्भ शम्भूनाथ सिंह का कवि-जीवन मंजिल-दर-मंजिल अपने नये विकास की सूचना देता रहा है। उनके काव्य मे यदि एक ओर प्रणय-जनित व्यथा का विह्वल रोदन है तो दूसरी ओर आशा, उल्लास, रूप तथा यौवन के प्रति एक तीव्र और आकुल आकर्षण भी। यदि उनका कवि नितान्त वैयक्तिक होकर 'रूप-रश्मि' का सृजन करता है, नितान्त कल्पनाशील होकर 'छायालोक' की छायाओ के पीछे घूमता है तो 'उदयाचल' के रूप मे मानव और मानवता के प्रति भी उतना ही तीव्र आकर्षण व्यक्त कर वैयक्तिकता की सीमाओ से अपने छूट निकलने की सूचना भी प्रसारित करता है और 'मन्वन्तर' मे प्रचारक बनने तथा 'दिवालोक' मे प्रणय बनाम सामाजिकता के द्वन्द्व से ग्रस्त होने के बावजूद भी मानव-जीवन तथा मानवता के प्रति अपनी निष्ठा नही छोडता, वह अन्त तक उसके साथ रहती है।[36]

डा० सिंह ने बच्चन काव्य मे आए मानववाद को अधिक स्वस्थ, प्रकृतिस्थ एव कलात्मक रूप मे ग्रहण किया है। बच्चन का मानव भूखा, प्यासा है जिसे समाज से घोर असन्तोष है, क्योकि समाज के वृद्धजनो को उसकी जवानी अखरती है। बच्चन का प्राणी सशक, निराशावादी अत एव त्राण-कुञ्ज के निरन्तर शोध मे सलग्न दिखाई पडता है, पर शम्भूनाथ सिंह का प्रेमी प्राप्त को ही अधिक प्राप्य और सुन्दरतर बनाने को समुत्सुक है कदाचित् इसीलिए उनका प्रेमी प्यास को मधुरतर बनाता और भूख को परिशोधित करता दिखलाई पडता है।

कुल मिलाकर, गीतेतर रचनाओ मे गीतो की सी सफलता न मिलने पर भी शम्भूनाथ सिंह एक कुशल गीत-शिल्पी है। उनके गीतो मे हृदय की भावुकता का निर्बाध स्रोत का सोता फूटा पडा है। अपनी कुशल गीति कला का परिचय देते हुए उन्होंने अपनी समृद्ध बहुरगी कल्पना का योग कर उनको और अधिक आकर्षक बना दिया है। उनकी सामाजिक चेतना ने अपनी गीत-सृष्टि के माध्यम से जागरूकता का उद्घोष किया है। उनकी सामाजिक-चेतना समन्वित युगानुकूल लचक के साथ ऐसे विषयो को समाहित करती चली है जिसकी माग तत्कालीन परिस्थितिया कर रही थी। वह एक भाव-प्रवण, सशक्त एव जागरूक कवि हैं, विषय वस्तु एव रचना-शैली की दृष्टि से वे अपने युग की सभी धाराओ—छायावाद, प्रगतिवाद प्रयोगवाद से सगीत बैठा सकते हैं सभी की अच्छाइयो को ग्रहण कर पाते हैं पर उनकी विशेषता यह है कि वे अपनी अपेक्षा समाज के प्रति, कवि की अपेक्षा पाठक के प्रति, उच्छृखलता की अपेक्षा मर्यादा के प्रति अधिक

गीतों की आत्मपरक प्रवृत्ति का निर्वाह करते हुए प्राप्त हो जाते है। आलोच्य सग्रह की भूमि को कवि ने स्वय ही स्पष्ट किया है—"विगत दशक जहा एक ओर जीवन की व्यवस्था-अव्यवस्था पर एक के बाद एक, धूल और रोगीली की परतें छोडता रहा है और अह पर चोट करता गया है, वही दूसरी ओर हिन्दी कविता तथा गीत के धरातल पर भी अनेक शुभ-अशुभ मूल्य बिखरा गया है। इस सन्दर्भ मे निरन्तर टूटने की प्रक्रिया के बहुरगी क्षण इस सकलनान्तर्गत आकलित हैं।"[43] कवि के जीवन की अभाव-ग्रस्तता और उससे उद्‌भूत प्रक्रिया का प्रभावशाली निरूपण इस सकलन की उपलब्धि है।

'अविराम चल मधुवन्ति' मे कवि मामाजिक जीवन की निर्माणपरक और विघटनकारी, सृजनात्मक और विध्वसात्मक अनुभूति को वैयक्तिक आग्रह के साचो मे ढालकर नही परखता वरन् उनका समन्वय करने मे प्रयत्नरत है। सामाजिक मतवादो के माध्यम से साहित्यक मूल्यों के निर्देशन को कवि स्वीकृति नही देता।[44] इसी कारण कवि की भावाभिव्यक्ति चिन्तन के द्वारा आई हुई असहजता और दुरूहता से दूर भावनाओ की तरल रगीनी से भरी है। 'अविराम चल मधुवन्ति' एक ऐसा शीर्षक है जो कवि की कुछ अन्तरग और विशिष्ट आस्थाओ को सहज ही रेखाकित करता है। कृति के गीत हिन्दी कविता की एक विशेष दिशा की उपलब्धियो के मानक हैं। साथ ही आधुनिक गेयता का सगीत-सस्कार भी ये सम्पन्न करते हैं—गेयता भी ऐसी जो न सतही है और न अति बौद्धिक। वास्तव मे सहज यथार्थ की भूमि से टकराहट सान्ध्यराग मधुवन्ती की रागात्मक अनुगूज जब चीत्कार बन उठती है तभी पाठक भी उसमे आत्मीयता का अनुभव करने लगता है और इसीलिए आपको लगेगा कि भोगे हुए यथार्थ को चाहे गीतात्मक व्यग्य की अभिव्यक्ति देनी हो, महानगर के सन्त्रास, असन्तोष और विद्रोह का विस्फोट करना हो, या देहान्तरण करुणा से भीग-भीग जाना हो—इस सग्रह की रचनाए गीत के धरातल पर एक सगठित बिखराव बनकर महकती हैं, जूझती हैं और टूटती भी हैं। आलोच्य कृति के गीतों मे निस्सग जीवन्तता है। ये गीत नवगीत हैं, नयी कविता है, या विद्रोह के पूर्वाभास मधुवन्त—इन से अलग बडी बात यह है कि ये आत्मपरकता मे बधे नही हैं, अह के अनेकानेक आयाम इन्हे घेरे दिखाई देते हैं।[45] निस्सन्देह जिसकी रागिनी मे कई-कई दिशाओ की अनुभूति-ध्वनिया समवेत होकर गूज रही हैं।

रूप और प्रेम

वीरेन्द्र मिश्र की गीत-सृष्टि का प्रारम्भिक चरण रूप-यौवन की सौन्दर्य-जनित सीढी पर ही पडा है। रोमाण्टिक कल्पनात्मकता और रहस्यमयी भावनात्मकता की धूप-छाही सुन्दरता उनके गीतो को अलमाई सन्ध्या का सुहाग देती है। इनके

गीतो की उदास-मधुर शाम भीगते पख को जूडे मे खोसकर, बरखा की माधुरी फुहार की सितार पर सिर रखकर सोयी तरुणी की कच्ची तरुणाई सी मोहक है जो रागो की धूप और तांबे की शाम के अजीब रग वाला फूलो से महका परिधान धारे है।[४६] खुले नभ मे गुलाब-जल से भरे बादल को नील-गागर से छलक कर, जब-जब गीत, कवि के कण्ठ से वाणी का प्रसाद पा निकले हैं तभी श्रोता नन्दन निकुज से आते फूलो के गन्ध भरे झोके के समान मस्ती मे झूम उठे हैं।[४७] वीरेन्द्र मिश्र के गीतो मे अनुभूति की गहराई, विचारो की गभीरता एव शैली की सहजता व कोमलता का अनूठा सम्मिश्रण परिलक्षित होता है।[४८] गीतकार की सौन्दर्य भाव-चेतना निरन्तर विकास की ओर उन्मुख होते जीवन के उदयकाल मे स्वर्गिक रूप के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु से तृप्त एव शान्त नही होती। वीरेन्द्र मिश्र ने भी रूपसी प्रेयसी के झिलमिलाते अछूते सौन्दर्य के जब प्रथम बार दर्शन किये तो रूपाकर्षण के मादक अनुभूतिमय क्षणो मे कवि का अपरिचित गीतो की सृष्टि से प्रथम बार परिचय हो गया।[४९] परिणाम-स्वरूप कवि यौवन की डग-मग कठिन आवेशमय डगर पर कुछ कदम नापने के पश्चात् ही प्रेम के भावमय गीत गाना सीख गया। सम्भवत इसका एक प्रमुख कारण गीतो मे प्रस्फुटित होता हुआ यौवनी प्रेमावेश एव उल्लास रूपसी यौवना का रूपाकर्षण है जो प्रेम के माध्यम से ही उत्पन्न हो सकता है।[५०]

वीरेन्द्र मिश्र की प्रारम्भिक गीत-सृष्टि प्रेम-भाव की अभिव्यक्ति ही है। इन प्रारम्भिक गीतो मे कवि ने अपनी प्रणयाभावनाओ की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष न कर प्राकृतिक उपकरणो के माध्यम से प्रतीकात्मक शैली मे की है। प्रेयसी तथा प्रिय के स्थान पर कवि ने भ्रमर, सुमन पवन आदि प्रकृति के क्षेत्र से विभिन्न प्रतीको का सुन्दर चयन कर अपनी प्रणयाभिव्यक्ति की है। इन्हे देखकर प्रकृति-गीत होने की भ्रान्ति किसी रूप मे नही होनी चाहिए क्योकि अपनी परवर्ती गीत-सृष्टि मे कवि ने स्पष्ट रूप मे प्रकृति के प्रतीको को त्यागकर उत्तम पुरुष अर्थात् 'मैं' द्वारा प्रणयाभिव्यक्ति की है। यहा तक आते-आते गीतो मे प्रेम का स्वरूप परिवर्तित होकर उदात्त धरातल पर प्रतिष्ठित हो गया है। अब प्रेम भोगपरक न रहकर प्रेरणा के भास्वर-स्वर मे परिवर्तित हो गया है। यह वह कुदन अग्नि है जो रक्त को ताजा और उष्ण कर घोर-सघर्ष के निराशान्धकार मे इस्पाती प्रस्तरो से टकरा कर छिद्र करने की असीम शक्ति देती है।[५१]

प्रिय-पात्र के साथ कदम से कदम मिलाकर चलते हुए कवि को दृढ आस्था है कि अमावस की घोर रात्रि[५२] भी उसके लिए स्वर्ण-विहान का वरण करेगी। कवि अपनी रूपसी-प्रेयसी को पहले ही सचेत करता हुआ तब आगे चरण रखता है कि गीत मुग्ध मुस्कियाओं की जनसामान्य प्रदर्शिनी नहीं है, इन प्रेम-पूर्ण मन की सासो का व्यापार करने के लिए जीवन के कर्म-कण्टकित पथ पर अनवरत विपत्तियो तथा

आपदाओं के कठोर आतप म अपने गोराग को तपाना होगा, यदि इन कष्टो के चट्टानी शैला को लाघने का साहस हो तो इस प्रेम-पन्थ क दुष्कर मग मे उसका साथ स्वीकार करे।[४३] इस प्रकार मात्र साथ ही स्वीकार न करें जीवन के कण्टकित मग की शुष्क, नीरस तप्त मरुभूमि को नूतनाभिव्यक्तियो से उन्मादक प्रेरणामयी दिशाए दे सके तो वह उसे प्रेम करे[४४] और उसके नवीन सूत्रो की प्राण-चेतना का व्यवस्थित गन्तव्य बन जाए।[४५]

प्रकृति

यद्यपि वीरेन्द्र मिश्र की प्रारम्भिक प्र माभिव्यक्ति प्रकृति के माध्यम से ही हुई है जिनम प्रकृति का आलम्बन रूप प्रमुख रूप से उभर कर आया है लेकिन ज्य नके *गीता म मानव प्रधान हुआ तब प्रकृति का आलम्बन* रूप परिवर्तित होकर उद्दीपन रूप[४६] प्रमुख हो गया। मानव भावनाआ के रचयिता वीरेन्द्र मिश्र ने अन्त म प्रकृति और मानव म मौलिक अन्तर प्रतिस्थापित करते हुए स्वीकार किया है कि मनुष्य अपने जीवन मे प्रकृति को चाहे कितना ही महत्वपूर्ण स्थान दें, उस पर मानवीय भावनाओ का आरोपण कर अपने मन क हप शोक, आवेग आदि कितन ही भावो की तीव्राभिव्यक्ति कर किन्तु प्रकृति और मानव मे निश्चित मौलिक अन्तर ह। प्रकृति दु ख के प्रति अचेत हे और मानव सचेत। इसीलिए मानव क दुख वेदना पीडा की साझीदार[४७] प्रकृति नही हो सकती।

वेदना

वीरेन्द्र मिश्र के गीता म वेदना तीन रूपो म अभिव्यक्त हुई है—वैयक्तिक वेदना[४८] प्रियजना की वदना और सामाजिक वेदना। वैयक्तिक वेदना भी दो रूपो म चित्रित हुई है। प्रथम प्रम की हताशा[४९] से उत्पन्न विषाद के क्षण जब कवि की भावना *शून्य मे भटकने लगती है और प्रिय-सम्मिलन की मधुर स्मृतियाँ विरह की आग्नेय* तपन म कवि भावना की मधुरता को तपाकर एक हलचल का निमाण कर देती है, ऐसे नैराश्य के घोर क्षणा म कवि के दृग युगल पटल पर रूपमी प्रयसी की जीती-जागती तस्वीर उभर आती हे और कवि विचलित होकर विश्व को धिक्कारता है। प्रेम का चरम हताशा प्रिय के अभाव को और अधिक तीव्र कर जीवन-बाझ बना देती है। असहनीय वेदना क क्षण ता व ह जब प्रिय पात्र भी अश्रुआ की टूटती लडियो के अस्तित्व को सार्थक नही समझ पाता।[५०] सामाजिक *असफलताओं* से ग्रसित वेदना का दूसरा रूप भी वीरेन्द्र मिश्र के गीतो म मुखर है। प्रियजना की परिस्थितिजन्य दूरी से उत्पन्न वेदना के साथ ही सामाजिक विषमताए भी कवि की पीडा को द्विगुणित कर बेचैन बनाए रखती हैं। आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक सभी क्षेत्र तन मन की ईकाई को तोडन म सलग्न रहते है। आर्थिक सामा-

जिस वैपम्यवी जर्जरता ने कवि के तन-मन की ईकाईको पूर्णत तोड घुटन मे परिवर्तित कर दिया है। इस घुटन के विषभरे धुएं मे कवि रुदन कर हिचकियों तो क्या अपने अश्रु कणा[१६] को क्षिति पर ही नहीं टपका सकता, बाध्य होकर हसता है, मुस्कुराता है।

जिजीविषा एव जीवट

गीत रचना के द्वितीय-चरण म वीरेन्द्र मिश्र काल्पनिक जगत् मे विचरणा छोड़कर यथाथ की कटु धरती पर उतर आए।[१३] वहा आकर उन्होने सायास, साग्रह जीवन की वास्तविकताओ को निकट से देखने का प्रयत्न किया है।[१४] जीवन के प्रति इस नवीन दृष्टि-कोण न कवि को दर्द म परिचित करवान के साथ-साथ दर्द म तडफडाते उद्विग्न मानवजन से सहानुभूति का मानवीय पाठ पढाया है।[१५] इस दृष्टिकोणने कवि के जीवन को नये आयाम दिए हैं। परिणाम स्वरूप कवि म नये आत्म-विश्वास तथा नई आस्था ने जन्म लिया है। इसी विश्वास के बल पर कवि ने जीवन क कम क्षत्र की रणभूमि म वेदना अथवा विषमताओ से जूझना सीखा है। अब उसका कवि मन एस विषमताओ के क्षणो म कही पराजित नही होता क्योकि अनवरत चलते जीवन ने उसे 'शक्ति ही सच्ची जिन्दगी है' की अमूल्य परिभाषा दी है।[१६]

आत्म विश्वास के परिपक्व हो जाने पर कवि ऐश्वर्य तथा शक्ति-सम्पन्नता के सम्मुख झुककर किसी प्रकार क समझौत के लिए तैयार नही होता[१७] वरन् जीवन कम सौन्दर्य के उच्चतम शिखर पर पहुचने के लिए अब उसक पास विकट सघर्ष एव विश्वास का प्रवृत्तिमार्गी स्वस्थ जीवन दशन है, अत असफल होने की क्षणिक आशका भी उसे नही है।[१८] उसका प्रबल आत्मविश्वास आग-पानी के दुर्गम-पथ से अब स्वय ही उसे नये स्वर्णिम आलोक जगत् म ले जाएगा।

प्रवृत्तिमार्गी स्वस्थ जीवन-दर्शन सामाजिक सामूहिकता को अपने साथ लेकर चलता है इसीलिए कवि अपनी ईमानदारी का स्पष्ट परिचय देते हुए अपनी वैयक्तिक भावना की आत्म भर्त्सना[१९] करते हुए अपने साथियो को सामूहिकता के प्रति सत्य को प्रकाशित करने का उद्बोधन करता है।[२०] इसी सामूहिकता को आत्मसात् करते हुए लोक भावना मे प्रेरित हो वीरेन्द्र मिश्र ने लोक जीवन के अनेक सुदर बिम्ब खीचे हैं[२१] तथा उपर्युक्त जीवन से दूर पृथक् जीवन जीने का विरोध करते हुए कवि ने इस विकृत प्रवृत्ति[२२] का निषेध किया है।

सामूहिकता के मूल मे कवि का राजनीतिक साम्यवादी दृष्टिकोण[२३] निहित है। उसे साम्यवाद की सफलता म दृढ आस्था है। यदि उसकी इस अडिग आस्था मे कोई व्यवधान उपस्थित करकोईअसफलताकी बात करता है कवि उसका उपहास करन स नही चूकता।[२४] इस बिन्दु पर आकर राजनीति वैयक्तिक प्रेमादि

समस्याओ से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई है।[७४] तथापि कवि यथार्थ की कठोरता मे गहरे तक पैठा है फिर भी उसके गीतकार मन ने उसकी कोमलता का त्याग नहीं होने दिया। अत उसकी क्रान्ति भी नीरज की भाति कोमल और रक्तपात रहित है चूकि यहा भी कवि ज्वाला और रक्तपात का गीतकार बनने मे समर्थ नहीं हो पाया है।[७५] कवि अपनी इस दुर्बल मन स्थिति से पूर्णत भिज्ञ है। इसीलिए उसकी स्पष्ट स्वीकारोक्ति भी यही है कि उसकी उच्च आकाक्षाओ ने विपदाओ, आपदाओ से विचलित होकर असफलताओ के समक्ष कहीं-कही उसके ललाट का चन्दन नैराश्य-कालिमा से मलिन किया है। अत नैराश्य के निशान्धकार का सर्वथा अभाव[७७] उनके गीतो मे नहीं है।

राष्ट्रीयता

समाज के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक नवजागरण ने कवि को जहा जन-सामान्य के समीप लाकर प्रेम करना सिखाया है, जिस धरती पर उसका शैशव खेला, यौवन के वसन्तो को पार किया वहा उस मातृभूमि की गन्ध ने उसे आकर्षित भी किया है। कवि ने सच्चे मन मे भारत-भूमि की सोंधी माटी का गुणगान करते हुए उसका जयकार किया है।[७८] देश की अनोखी सस्कृति कवि के रोम-रोम मे रची-बसी है। इसीलिए भारतीय सस्कृति के प्रति कवि ने सम्पूर्ण ऐतिहासिक, पौराणिक गाथाओ को अपने दृष्टिपथ मे रखकर राष्ट्रीयता एव राष्ट्रीय-सस्कृति के रूप मे उन्हे अपने गीतो का माधुर्य बनाकर उसके प्रति अपना प्रेमोपहार अर्पित किया है।[७६] कहना न होगा कि सामाजिक चेतना और मानवतावादी दृष्टि कवि की पहली और सब से महत्त्वपूर्ण विशेषता है जो उसे गीतो की सीमित परिधि म भी नये युग की सजग कवि का गौरव प्रदान करती है और उसका सम्बन्ध युग की प्रगतिशील शक्तियो के साथ जोड़े रहती है। उनकी इस सामाजिक चेतना और मानवतावादी दृष्टि ने जिस दिशा का भी स्पर्श किया है, चाहे वह युद्धो के विरोध और शक्ति के समर्थन से सम्बन्धित हो, चाहे राष्ट्रीय गौरव अथवा कवि की देशभक्ति हो,[८०] चाहे साम्राज्यवाद-पूजीवाद आदि के घृणित स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए अन्याय, शोषण और विषमता मे रहित समाज की स्थापना से और चाहे विश्व-बन्धुत्व की उसकी कामना और स्वप्न से सभी दिशाओ मे उसने कवि की लेखनी को शक्ति और दृढता, आशा और विश्वास प्रदान किया है।

शिल्प-दृष्टि

वीरेन्द्र मिश्र गीतो के शिल्प के प्रति पर्याप्त जागरूक हैं। उनके गीतो मे सगीत का सजग एव सचेत उपयोग है, अत स्वत ही लय-वैविध्य के कारण छद-बाहुल्य की गरिमा उनके गीतो की अतिरिक्त विशिष्टता बन कर आई है। प्राचीन

छन्दों मे किंचित परिवर्तन कर अपनी प्रातिभ-शक्ति-सम्पन्नता का परिचय देते हुए वीरेन्द्र मिश्र ने नूतन छन्दों तथा लयों का निर्माण करते हुए अपने गीतों को तीव्रानुभूतिमय दिशाएं दी हैं जिससे उनके प्रभाव-क्षेत्र का विकास तो हुआ ही है उनमे एक अद्भुत चमत्कार भी उत्पन्न हो गया है। अपनी परिष्कृत रुचि के अनुसार कवि ने पर्याप्त भावानुकूल, मन्थर, द्रुत तथा आरोह-अवरोह युक्त संगीत-लहरियों मे छन्द के नवीन और सफल प्रयोग किए हैं।[८१] उनके गीतों मे मात्र बाह्य-संगीत की स्वर-लहरियां ही तरंगित नहीं होती वरन् आन्तरिक संगीत-सौन्दर्य का मादक आकर्षण भी यहां विद्यमान है जहां शब्द जड न होकर सजीव भावों को वहन करते हैं, इसीलिए भाव की गतिशीलता स्वयं ही शब्दों को भी गतिशीलता प्रदान करती है।[८३] शब्दों की पुन-पुन. आवृत्ति द्वारा भी कवि ने मधुर-संगीत-झंकार उत्पन्न की है।[८४] संगीत के इस कारवां मे बाह्य-संगीत के अन्तर्गत वीरेन्द्र मिश्र ने शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ लोक-संगीत को सम्मिलित करते हुए अपनी अपूर्व संगीतात्मक सुरुचि का परिचय दिया है। लोक-संगीत[८५] की सजीव भाव-शृंखला उनके बोलों और भावानुसार ही बोलती है। गीतों के बन्द कसे हुए और सहज संगीतात्मक हैं। कहा जा सकता है कि गीति तत्त्व कवि मे उसके अनेक सहयात्रियों की अपेक्षा अधिक मुखर है।

अप्रस्तुत विधान

कवि का अप्रस्तुत-विधान किसी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि की ओर इंगित नहीं करता फिर भी सामान्यतः सुन्दर है। पुन-पुन प्रयुक्त होने वाले कतिपय रात, प्रात, शलभ, दीप आदि के प्रतीक गीतों मे एकरसता उत्पन्न कर देते हैं। इनके उपमान-चयन को हम तीन भागों मे विभक्त कर सकते हैं—प्रकृति, इतिहास-पुराण तथा विविध।

वीरेन्द्र मिश्र की प्रारम्भिक गीत-सृष्टि ने प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण मे विचरण किया है। स्वाभाविक था प्रकृति-प्रधान होने के कारण उपमानचयन का एकमात्र क्षेत्र प्रकृति ही रहा। इस क्षेत्र से उद्यान, पुष्प, भ्रमर, सरिता, फूल, तट, पवन इत्यादि उनके प्रिय उपमान रहे हैं।[८६]

पौराणिक गाथाओं एवम् ऐतिहासिक तथ्यों को कवि ने उपमान शृंखला मे अधिक अंगीकृत किया है, सम्भवत इसका प्रमुख और एकमात्र कारण पौराणिक गाथाओं की कल्पना—गीत-आत्मा की समीपतर वस्तु है—रहा है।[८७] इसके अतिरिक्त प्रसंग-गर्भत्व के अनेक सटीक और सुन्दर उदाहरण वीरेन्द्र ने प्रस्तुत किए हैं, जिनके विस्तृत क्षेत्र मे पौराणिक युग से मुगल काल तक के प्रसंग तो समाहित ही है,[८८] विदेशी पौराणिक गाथाओं का भी मणि-कांचन समन्वय है।[८९]

विविध क्षेत्रों के अन्तर्गत कतिपय उपमान रत्न-नगों तथा अमूल्य पत्थरों के

क्षेत्र से[६०] तथा कुछ उपमानो का चयन नवीन प्रगतिवादी क्रान्ति-भावना[६१] से अगीकार किए है इसके अतिरिक्त कवि ने स्वय नवीन उपमानो का सुन्दर निर्माण[६२] किया है जो उनके गीतो के प्रभाव क्षेत्र का निश्चय ही विस्तार करते हैं।

भाषा

वीरेन्द्र मिश्र की भाषा खडी बोली का परिष्कृत, गरिमापूर्ण मधुर एव गत्यात्मक रूप *हमारे सामने उभारती है। वस्तु के साथ-साथ कवि कला-पक्ष के क्षेत्र मे* भी पर्याप्त सक्रिय रहा है। उसकी भाषा सरल, व्यावहारिक सभी प्रकार के लोक-प्रचलित शब्दो से यथावसर युक्त है। व्यजना की पर्याप्त सक्षमता तो उनमें विद्यमान् है ही, अनेक नवीन सयोजनाओ ने शब्दो को नूतन अर्थवत्ता प्रदान कर वैविध्य-चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। 'मरघटी सास', 'सर्पीली बदली' इत्यादि सशक्त चित्रात्मक शब्द, अनेकाधिक विशेषणो एव वर्ण-प्रतीको की उत्पत्ति से कवि के गीतो को नये भावात्मक आयाम प्राप्त हुए हैं। 'नरगिसी नयन,' 'चुम्बन की लाश' आदि प्रभृति उपमान जो उन्होने फारसी परम्परा से अगीकार किए हैं, *निश्चय ही उनके कतिपय गीतो को तीव्रता और सहजता प्रदान करते हैं लेकिन* 'लाश' जैसा शब्द उनकी गीत-सृष्टि के प्रतिकूल है। अग्रेजी शब्द 'कोरस' का प्रयोग भी एकाधिक स्थानो पर वीरेन्द्र ने सहज स्वाभाविक शैली म अपनाया है।

मुहावरे और लोकोक्तियो के सुन्दर समन्वय[६३] ने उनकी भाषा को नई गरिमा दी है। व्याकरण एवम् औचित्य की दृष्टि से यदि उनके गीतो का मूल्याकन करें तो यत्र-तत्र वैयाकरणिक अशुद्धिया[६४] खोजी जा सकती है। मात्राओ के कारण उनकी वर्त्तनी मे कतिपय अशुद्धिया उनकी भाषा का अन्य दोष है जहा व 'नरक' को 'नर्क' 'स्रष्टा' को 'सृष्टा'[६५] आदि लिखते हैं। सच पूछा जाए तो कवि का कलापक्ष अभी *और मजाई चाहता है जिससे वस्तु पक्ष के समानान्तर ही वह समान समृद्धि की* सूचना दे सके। फिर भी वीरेन्द्र मिश्र की भाषा पर्याप्त सक्षम एव खडी बोली का परिमार्जित एव परिष्कृत रूप है।

मूल्याकन

नवगीतधारा के अग्रणी गीतकार कवियो मे वीरेन्द्र मिश्र का नाम काफी जोरो से चर्चित है। गीतिकाव्य के मच पर वीरेन्द्र मिश्र ने छायावादी प्रकृति प्रेम एव भावुकता का समन्वय कर कठोर यथार्थ के प्रभजनो को सहकर स्वस्थ और समर्थ जीवन-दर्शन उपस्थित किया है। इसका प्रमाण उन गीतो का भावक्षेत्र है। शिल्प की दृष्टि से उनका योगदान अपूर्व एव बेजोड है। वीरेन्द्र मिश्र कविता और अन्य साहित्यिक विधाओ की भिन्न दिशाओ की दूरी को कम करने के लिए प्रयासशील हैं, इसी कारण *वैयक्तिक प्रतिक्रिया, असम्पृक्ति और असन्तुलन के मूल्यो* को अपने

व्यक्तित्व मे नहीं आने देते। उन्हे राजनीतिक आग्रहो से शिकायत है कि वे साहित्य मे हस्तक्षेप करते हैं। कवि ने मुक्त छन्द के अपने रूप-विधान मे शब्द-स्वरा को एक साथ बाधा है। भावपक्ष-वस्तु पक्ष की तन्मयता उसके कलापक्ष से बाधित नही हुई है। 'गीतम' से 'लेखनी बेला' और 'अविराम चल मधुवन्ति' तक कवि सक्रम रहा है। नयी कविता के अनुकरण पर नवगीत लिखने वाले रचनाकार की चर्चा तो महत्त्वपूर्ण नही हो सकती लेकिन जब वीरेन्द्र मिश्र जैसे प्रतिष्ठित और मौलिक गीतकार भी प्रयोगवादी प्रयोगो से प्रभावित होकर अपनी कुन्दन गीतात्मक चेतना का दुरुपयोग, उपमानो और नयी कविता—सवेदना के चक्कर मे उलझ कर अटपटे गीतो की रचना करने लगते हैं तब निस्सन्देह एक परिष्कृत गीत-सृष्टि को आघात लगता है, पाठको को भी तकलीफ होती है। इसके निदर्शन म उनका 'धर्मयुग' (२अक्तूबर१९६६) म प्रकाशित नवगीत अकित किया जा सकता है।[६१] ऐसी गीत-रचना से कवि को अपने गीतकार व्यक्तित्व की रक्षा करनी चाहिए। तरुण गीतकारो मे वीरेन्द्र मिश्र का नाम प्रथम है। उनकी दृष्टि मूलत मानवतावादी है। प्रणय-गीता के साथ राष्ट्रीय, *प्रगतिशील और प्रयोगशील गीत भी वीरेन्द्र की* लेखनी स नि सृत हुए है। रोमानी प्रवृत्ति के साथ उनम प्रगति को भी तीव्र भावना परिष्कृति पा सकी है किन्तु इधर उनका लेखन व्यक्तित्व नयी कविता के प्रभाव से प्रभावित होकर नवीन अप्रस्तुत विधान और प्रयोगो के आधुनिकीकरण के मोहजाल म उलझकर काव्य-तत्त्व से दूर छिटक खण्डित होता जा रहा है।

कुल मिलाकर, रससिद्ध कवि वीरेन्द्र ने गीत के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व छन्द वैविध्य के साथ अद्भुत तथा अनोखा सम्मिलन कर अपनी गीत-सृष्टि की अतिरिक्त विशेषता—गेयता को न केवल सिद्ध किया है बल्कि हिन्दी काव्य-जगत् म खडी बोली की विविध क्षेत्रो मे सामर्थ्य उजागर कर अपनी प्रातिभ शक्ति सम्पन्नता एव परिष्कृत रुचि का परिचय भी दिया है, निश्चय ही हिन्दी गीतिकाव्य को समृद्ध कर साहित्य को पारस बनने वाले ऐसे गीतकारा पर हिन्दी साहित्य को गर्व है। कहना न होगा कि नये गीतकारा की परम्परा म वीरेन्द्र मिश्र महत्त्वपूर्ण कडी है जिनकी मन-गगा लोक-कल्याण की पावन भावना लेकर गीता की गागर भरने निकली हैं।

३ गोपालदास 'नीरज'

'कवि-सम्मेलनो के मच पर एक छत्र *राज्य करने वाले गायका मे 'बच्चन'* के पश्चात् सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और चर्चित नाम 'नीरज' का है। नीरज को गीतिकार के रूप म प्रतिष्ठित करन का श्रेय कवि-सम्मेलना को ही है। उनके कठ म वह जादू है जो श्रोताओ को भाव-विभोर कर उन्हे गीता के भाव रस की मस्ती म बहा ले जाता है। अत नीरज ऐसे गीतकार नहीं है जो मात्र रुचि-वैविध्य दर्शाने के

लिए गीत निखते हैं, वे तो अथ से इति तक मूलत गीतकार ही हैं तथा उनकी गीतमय भावाभिव्यक्ति इतनी सक्षम है कि सुनने अथवा पढ़ने वाला श्रोता अथवा वाचक कोई भी विमुग्ध होकर भावनाओं में झूम उठता है। "कवि-सम्मेलन को अपनी मन-मोहक वाणी और जन रुचि के अनुकूल वस्तु-आग्रह से सवारने की शक्ति नीरज में है। उनका उदय बच्चन, अचल और नरेन्द्र की परम्परा म हुआ था, पर निरन्तर अपने परिवेश को ही समृद्धि और विकास देने के कारण वह 'नवगीता' की श्रेणी मे भी आ गये हैं। अतृप्ति, निराशा, नियति-प्रेम, जीवन की क्षण भगुरता पर विश्वास की भावनाओं मे कवि का एक पक्ष है और आस्था, आशा और सकल्प मे दूसरा। दोनों म अन्तर्विरोध और सन्तुलन के बीच मे नीरज का व्यक्तित्व झूमता रहा है।"[६] सौन्दर्य और प्रेम, वासना तथा तृष्णा इन सब के ऊपर प्रतिष्ठित मृत्यु और उसकी अमरता को नीरज अपनी सतत विकसित दृष्टि और प्रयत्ना की सूचना देते रहे हैं। स्वभाव से ही अनुभूति-प्रवण, कल्पनाशील तथा चिन्तन प्रिय होने के कारण उनका काव्य भी इस त्रिवेणी से आद्यान्त आच्छादित और सराबोर है। उनकी अनुभूति-प्रवणता ने जहा उनके गीतो को गहराई प्रदान की है वहा उनकी कल्पनाशीलता तथा चिन्तन-प्रियता ने उन्हे सुन्दरता, मधुरता तथा विचारोत्तेजकता से परिपूर्ण और परिपुष्ट किया है। उनके काव्य मे यदि एक ओर हमे स्थूल और *लौकिक प्रणय की नाना मनोदशाओ के व्यथा-वेदना, अतृप्ति-आशा* उल्लास, उन्माद आदि से पूर्ण सघन मे सघन और स्पष्ट से स्पष्ट चित्र प्राप्त होते हैं तो दूसरी ओर नियतिवादी और क्षण भंगुरतावादी भूमिका पर की गई रचनाओं के साथ सामाजिक भाव-भूमि पर स्थित होकर उच्चरित किए गए आस्था, आशा और दृढता के स्वर भी। वस्तुत नीरज प्रेम को सत्य और आदर्श रूप मे स्वीकार करते हैं। प्यार, दर्द, रोमास और आतरिक जीवन के साथ नीरज ने सामयिक घटनाओ, स्थितियो, सामाजिक अनुभूतियो और परिवर्तनो को आत्मसात् कर परिवेश और बाह्य जीवन का भी चित्रण किया है। कही-कही उनका चिन्तन दार्शनिक जैसा है। उर्दू कविता का नीरज पर काफी प्रभाव रहा है। शिल्प मे ही नही, *कथ्य मे भी वे उर्दू काव्यकारो से प्रभावित रहे हैं।*

वर्ण्य-विषय

जीवन के विभिन्न क्षेत्रो के अभावो ने नीरज को अभावो का गायक बना दिया था इसीलिए उनके गीतो मे विचारोर्मियो की अनेकाधिक लहरें प्रवाहित रहती हैं। इसका अर्थ यह नही कि प्रसन्नता, हर्ष, कनक-त्योहार की मादक-उन्मादक मस्ती, वासन्ती सिन्दूरी-उल्लास के मधुर क्षण अथवा भावानुभूतियो के स्वर्गिक पलो की आकर्षक स्वर लहरियो को नीरज ने न छेडा हो। चूकि निशा के पश्चात् प्रातः का आना तो अवश्यम्भावी है, धूप छाव की यह चिरन्तन क्रीडा तो मानव जीवन की

विवश नियति है। कवि के जीवन मे सदैव अभाव अथवा घोर अन्धकार का साम्राज्य रहा हो और भानु की स्वर्ण-रश्मिया बधाई का जीवन सदेश लेकर उसके जीवन मे आई ही न हो—ऐसा नही है। अत स्वत ही सुख-दु ख, धूप-छाह के इस क्रम का प्रभाव निरन्तर 'नीरज' की लेखनी पर भी रहा है।

शृङ्गार

रूप, प्रेम तथा यौवन—शृङ्गार के तीनो प्रमुख विषय अनेकाधिक रूपो मे नीरज के गीतो मे विद्यामान हैं। युवक होने के कारण यौवन की उत्ताल तरगित भावोर्मियों को कवि अधिक सरलता से आत्मसात् करता है। ससार मे अनिद्य रूप का सागर चारो ओर लहरा रहा है और फिर कवि न तो एक सवेदनशील कलाकार की दृष्टि पाई है, रूप का आकर्षण उस मोहित करता है, उस प्यार के रूप पर मन का मचलना, मचलने की मादक मस्ती म उसे प्राप्त करन की ललक का होना सहज स्वभाविक है। अत कवि का आसक्त मन-रूपाकर्षण की छवियो मे उलझता है तो निश्चय ही उसक गीत ऐसे प्रभाव क्षेत्र[९८] से किस प्रकार अछूते रह सकते है।

कवि रूप-यौवन के वासन्ती भावनपुरा का छलकातो इस स्वर्गिक विभूति को प्राप्त कर जीवन मे अनायास आए परिवर्तन की प्रक्रिया से अनभिज्ञ नही हैं। वह इस परिवर्तन के प्रति पूर्ण सचेत और भिज्ञ है। जब तक उसके जीवन मे ये पावन-प्रेम नही था, तब तक उसके जीवन-विश्वास की लडिया अनाथ थी और यौवन की दहलीज पर कदम रखती लडखडाती उमर क्वारी थी।[९९] इस क्षणिक मिलन के पश्चात् प्राप्त अभाव कवि के सच्चे गीतकार का कुदन बनाकर निखार देता है। वह जानता है प्रेम का यह मोहासक्त रूप कभी पूर्णता को नही प्राप्त करता। सब कुछ प्राप्त हो जान के बाद भी प्रेमपात्र की दूरी कवि व्यक्तित्व को नई दिशाए देने का प्रयास करती है।[१००] रूपाकर्पण के पश्चात् अभाव की परिणति कवि-मन को वदना से छलनी कर देती है। प्रेयमी का वियोग नई प्रेम व्यथा का निर्माण करता है और नीरज सम्मिलन की आशा से कोसो दूर प्रेम के कण्टकित मार्ग पर चलत-चलते अपनी पीडा का काफिला कही नही रोकते वरन् अपनी रूप रश्मि से एकभाव-विह्वल प्रश्न कर बैठते हैं।[१०१] प्रत्युत्तर की निराशा उनके मूल स्वर को वेदनामय कर डालती है।

जीवन सत्य

जिस प्रकार शरीर स्थिति के लिए भौतिक आवश्यकताए अनिवार्य हैं, जीवन-स्थिति के लिए हृदय की भूख-प्यास भी उतनी ही सत्य है। नीरज के अनेकाधिक गीतो म रोजी-रोटी की समस्या का यही स्वर प्रमुख रूप से उभरा है। सम्भवत इसका कारण सामाजिक प्रतिष्ठा एव समृद्धि का अभाव है जो कवि ने प्रत्यक्ष

भोगा है। इसीलिए कवि ऐसे गीतो को वाणी देने मे विवश होने के साथ-साथ समर्थ भी हुआ है। समाज मे व्याप्त निर्धनता के अभिशाप को देखकर कवि का हृदय पीडा एव वेदना से चीत्कार[१०२] कर उठता है। प्रेम भाव मानव को मानव से जोडने का सब से अच्छा सेतु है। और कवि की भी यही दृढ आस्था है कि जिस प्रकार (हृदय) प्रेम के माध्यम से मनुष्य अन्तत विश्व एकता के मध्य एक सेतु का निर्माण कर डालता है। उसी प्रकार हम रोटी के माध्यम से भी मानव-मानव के मध्य एकता के सेतु का निर्माण कर सकते है। अपनी इसी दृढ आस्था के बल पर कवि समाज मे व्याप्त वैषम्य के अन्त और समता के उदय का स्वप्न बुनता है।[१०३]

कवि का अनिवार्य धर्म

जिजीविषा का आधिक्य कवि का अनिवार्य धर्म है। नीरज भी इसके अपवाद नही। जीवन के आदर्श की कुछ कसौटिया कवि के मस्तिष्क मे विद्यमान होती हैं लेकिन आदर्श की वे कसौटिया स्थूल यथार्थ म भी अपना अस्तित्व बनाये रखेंगी—*यह अनिवार्य नही है। परिणामत फूलो की वह प्राण चेतना कवि को नही उपलब्ध होती* जिसके सतरगी स्वप्न-जाल कवि अपनी नरम पलको के भीतर सुरक्षित रखता है। इसकी परिणति कुछ कवियो द्वारा तो जीवन से समझौता कर लेने में होती है और कवियो का दूसरा वर्ग जीवन की आदर्शात्मक कसौटियो को अगीकृत करते हुए भी उसकी अस्थिरता देखकर अपने चारो ओर काल को विराजमान पाता है। सम्भवत नीरज के साथ भी यही प्रक्रिया सत्य रूप मे घटित हुई है।

मृत्यु का गायक

रूप-यौवन एव अनिद्य-सौन्दर्य के जो अनोखे स्वप्न नीरज की पलको पर तैर रहे थे, उनकी अस्थिरता न नीरज की महत्त्वाकाक्षाओ को कलकित कर दिया, परिणामस्वरूप सवेदनशील कवि मन को जीवन से अधिक मृत्यु समीप दिखाई देने लगी। कवि के मन मे जीवन और मृत्यु को लेकर निरन्तर एक युद्ध बना रहा, प्रेम की पावन भावनाओ के सूत्र अजुरिया से छूट गए और कवि ने भी मृत्यु को *अत्यधिक* महत्त्व प्रदान कर भारतीय दर्शनानुसार अनेकाधिक रूपो मे उसका चित्रण एव दर्शन प्रतिपादित किया। इसीलिए वेदना के साक्षी नीरज को कतिपय आलोचको *ने तथा जीवन के मध्य उभरते मृत्यु के सशक्त बिम्बो ने उसे 'मृत्यु के अमर गायक'* की सज्ञा द दी।

कवि-जीवन क आनन्द का प्रत्यक्ष भोक्ता होकर भी उसकी सजीव धारा मे अपनी भावनाओ के भाव-सुमनो को नही पिरोता, उसम पूर्णत निमज्जित होते *हुए भी प्रत्येक पल 'मृत्यु' से सशक*[१०४] रहता है। मृत्यु-मय जीवन के अस्थिर तत्त्वो से उभर कर ऊर्ध्वमुख होता है। अनुभूतियो के आधार पर कवि ने प्रत्यक्ष अनुभव

किया है कि मृत्यु आगमन अथवा काल की कठोरता, अनुभूति का अस्थायित्व मानव की समूची इच्छाओं को सुहागिन कर भाग्यशाली बनने का अवसर नहीं देती, इसीलिए गीतधर्मी व्यक्तित्व नीरज को जीवन—मृत्यु के समक्ष निर्बल, अशक्त तथा निरीह-सा जान पडता है। उसका कवि मन अन्तिम निष्कर्ष निकालता है, काल सर्वशक्तिमान् है जो जीवन के प्रत्येक उल्लास मे व्यतिक्रम उत्पन्न कर देता है,[१२४] जब तक हर्ष-उल्लास के पुष्पो का हार गूथा जाता है जीवन-माला मुरझा जाती है। कोई जीवन-शृङ्गार करे भी तो कैसे सभी की सेज अधूरी सजती है—सभी की जीवन-बीन के स्वर टूट बिखरते है।

जीवन के अस्थायित्व के प्रति कवि के कटु-तिक्त अनुभव चरम-सीमा को लाघ जाते हैं जब उसकी दृष्टि विकृत होने लगती है। एकाधिक स्थानो पर कवि की यह दूषित-दृष्टि जीवन मे छुपे सौन्दर्य को देखने के स्थान पर आज तक के सुन्दर दृश्यो पर अवसाद-विषाद की ही नही क्रूर 'बीभत्सता' की भीषण छाया डाल देती है। वह 'जन्म' को 'मरण त्यौहार' के रूप मे मनाता है, उसे 'धरा' की नग्न लाश पर उडता हुआ 'नीलाकाश' तो दिखाई पडता ही है, 'सागर' के शीतल वक्ष पर ज्वालामुखी के अगारे भी रखे दिखाई पडते है। अतिरिक्त इसके कही उसे 'सूर्य' अपने 'कधो' पर 'विधु' की अर्थी उठाये दिखता है तो कही उसे 'कली' के सम्मुख 'उपवन' का 'ककाल' दृष्टिगत होता है।[१२५] चारो ओर मृत्यु के इस बीभत्स चित्रण के पश्चात् भी कवि-मन शान्त नही होता, वह जीवन को मृत्यु के समक्ष पराजित कर उसका अन्तिम एकमात्र लक्ष्य अथवा प्रयोजन मृत्यु को ही स्वीकार कर लेता है। कवि अनुसार हमारा यह जीवन विलम्ब-अविलम्ब कभी न कभी तो अपनी उद्देश्य प्राप्ति करेगा ही, फिर यह जीवन का व्यापार-क्रम कितने दिन सक्रमण करेगा।[१२६]

जीवन गीतो की अपेक्षा अधिकाश मृत्यु-गीतो का गायक कवि अवश्य है लेकिन वह मृत्यु-गीतो के बीभत्स-स्वरो मे इसलिए अपनी लय-ताल नही मिलाता कि उनसे उसे अधिक प्रेम है अपितु इसीलिए कि वे मृत्यु से प्रकम्पित तथा अत्यधिक त्रसित है। ऐसा नही है कि उनमे जीवन के प्रति जिजीविषा नही है किन्तु कवि यह स्वीकार कर चलता है कि हम जीवन को उस रूप मे नही जी सकते जिस रूप मे हम उसे भोगना चाहते हैं और न ही अपनी इच्छानुसार पर्याप्त समय तक उसे बनाए रख सकते हैं, परिणामस्वरूप तीव्र जिजीविषा की यह विवशता ही उन्हे मृत्यु-गीत गाने को बाध्य करती है।

भोगवादी दृष्टिकोण

जीवन-जीने की यही तीव्र जिजीविषा नीरज तथा इस विचारधारा के अन्य कवियो को भोगवाद की ओर उन्मुख करती है। कवि जीवन का आकाक्षी है लेकिन जब

अस्थिर एव क्षण-भंगुर जीवन के प्रति उसके चिन्तन की रेखाए प्रखर होने लगती हैं—किसी भी समय इसका आन्तरिक बाह्य सौन्दर्य विनष्ट हो सकता है—उसके मन मे इस सक्षिप्त क्षणभगुर जीवन को भरपूर भोगने की इच्छा बलवती हो उठती है, परिणामतः जीवन मे नैतिक दृष्टिकोण विशृङ्खलित हो जाते है। इस क्षेत्र मे नीरज पर पूर्ववर्ती गीतकारो 'बच्चन' तथा उनके माध्यम से उमर खैय्याम का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर किया जा सकता है।

बच्चन और उमर खैय्याम के इसी प्रभाव के कारण नीरज फारसी परम्परानुसार *मनुष्य के स्वभाव मे दुर्बलता को स्वीकृति देते हैं।* यदि प्रकृति से मनुष्य मे दुर्बलता स्वभावगत स्वीकार कर ली जाए तो उससे नैतिकता का आग्रह व्यर्थ है, स्वतः ही ,फिर आवश्यक है कि ईश्वर मानव के अनैतिक कर्मों को क्षम्य समझे। नीरज इसी तथ्य को रेखाकित करते हैं।[१०८] सयम की आवश्यकता वही है जहा मानव अपने चारित्रिक भावो को मर्यादा के घेरे मे सीमित न रख सकें। अतः नीरज ईश्वर से क्षमा-याचना सहित मनुष्य के पापो को अनैतिक स्वीकार कर भर्त्सना के स्थान पर उन्हे मान्यता देते हैं। उन्हे मानव की स्वभावगत दुर्बलता स्वीकार कर उनकी बौद्धिक व्याख्या करने का प्रयास करते है।[१०९] अपने प्रकृति-गीतो मे वे मनुष्य के पाप-कर्मा के कारणो की खोज कर उन्हे मानव की प्रकृति-अनुसार अनुकूल प्रमाणित करते हैं। सान्त्वनाओ के लिए इतना ही यथेष्ट है कि ससार मे कोई दूध का धुला नही है।

नीरज ने भोग और पाप का जो दृष्टिकोण प्रतिपादित किया है उसकी स्वीकृति भारतीय-परम्परा नही देती। भारतीय-दर्शन, ब्रह्मचर्य, सयम और नियम को अत्यधिक महत्त्व देता है। प्रकृति-प्रदत्त स्वभाव कह कर ही हम मानव के पशुत्व को मान्यता नही दे सकते। अत हम इसे उर्दू और फारसी-परम्परा का ही प्रभाव स्वीकार कर सकते हैं।

मानवता का गायक

जीवन को सत्य, शिव, सुन्दर के तत्त्वो से पारस बनाने के लिए अनिवार्य है कि वैषम्य का समाज से समूल विध्वस कर मानव-जीवन मे सौहार्द और प्रेम का साम्राज्य प्रतिस्थापित किया जाए। सौहार्द्र और प्रेम की अभाव-ग्रस्तता मानव मे पशुत्व का हिंसक रक्त प्रवाहित कर देती है, ऐसा मनुष्य मानवता का शत्रु होता है लेकिन अपवाद हर जगह देखे सुने जाते हैं, दूसरी ओर ऐसे मनुष्य के मन में ऐसे भावो का उदय भी होता है जो जीवन मे स्वय तो कुछ नही पा सका और दुर्दैव ने उसे प्रेम और सौहार्द्र की जीवन-श्वासे भी नही दी फिर भी उसके दृष्टिकोण मे अन्य मनुष्यो को वह सब अवश्यमेव प्राप्त होना चाहिए।

नीरज का जीवन इसका प्रत्यक्ष साक्षी है जो प्रेम और सौहार्द्र कवि के सवेदन-

शील हृदय को मिलना चाहिए था, दुर्दैव की निष्ठुरता न उसके भाग्य-चक्र को कुण्ठित कर दिया, फिर भी प्रतिक्रिया ठीक इसके विपरीत हुई और कवि मन मानवता का शत्रु न होकर अपनी वाणी से उसकी गरिमा का गुणगान करने लगा। जीवन मे जितना भी प्रेम उसे प्राप्त हुआ उसी प्रेम का ज्योति-कलश लेकर नीरज मानव होने के कारण मानवता से प्रेम करने का अपराध बारम्बार करने लगा।[110] नीरज ने अपनी मानवतावादी दृष्टि का निर्भ्रान्त और स्पष्ट जयघोष किया है जिस पर वह और प्रत्येक भारतीय अभिमान कर सकता है। आदमीयत के प्रति कवि का अदम्य आस्थापूर्ण यह उद्घोष अनेकाधिक गीतो मे देखा जा सकता है। उन्ही के शब्दो मे—'मेरी मान्यता है कि साहित्य क लिए मनुष्य से बडा और कोई दूसरा सत्य ससार मे नहीं है और उसे पालने मे ही उसकी सार्थकता है। जो साहित्य मनुष्य के सुख-दु ख का साझीदार नही उसस मेरा विरोध है। अपनी कविता द्वारा मनुष्य बनकर मनुष्य तक पहुचना चाहता हू। वही मेरी यात्रा का आदि और अन्त है।[111]

नीरज का मानवतावाद अलौकिक तत्त्वों से समन्वित आदर्शवादी मानवतावाद नहीं है, वह इसी जमीन पर फलने-फूलने वाला है। नीरज का अथ और इति मानव प्रेम है, उसकी प्रगति की कामना अन्याय, वैषम्य का तीव्र विरोध, दलितों, निर्धना, पीडितो के प्रति सहानुभूति नीरज के मानवतावाद की विशिष्ट विशेषताए हैं। वह ससार की वेदना को अपनी वेदना स्वीकार कर उसके क्रन्दन मे रोता है, यहा तक कि अखिल सृष्टि के मानव समूह को अपने प्यार मे साझीदार स्वीकार करता है[112] इसीलिए वह मानव-मात्र के मगल और शुभ कल्याण-कामना करने मे अपनी आस्था[113] व्यक्त करता है।

अध्यात्म

कतिपय आलोचको के मतानुसार नीरज का स्वर कही-कही आध्यात्मिक हो जाता है। क्षेमचन्द्र सुमन तो उन्हें अध्यात्मवादी स्वीकार करने म किसी प्रकार की हिचकिचाहट का अनुभव ही नही करते। उनके द्वारा सम्पादित 'गीत-सकलन' को आधार बनाकर यदि नीरज का अध्ययन मनन किया जाए तो निश्चय ही वह आध्यात्मिक गीतकार मूल्यांकित किये जायेंगे। 'एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के', 'सास तेरी सिसकती रही रात भर,' 'मा मत हो नाराज कि मैंने खुद ही मैली की न चुनरिया' तथा 'रीति-गागर का क्या होगा' आदि प्रभृति गीतो से वस्तुत आध्यात्मिकता का स्वर ही उभर कर आया है। उनके अनेकाधिक गीतो पर कबीर तथा अन्य सन्तो के अतिरिक्त मीरा तथा महादेवी के गीतो का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। सन्तो की भांति, स्त्री रूप मे गीत गाना नीरज की विशेषता रही है।

आग्रह करते हैं।[१२०]

शृङ्गार से इतर गीतो मे नीरज ने ग्राम्य जीवन की सुन्दर सशक्त झाकिया कृषकों के माध्यम मे चित्रित की हैं। इन चित्रो के सशक्त और सुन्दर बिम्ब फसल बोए जाने, पानी देने, धरती की प्यास बुझाने तथा नवीन अकुरो के प्रस्फुटित होने की प्रक्रिया मे उन्होंने सफलता से उतारे हैं।

नीरज की लेखनी यहा आकर भी रुकना नही चाहती चूकि कृषक के भूखा होने के कारण उन्हे उससे सहानुभूति के साथ-साथ असीम स्नेह भी है। इसीलिए वह क्रान्ति की अनिवार्यता अनुभव करता है लेकिन कवि क्रान्ति मे विध्वस का समर्थक नहीं है। क्रान्ति तथा रक्तपात के लिए कवि गोली, बारूद की अपेक्षा 'हल की फाल' को महत्त्व प्रदान करता है। उसकी निर्भ्रान्त और स्पष्ट उद्घोषणा है कि कृषकों के स्वेद-कणो से उत्पन्न सम्पन्नता तथा सुखोपलब्धिया भारत की राजधानी दिल्ली मे एकत्रित हैं और दिल्ली उसका अनुचित लाभ उठा रही है। कवि ऐसी जर्जर और यान्त्रिक व्यवस्था म आमूल-चूल परिवर्तन का समर्थक है।[१२१] क्रान्ति के इसी स्वर मे राजनीति के माध्यम स नीरज ने साम्यवाद का स्वर भी मुखर किया है। चीनी आक्रमण क पश्चात् कवि ने राष्ट्रीय-चेतना प्रधान गीतो की रचना के अतिरिक्त प्रणय-गीतों को भी वाणी दी है लेकिन नीरज मूलत रक्त, अग्नि एव क्रान्ति के गायक नही हैं। उनके विद्रोह मे परुषता, कठोरता का अभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। इसका प्रमाण यही है कि कवि का सवेदनशील मन ऐसे परुष भावो को भी उद्यान, फूल, भ्रमर तथा वीणा आदि के माध्यम से व्यक्त करना चाहता है जिसमे परुपता और कठोरता के साथ ओज का अभाव तो होता ही है, गुणौचित्य की सीमा मे भी इस प्रकार के भाव असफल हो जाते हैं।[१२२]

प्रकृति

नीरज ने प्रकृति का उपयोग प्राय प्रणय-चित्रो के उद्दीपन रूप मे किया है। मानव प्रकृति की ओर अधिक झुकाव होने के कारण बाह्य-प्रकृति का चित्रण उनके गीतो मे प्राय नही हुआ है। सयोग तथा वियोग की अनुभूतियो को तीव्र कर हर्ष विषाद को नये-नये रूपो म प्रस्तुत करने के लिए ही उन्होने प्राकृतिक उपकरणो को प्रयुक्त किया है। रूपसी-प्रेयसी यदि समीप होती है तो प्रकृति भी अनुभूतियो के प्रति अधिक जागरूक होकर प्रेम के मादक वातावरण का निर्माण करती है। इसी प्रकार प्रेयसी का रूप चित्रण करने के लिए कवि ने प्रकृति स सुन्दर उपमानो का चयन[१२३] किया है। भोर, साझ, रात, शूल, कली, उपवन, बूद, अगार आदि प्रकृति के उपकरण प्रतीक रूप मे प्रयुक्त होकर गूढार्थ[१२४] की भावाभिव्यक्ति मे समर्थ है।

शिल्प-दृष्टि

प्राचीन गीतो की अपेक्षा आधुनिक गीतकारो की भाति नीरज के गीत भी अपनी विस्तृत परिधि को लेकर अपने अस्तित्व को अलग रेखाकित करते है। भक्त-कवियो द्वारा रचित दस-बारह पक्तियों के गेय पदो के समान ही लम्बे होने पर भी अधिकाश छायावादी गीत-सृष्टि सक्षिप्त ही है। गीत, गीतकार के हृदय का द्रव होने के कारण आवेशजनित तथा अल्पकालिक होता है, यद्यपि नीरज के गीत दस-बारह छन्दो के भी है लेकिन जहा अनेको पक्तिया भर्ती के विचार से स्थापित कर दी जाती है वहा अर्थ के गाम्भीर्य मे न्यूनता तो लाती ही हैं, गीत मे विद्यमान आवेशजनित प्रवाह भी अवरुद्ध हो जाता है। नीरज ने तो ३२-३३ पृष्ठो की लम्बी कविताओ (मृत्युगीत तथा जीवन गीत जैसी रचनाओ) को भी गीत की सज्ञा दी है किन्तु वे न तो शैली की दृष्टि से और न गीति-तत्त्व की ही दृष्टि से गीत हैं।

अप्रस्तुत विधान

समय-परिवर्तन के साथ-साथ युगानुरूप वैचारिक परिवर्तन तथा रुचि-परिवर्तन ने काव्य मे अप्रस्तुत-विधान को भी परिवर्तित किया है लेकिन सिद्ध कवियो ने प्राचीनता के सुन्दर अश को नवीनता के प्रवल आग्रह मे तिरोहित नही होने दिया, नीरज भी उन सिद्धि प्राप्त कवियो मे से एक हैं जिनके अनेकाधिक गीतो मे प्राचीन-उपमानो का सुन्दर सौन्दर्य-चयन सरलता से खोजा जा सकता है। यद्यपि छायावादी तथा रीतिकालीन अप्रस्तुत-विधान काल-क्रम को दृष्टि-पथ मे रखते हुए अपेक्षया आधुनिक है फिर भी उत्तर छायावादी कवि होकर भी नीरज के सतो की गीति-परम्परा से प्रभावित गीतो मे भक्तिकाल के अनेकाधिक उपमान अपने सौन्दर्य को सुरक्षित बनाये हैं। उनके गीतो मे पनघट, गागर, पनिहारिन, चुनरी, कृष्ण, राधा, मक्खन, मुरलिया आदि शब्दो और उपमानो का सुन्दर चयन इसी तथ्य को प्रमाणित करता है।

इसी प्रकार उमर खैय्याम तथा उसके माध्यम से उर्दू-फारसी तथा सूफी काव्य मे अनेक उपमान नीरज के गीतो मे यत्र-तत्र बिखरे, दृष्टिगत किए जा सकते हैं। नवीनता की दृष्टि से नीरज ने अनेक क्षेत्रो का स्पर्श किया है। प्राचीन इतिहास तथा पुराणो के प्रसग-गर्भत्व के माध्यम से नवीन उपमानो का कुशल तथा सुन्दर सयोजन कवि ने अनेक स्थानो पर किया है।

निशा के बिभीषक वातावरण का अकन करने के लिए प्रभाव-साम्य के आश्रय मे नीरज ने 'सुरसा' से उसकी उपमा दी है।[१२८] वैज्ञानिक युग मे बौद्धिकता से ग्रस्त नगर-सभ्यता जिसमे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से निश्चय ही राजनीति का दखल है—के क्षेत्र मे भी कवि ने अनेक नवीन उपमानो[१२९] को रेखाकित किया है। भारतीय राजनीति के क्षेत्र से गाधी जी 'सत्य' के प्रतीक रूप अथवा अहिसा के पर्याय रूप मे

स्वीकार किए जाते हैं। इसी सच्चाई एवं ईमानदारी के कागजी हो जाने को कवि सशक्त शब्दों[१२७] में अभिव्यक्ति देता है।

प्रगतिवाद की तीव्र लहर आने पर हिन्दी काव्य-जगत् में असुन्दर, परम्परा विरुद्ध तथा बीभत्स उपमानों की एक लहर सी आई थी जिससे पाठक का आवेश उद्दीप्त होना स्वाभाविक था और यही कवियों का उद्देश्य भी रहा। ऐसे ही कुछ उपमानों[१२८] का सुन्दर प्रयोग नीरज ने भी अपने गीतों में किया है पौराणिक पुरुषों अथवा अवतारों के जिस चित्रण की कल्पना एक भारतीय मानस करता है ठीक इसके विपरीत नीरज ने इनका चित्रण[१२९] कर सस्कारी भारतीय मस्तिष्क को झकझोर-सा दिया है। नैसर्गिक क्षेत्र में अतिरिक्त साहित्य तथा सामाजिक जीवन से कवि ने जिन उपमानों का चयन[१३०] किया है—निश्चित ही वे सुन्दर एवं कवि की प्रातिभ शक्ति सम्पन्नता के द्योतक हैं।

भाषा-शैली

गीतों की भाषा के विषय में स्वयं लेखक का दृष्टिकोण विचारणीय है। उनके अनुसार—"मेरी भाषा के प्रति लोगों की शिकायत रही है कि न तो वह हिन्दी है और न उर्दू। उनकी यह शिकायत सही है और इसका कारण यह है कि मेरे काव्य का जो विषय 'मानव प्रेम है उसकी भाषा भी उन दोनों में से कोई नहीं है। हृदय में प्रेम सहज ही अंकुरित होता है और वह जीवन में सहज ही हमें प्राप्त होता है जो सहज है उसके लिए सहज भाषा ही अपेक्षित है। असहज भाषा में यदि वह कहा जाएगा तो अनकहा ही रह जाएगा।"[१३१] भाषा की इसी सहजता और सरलता के कारण नीरज के गीतों का प्रभाव क्षेत्र द्विगुणित है।[१३२] भाषा-क्षेत्र पर्याप्त-सक्षम और सरल होने के कारण जटिल और दुर्बोध से दुर्बोध विषय भी अत्यधिक स्पष्टता के साथ मुखर हुआ है। अपनी प्रातिभ शक्ति-सम्पन्नता के बल पर कवि ने इच्छानुसार विषय की अनुरूपता जाँच-परख कर चित्रमयी, संगीतमयी, परुष, दार्शनिक, सहज, सांकेतिक आदि भाषाओं को प्रयुक्त करते हुए अपनी प्रौढ़ लेखनी को प्रमाणित किया है। उनके गीतों की लोकप्रियता का एक सर्वमान्य कारण उनकी निर्झर की-सी अबाध-गति और स्वाभाविक भाषा में गुंथी हुई अनुभूतिजन्य गीत-सृष्टि है।

इसमें सन्देह नहीं कि भाषा की भावानुरूप सहजता एवं सरलता स्वागत योग्य है लेकिन उनके शब्द-भण्डार की निर्धनता उनकी गीत-सृष्टि के पक्ष में एक सर्व-प्रमुख दोष है। कफन, मरघट, लाश, कब्र, मौत, श्मशान, बगिया, पीर, मजार बुलबुल, अर्थी, अश्रु, शलभ, दीप, कारवाँ, आकाश, धरा, पनघट आदि शब्दों का पुनः पुनः प्रयोग एकरसता एवम् ऊब उत्पन्न करने के साथ-साथ कवि-भावों के प्रति अरुचि उत्पन्न कर उनके गीतकार व्यक्तित्व को खण्डित करता है।

भाषा मे व्याकरण सम्बन्धी दोष भी कही-कही प्रश्न चिह्न लगाते हैं। 'मत' और नही'[133] समानार्थक होते हुए भी प्रयोग की दृष्टि से भिन्नता प्राप्त कर लेते हैं किन्तु 'नीरज' ने मत शब्द का प्रयोग अशुद्ध किया है। भाषागत प्रभाव मे उर्दू प्रभाव[134] लक्षित है। लोक गीतो मे भाषा भी भावानुरूप होकर आयी है। ऐसे गीतो मे लोक भाषा का प्रयोग लोक-स्पर्श को तो व्यजित करता ही है, गीत के भावो को अधिक प्रभावशाली एव समृद्ध भी कर देता है। शुष्क और नीरस विचारोर्मियो को भी काव्यात्मक आकर्षण मे बाध कर प्रस्तुत कर देने की कला मे नीरज सिद्धहस्त हैं। खिल खिलाती धूप, अस्ताचल-साझ और महकती-उन्मादक चांदनी के समान उनकी मादक कविता पाठको अथवा प्रेक्षको के हृदय मे ऐसा मदिर मदिर रस घोलती है कि वह भाव विभोर होकर अपनी सुध-बुध खो बैठता है। कविता के विषय मे स्वय कवि की धारणा को रेखाकित किया जा सकता है—' मैंने कविता की अपेक्षा गीत अधिक लिखे हैं और मेरे गीत लोकप्रिय भी हुए हैं—यह सत्य है। अधिकाश लोग उनकी लोकप्रियता का श्रेय मेरे कविता-पाठ के ढग को देते हैं। कुछ हद तक यह भी सत्य है, पर उनकी लोकप्रियता का सबसे बडा कारण उनकी निर्झर-सी अबाध गति और स्वाभाविक भाषा मे गूथी हुई स्वाभाविक अनुभूति।'[135] शब्द-भण्डार की निर्धनता कवि की सबसे बडी सीमा है जिसके प्रति उसे सचेष्ट होना है।

प्रतीक योजना

प्रतीक-योजना के क्षेत्र मे कवि की सफलता असदिग्ध है। पुरातन प्रतीको की केंचुली उतारकर उसे सर्वथा नया रूप[136] देकर प्रयुक्त करने मे वे सिद्धहस्त हैं। इसी परम्परा मे 'आसावरी' नामक उनका कविता-सग्रह प्रस्तुत किया जा सकता है जिसमे उन्होने 'विदक्षिण आ पहुचा' नामक गीत मे 'मोह' और 'माया' की बात सर्वथा नूतन[137] प्रतीको के माध्यम से प्रेषित की है। यद्यपि नीरज ने प्रचलित प्रतीको को ही ग्रहण किया है, दीपक, शुलभ, आदि प्रतीको का प्रयोग उर्दू प्रभाव के कारण सहज रूप से आ गया है। कारवा, अर्थी[138] आदि के प्रतीक इनके सर्व-प्रिय प्रतीक कहे जा सकते हैं लेकिन उन्होंने नवीन प्रतीको म भी अपनी अभिरुचि व्यक्त की है।

सगीतात्मकता

गीत और सगीत अन्योन्याश्रित हैं। शब्दो का अपना एक पृथक सगीत है। आधुनिक गीतकार इसी शाब्दिक सगीत को अपने गीतो मे मुखर करने का प्रयास करता है। नीरज के गीतो म सगीत-भावना का अनुवर्ती होकर आया है। शास्त्रीयता से दूर नीरज के गीता का सगीत-सौन्दर्य लय और लोक-सगीत पर आधृत

हृ। शास्त्रीय सगीत-विधान की कसौटी पर असफल नीरज की अधिकाश गीत-सृष्टि भावनात्मक सगीत को पूर्ण रक्षित करने मे समर्थ हो पायी है। हर्ष एव उल्लास के मादक क्षणो मे गीत छोटे-छोटे छन्दो से निर्मित एक अनोखे प्रभाव भाव साम्यमय वातावरण की सृष्टि करने मे सक्षम है तो गम्भीर विषयो के लिए लम्बे लम्बे सहज गति से परिचालित छन्दो को प्रयुक्त कर नीरज ने अपनी प्रातिभ कुशलता को प्रतिपादित भी किया है। छन्द के मात्रा-काल एव गीत के मात्रा-काल मे व्यक्त अद्भुत साम्य गीत मे आवेगमय प्रवाह निर्मित करते हुए सफलतापूर्वक गायक को गाने[१३६] के लिए प्रेरित करते हैं चूकि गीतो मे शब्द-विधान के सगीतात्मक निबन्धन के कारण एक सहज लययुक्त प्रवाह प्रवाहित हो जाता है। प्रत्येक शब्द का प्रभावित करने वाला अपना नाद-सौन्दर्य है जो अपना समन्वित प्रभाव निर्मित कर भाव-सौन्दर्य मे चार चाद लगा देता है।

मूल्याकन

कठ के माध्यम से जिन गीतकारो ने गीतो को जनप्रिय बनाया उसमे नीरज का मूर्धन्य स्थान है। निश्चय ही हृदय की सहज अनुभूतियो को नैसर्गिक उपकरणो के माध्यम से जो अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है उसे नीरज ने अपन मधुर कठ स्वर से जन-जन-प्रिय बना हिन्दी गीतिकाव्य को अपना स्वर्णिम एव महत्वपूर्ण योगदान दिया है। काव्य की साहित्यिक कसौटियो और मान्यताओ को दृष्टिपथ मे रखकर हम नीरज के व्यक्तित्व और कृतित्व को मूल्याकित करते हुए चाहे (काव्य मे) उन्हें स्थान न दें लेकिन श्रेष्ठ गीतकारो की महत्ता एव प्रतिष्ठा की अग्रिम पक्ति मे निस्सदेह नीरज बैठने के अधिकारी है, इस तथ्य-सत्य की उपेक्षा हम किसी भी रूप मे नही कर सकते। भाषा के उन्मुक्त प्रवाह, प्रणय के वियोग-पक्ष की मर्म-स्पर्शिता, नैराश्य की घोर अन्धकारमयी मार्मिक अनुभूति, मृत्यु के सत्य चिरन्तन एव मानव के दुर्दान्त प्रेम की दृष्टि से नीरज एक अन्यतम एव सफल गीतकार है।

४. बालस्वरूप राही

नवगीत की पृष्ठभूमि तैयार करने वालो मे बालस्वरूप राही अग्रणी है। इसीलिए आधुनिकतम गीतकारो मे उनका नाम काफी चर्चित है। नयी कविता और आधुनिक गीत को एण्टी रोमाण्टिक बताते हुए राही बौद्धिकता एव हार्दिकता के समजन को ही नवगीत का उत्पत्ति-केन्द्र स्वीकार करते हैं।[१४०] भावुकता का कोई भी रूप आधुनिक गीत को स्वीकार्य नही है चाहे वह भावुकता रोमानी हो या आदर्श के प्रति ···नया गीत, भावुकता-विरोधी होते हुए भी विशुद्ध बौद्धिक नही है। वह शास्त्रीय अर्थ मे रसात्मक भी नही। वह केवल सवेगात्मक है···विशुद्ध बौद्धिक न होने के कारण नये गीत मे दार्शनिक ठण्डापन नहीं, जीवनोष्मा है···नया

गीत बौद्धिक ऊहापोह का नही, जीवन से जूझने की कविता है।"[141] केवल सिद्धान्त-प्रतिपादन मे नही, राही उसे व्यावहारिक रूप देने मे विश्वास करते हैं।[142] सिद्धान्त-प्रतिपादन की इस व्यावहारिकता ने नवगीतकारो के सौन्दर्य के प्रति *नये दृष्टिकोण को जन्म दिया है इसीलिए राही और परम्परा-विरोधी अन्य* नवगीतकार न तो नयी कविता की भाति 'विदेशी केशर' की सुगन्धि की ओर आकर्षित है, न ही वह 'बासी कमल—गीति परम्परा' को अपनाने का इच्छुक, बल्कि वह तो 'जीवट' से परिपूर्ण हो 'जीवन सघर्ष'[143] से नि सृत *गीत की अपेक्षा* करता है। राही काल्पनिक जगत् मे भ्रमण नही करता, भोगे हुए आत्मपरक सत्यो को उद्घाटित करने की तकलीफ उसे सहज स्वीकार है। छायावादी कवियो की भाति राही 'जीवन से पलायन' नही करता वरन् अपने जीवट के बल पर सघर्ष-रत होता है। जीवन-अनुभव के निष्कर्ष रूप मे उसे लगता है कि अनुभूतिया चाहे 'गरल' अथवा 'असत्य' हो—वह केवल उसी की है—इसी मे उसे सुख और आनन्द है।[144]

राही की रचनाओ की मात्रा विपुल नही है किन्तु मात्रा गुणवत्ता की कसौटी है—अन्तिम रूप से स्थापित सिद्धान्त नही। उन्होंने मनुष्य की अर्धविकसित चेतना के सघर्ष को गहनता से देख-परख कर युग-बोध के स्तर पर साहित्य की जीवन-शक्ति को स्वीकृति प्रदान की है। कहते हैं—"सक्रान्ति युग है हमारा, अमृत जब निकलेगा, अभी तो मानवता के हाथ कुछ नही लग रहा है। वातावरण मे बहुत गहरी घुटन है, उमस है वरखा होने से पहले जैसी होती है जो वर्तमान की समग्र उथल-पुथल, अनास्था और आशकाओ की विराट्ता को गहराई और व्यापकता के साथ अभिव्यक्त कर सके, वही कलाकार ईमानदार कहलायेगा।"[145] *कवि की ईमानदारी, सच्चाई उसके गीतो मे स्पष्ट झलकती है। युग के वर्तमान* रूप के प्रति विश्वास प्रकट करते हुए उसने सम्भावनाओ के नए झरोखे से नवीन आयामो के खोजने का प्रयास किया है। इस सघर्ष मे कवि प्रत्येक पल व्यष्टि के *अह को विराट् तक पहुचाने की चेष्टा मे सलग्न रहा है। इसी कारण उनके गीतो* का भावात्मक धरातल किसी सकीर्ण सीमाओ मे आबद्ध न होकर विशाल फलक-आधार पर अपनी विराट्ता के साथ पनपा है।

काव्य-यात्रा

'मेरा रूप तुम्हारा दर्पण' राही का प्रकाशित प्रथम गीति-सग्रह है जिसमे किशोरा-वस्था की कविताए हैं। भावनाओ का ज्वार यहा मर्यादाओ के कूल-कगारो को तोडकर बह निकलने को उद्यत दीख पडता है। कवि की आखो के आगे यहा क्षितिज की इन्द्रधनुषी रगीनी अपनी पूरी मादकता मे उपस्थित है। उदासी और दर्द के बादल कभी-कभी कवि के इस क्षितिज को धुधला कर देते हैं। राही ने स्वय इस

तथ्य को कृति की भूमिका मे स्वीकार भी किया है। कवि के ही शब्दो मे—"कवि-व्यथा वह कवच है जो हमे वास्तविकता के आघातसे बचाता है। कितनी आकर्षक, कितनी सम्मोहक थी वह उदासी जो गीतो मे ढल-ढल जाती थी। मेरे उन दर्द-भरे गीतो को न-जाने कितने लोग प्यार करते थे। उनका प्यार पाकर मुझे लगा कि कुछ पाने को रह नही गया है।"[१४६] किन्तु यह भावुक किशोर कवि—प्यार पाना जिसका सबसे बडा लालच रहा हो—"जो नितान्त मेरी हैं"—मे आकर यथार्थ की बजर भूमि पर उतर आया। समय की परिवर्तित धुरी पर सक्रमित होते हुए कवि-दृष्टि ने प्रौढता प्राप्त की और महसूस किया 'मेरा रूप तुम्हारा दर्पण' वाला इन्द्रधनुषी क्षितिज कही खो गया है। वह हल्का-सा कच्ची उमर का दर्द एक भीड-भरी बदबूदार गली मे बदल गया जहा अजनबी चेहरे हैं, कीचड-भरी सडक है, उपेक्षा करती हुई लडकिया हैं, गालिया बकते हुए लोग हैं और इस भीड-भाड मे अकेला कवि है।

कवि इस तथ्य से अच्छी तरह परिचित हो चुका है कि गीतकार होते हुए भी आधुनिक जीवन की जटिल परिस्थितियो द्वारा निर्मित कडवे-यथार्थ परिवेश मे वह भावुकता के ज्वार मे नही बह सकता, सोचने के ज़हर से कही त्राण नही पा सकता। कवि समाज की विषमताओ और जीवन-सच्चाइयो की तहें खोदने मे प्रयत्नरत हो जाता है चूकि उसे पता है ग्लैमर का नशा[१४७] उखडने पर मात्र टूटन और चुभन ही शेष रहती है। इसलिए वह अपनी इयत्ता की अपने, 'मैं' की रक्षा करने के प्रति सचेत है। वह अपने अह को किसी भी मूल्य पर कुण्ठित करने को तैयार नही है क्योकि हर मुहर लगी चीज बदबूदार है। कवि का अनुभव है कि "लोकप्रियता खरीदने के लिए सबसे पहले जो चीज बेचनी पडती है वह है 'मैं'। 'भीडो का कोई व्यक्तित्व नही होता।' भीड पसन्द करती है उत्तेजक नारे, नाटक और सस्तापन। "मैंने कही गहरे मे, बडे गहरे मे यह अनुभव किया कि मेरी रुचि लोक रुचि की अनुगामिनी नही हो सकती। मैं भीड के विपरीत चलकर रौंद दिया जाना ज्यादा पसन्द करूगा, अपने मन के प्रतिकूल चलकर भीड का जय-जयकार स्वीकार नही कर सकता। मैं सब-कुछ खो सकता हू, अपना आत्म, अपना अह नही। मुझे हर सस्ती, सुलभ और मुहर लगी चीज से नफरत है"[१४८] परिणाम हुआ किशोर आयु के कच्चे दर्पण पर धुधलाता हुआ क्षितिज सिलेट पर चाक से लिखी इबारत-सा मिट गया, वह इन्द्रधनुष एक रगीन गुब्बारे-सा फट गया और कवि ने अपने आपको—खाइयो और जगलो के बीच खडा पाया जहा रास्ता नही, बस एक दिशा है। दिशा भी नहीं, केवल एक दिशाभास है। सम्भव है दिशा-हीनता भी हो।

इस टूटने और भटकने के क्रम मे 'मेरा रूप तुम्हारा दर्पण' के लगभग एक दशक बाद 'जो नितान्त मेरी हैं' के आत्मसघर्ष और आत्मान्वेषण का मुहावरा

खोजता कवि सामने आया जिसकी जिद भी[१४९] 'मैं' का एक अनिवार्य तत्त्व है, जीने की एक शर्त है।

'मेरा रूप तुम्हारा दर्पण' के आरम्भिक गीतो को छोडकर जिनमे कैशोर्यगत भावुकता, तरल, आर्द्र, सुकुमार भावुकता का ज्वार उफन रहा था, जो किसी तर्क की अपेक्षा व्यर्थ समझता है—'जो नितान्त मेरी हैं' मे आकर शान्त हो गया। इन गीतो में वह रूमानियत नहीं उतर पाई जो अपने जादुई स्पर्श से हर दृश्य को स्वप्निल बना देती है। भावुकता से राही का अभिप्राय भाव-प्रवणता से नही, अपितु कच्ची भावुकता से है, यथार्थ-विरोध से है और स्वप्नमयता से, कैशोर्य से है और प्रौढता से है। वह गीत को मानते ही कैशोर्य भावातिरेक की अभिव्यक्ति है। चूकि आज के जीवन की रुक्षता और कठोर वास्तविकताओ से अपने को गीतकार नही बचा सकता इसलिए वह गीत की कल्पना अतिरजना और अतियोक्ति मुक्त रचना के रूप मे करता है। गीत को पलायनशील मनोरजन का माध्यम बनाकर उसके भविष्य की हत्या करना है। राही का विश्वास है कि गीत यदि छायावादी वायव्यता और छायावादोत्तर भावुकता से अपन आपको मुक्त नही रखेगा तो उसकी उपयोगिता और जीवन्तता सदिग्ध हो जाएगी। आज का गीतकार आधुनिक जीवन के तनाव को भोगता हुआ गीत को नए-नए साचे म ढाल देता है, उसे एक नई तराश दे देता है, या यो कहे कि सब साचो को तोडकर उसे एक नया रचनात्मक रूप (विधान) प्रदान कर देता है। ऐसी स्थिति मे गीत की सार्थकता प्रश्नातीत हो जाती है। और राही के गीत विशेष कर 'जो नितान्त मेरी हैं' के गीत आधुनिक जीवन का खोजा हुआ एक नया मुहावरा है, जीवन की तकलीफदह सच्ची तलाश है जो नितान्त कवि की होते हुए भी सभी की है।

व्यग्य

जहा तक गीत 'आत्मा का महज उद्वेलन' या रागात्मक होता है वही तक वह अभिप्रेय रहता है, लेकिन जब 'रागात्मकता' का समजन 'बौद्धिकता' से हो जाता है वहीं 'व्यग्य' जन्म लेकर तीखे और पैने काटे चुभोता हुआ—अपने अस्तित्व का आभास देने लगता है। समसामयिक विकृतियों, दुर्बलताओ तथा असगतियो-विसगतियों पर राही ने करारे व्यग्य[१५०] किए हैं।

गीतो मे 'व्यग्य' मे सम्बन्ध के लिखते हुए राही ने अपने विचार व्यक्त किए थे : "नए गीत का मुख्य स्वर 'सिम्पेथी' और 'कम्पेशन' का है, 'सेटायर' या 'आयरनी' का नही।"[१५१] 'सेटायर' से 'सिम्पेथी' के तालमेल की असुविधा राही के अनुसार 'सेटायर' (व्यग्य) म सहानुभूति का अभाव है। विपरीत इसके व्यग्य के मूल मे सहानुभूति विशिष्ट स्थान रखती है। फिर भी राही यदि नय गीत के मुख्य स्वर मे सहानुभूति को स्वीकृति देते हैं, तो भी हमे किसी प्रकार की आपत्ति नही

है। चूंकि व्यंग्य और कटाक्ष का अस्तित्व यहां भी देखा जा सकता है।

तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था की विद्रूप विसंगतियों की विडम्बना राही के गीतों में मुखर होकर पनपी है। 'गजरे का एक फूल' नामक शीर्षक गीत में 'गंगा' और 'छिछले तालाब' का व्यंग्यात्मक सम्बन्ध समूची विडम्बना का सजीव प्रमाण प्रस्तुत करता है।[१५२] 'यह मुझ को क्या हुआ,' 'जब भी मैं लेता हूं नाम किसी फूल का,' 'बंधी हुई उंगली का दर्द उभर आता है', प्रतिक्रिया-स्वरूप कैंसर से पीड़ित इस गहन सामाजिक विकृति की शल्य-चिकित्सा व्यंग्य की शर-वर्षा से करने लगता है।[१५३] 'दसों दिशाओं की शून्यता, सभी दिशाएं सूनी हैं' की बेगानी, अजनबी, अपरिचित सूरतों के शब्द-चित्रों में ढल जाती हैं, लेकिन शून्यता में उभरता विडम्बना का अचिन्तनीय असहनीय दर्द यथार्थ में शैल-चट्टान से टकराकर सोचने-विचारने का अवकाश नहीं देता।[१५४]

कवि बच्चन ने 'मेरा रूप तुम्हरा दर्पण' की भूमिका में स्वीकार किया है, "मेरा अपना विश्वास है कि राही के विकास की दिशा गीतों में है, मुक्त-छन्द की रचनाओं में है, गजल या रुबाइयों में नहीं।"[१५५] राही ने गीतेत्तर रचनाएं भी लिखी हैं किन्तु उनका महत्त्व अधिक नहीं है।[१५६]

वर्ण्य विषय : प्रेम

आधुनिक गीतकार रूप-सौन्दर्य से उत्पन्न प्रेम को अभिव्यक्त करने में ही अधिक विश्वास रखता है। तथ्य की स्पष्ट स्वीकारोक्ति राही के कथन में है। प्रेयसी को देखते ही व्यतीत-व्यथा से उभर जाना नवगीतकार की नियति है। यही कारण है कि विरह के क्षण-युगों को सहते हुए जहां उसे 'प्रिया का गार्हस्थिक बोध' होने लगता है वहीं कवि का 'प्रणय और प्रणायनी'[१५७] पर विश्वास भी अमर है। प्रणय के प्रति यह नयी दृष्टि नवगीतकारों की 'एण्टी रोमांटिक एप्रोच' है जिसमें विद्यमान अतिशय भावुकता को राही ने 'रागात्मकता' में पर्यवसित कर दिया है।

प्रेम-पात्र की उपस्थिति राही अपने गीतों को सुनाने के लिए अनिवार्य मानते हैं। उनके अनुसार यदि गीतों को सुनने के लिए प्रेम-पात्र ही पास न हो तो गीतों को सुनाने में आनन्द ही क्या? इसीलिए गीत गाने से पूर्व कवि अपने मीत को चेतावनी-स्वरूप जागते[१५८] रहने का आग्रह करता है।

प्रेम में 'ममत्व' राही के गीतों का गहरा आकर्षण है। प्रेमाभिव्यक्ति के क्षेत्र में वे किसी श्रद्धा-भावना अथवा पूज्य-बुद्धि का अवलम्बन ग्रहण नहीं करते। उनके लिए सामान्य मानवीय आकर्षण ही प्रेम की एकमात्र कसौटी है। इस निधि को सम्भाले हुए वे अपने प्रेमाभिव्यक्ति के क्षेत्र को विस्तृत करते हैं, चाहे वह पुरुष का नारी के प्रति आकर्षण हो अथवा नारी का पुरुष के प्रति। पूज्य अथवा श्रद्धा भाव में आध्यात्मिकता का अंश आने से वहां मानवीय दुर्बलताओं को सहन करने का

अवकाश नही रहता। कवि अपने आपको अभी तक मानव के अतिरिक्त किसी और असामान्य की कसौटी पर विश्लेषित नही कर पाया।

सम्भवत इसी मानवीय दृष्टि के कारण राही अपनी प्रेमिका को पुल्लिग रूप मे सम्बोधित करता है। अन्य कवियो की भाति यह भी कहा जा सकता है कि उर्दू-फारसी का प्रभाव होने के कारण राही इस प्रकार अपने प्रेम-पात्र को सम्बोधित करते हैं लेकिन उनका यह सम्बोधन आधुनिक विचारधारा के अधिक अनुकूल है जो अपने प्रेम-पात्र को उभयलिंग शब्द 'मीत' [१५९] सम्बोधित कर समता का अधिकार स्वीकार करता है। उनके गीतो म वर्णित प्रेम स्वस्थ दृष्टिकोण पर आधारित है। प्रेम के प्रति कवि का स्वस्थ जीवन-दर्शन उसमे ऐकान्तिक अथवा भोगेच्छा की विकृत भावना नही उत्पन्न होने देता अपितु कवि की क्षमता को द्विगुणित कर जीवन के कर्म-क्षत्र म निर्भीक उतर जाने की प्रेरणा देता है, यह प्रेम ही उसके जीवन का शक्तिशाली अवलम्बन [१६०] है जो निरन्तर उसम नवीन शक्ति[१६१] का निर्माण कर विकट स विकट तूफानो क पावो म घुघरु पहनाने का अपूर्व साहस देता है। घोर से घोर विपत्ति[१६२] के तमान्धकार की कुहेलिका को चीर कर आदर्शो के अत्युच्च शिखर को स्पर्श करने का दृढ सकल्प निर्मित करता है। कवि इसी प्रेम से प्रेरित होकर जीवन मे अथक परिश्रम करना अपना कर्म स्वीकारता है।[१६३] कवि अपनी प्रयसी से प्रेम किरणो के विस्तार का आग्रह करता है जिससे शक्ति अर्जित कर वह हर दीपक को सूर्य बनाने मे सफल हो। यदि कभी आपदाओ, झझाओ की तीव्र गति, मानव को घेरकर नैराश्य भावना को जन्म भी द दे, मृत्यु के विषय मे चिन्तन करने को विवश कर दे तब भी ऐसी स्थिति म प्रेम ही वह अमृततत्त्व है जो उसे प्रकृति की तरफ आकर्षित कर पुन उसकी प्राण-चेतना को व्यवस्थित करते हुए उसे जीवन के वासन्ती पलो की ओर लौटा लाता है।[१६४] अत प्रेम ही जीवन-रथ का अचूक सारथि है जो जीवन-सग्राम मे कभी पराजित नही होने देता। कवि का दृढ विश्वास है प्रेम का एक कण भी बडे-स बडे भौतिक मूल्य से अधिक मूल्यवान[१६५] एव जीवन के लिए सार्थक है।

कवि अपने प्रेम को गोपनीय रखने म विश्वास रखता है। प्रेम की पवित्रता को बनाए रखने के लिए कवि उसे जग के सम्मुख ले जाने का पक्षपाती नही है, कारण, जग के सामने ल जाने पर सामान्य की कसौटी पर तो उसके प्रेम का मूल्याकन होगा ही, जिस तिस की मलिन वाणी स चर्चित होने म उसकी पावनता एव उदात्तता कलकित होगी, परिणामस्वरूप वह एक सामान्य-सी कहानी-मात्र[१६६] रह जाता है। स्पष्ट है कवि के प्रेम मे साहस की अपेक्षा भीरुता की भावना अधिक है।

भारतीय प्रेम की चरम सीमा कीट-भृ ग गति मे है। प्रेम की आदर्श प्रतिमा राधिका अपने श्याम के प्रेम मे इतनी एकाकार हो गई है कि उसे प्रेम की तीव्रा-

नुभूति के कारण अपने अस्तित्व की चेतना ही शेष नही रहती और वह श्याम के रूप मे ढलकर स्वय की विरहाग्नि मे तप जल रही है। आचार्य शुक्ल की शास्त्रीय शब्दावली मे 'जिस प्रकार ज्ञान की चरम सीमा ज्ञाता और ज्ञेय की एकता है उसी प्रकार प्रेम-भाव की चरम सीमा आश्रय और आलम्बन की एकता है।'[१६७] राही के गीत इसी दृष्टि को प्रतिपादित करते हैं। कवि प्रेयसी की विजय म आन्तरिक उल्लास का अनुभव करता है तो उसकी पराजय मे स्वय को अशान्त और मानसिक रूप से बीमार भी। भावात्मक एकता का इससे सजीव प्रमाण और क्या होगा कि प्रेयसी के विजित होने पर दिन-भर वह दीपावली की पातें सजाता रहा और उसकी हार[१६८] की आशका भी उसे भ्रमित और उद्विग्न कर देती हैं। रूप सौन्दर्य की मोहक चेतना का तादात्म्य भी इतना हो गया कि दर्पण निहारते हुए उसके प्रेमपूर्ण दृगयुगल प्रिया के रूप मे अपना ही कमल-मुख निरखते हैं,[१६९] क्योकि जब कभी भी कवि ने अपनी रूपसी प्रेयसी को देखा है उसे इसी प्रकार का अनुभव प्राप्त हुआ है।

स्वच्छन्द प्रकृति चित्रण राही के गीतो मे नही उपलब्ध होता, प्रेम की भावनाओ को उद्दीपन का जल देने के लिए प्रकृति ने अवश्य अपना योगदान दिया है। सयोग-सम्मिलन के मादक-मधुर क्षणो मे प्रकृति उतनी तीव्रता से उद्दीप्त नही करती जितना प्रिय के वियोग-पूर्ण क्षणो मे अतीत की मधुर स्मृतियो के रूप मे तडपाती, कष्ट देती है। राही ने भी प्रकृति के इसी सर्वमान्य तथ्य को[१७०] सामान्य रूप से स्वीकृति प्रदान की है।

वेदना

राही गीत और वेदना का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध स्वीकार करते है।[१७१] इसीलिए आत्मा की सुख शान्ति तथा दुख-दर्द को गीत द्वारा सहलाना ही श्रेयस्कर समझते हैं। वैयक्तिक और सामाजिक दोनो ही प्रकार की वेदना का बाहुल्य कवि के गीतो मे देखा जा सकता है। अन्य गीतकारो की भाति वैयक्तिक वेदना का वही जाना-पहचाना कारण यहा भी उपस्थित है—प्रेम से उत्पन्न नैराश्य भावना तथा सामाजिक वेदना का कारण समाज का विकृत, त्रसित और घुटनशील वातावरण है जिसने समाज की एकात्मक एकता को भग कर दुर्व्यवस्था का साम्राज्य स्थापित कर रखा है।

राही ने अपनी पीडा को ही स्वीकृति प्रदान नही की उसकी महत्ता और पवित्रता को भी यथासम्भव मूल्याकित करने का ईमानदार प्रयास किया है। व्यथा मानव को मानव के निकट करने का सरलतम साधन है इसलिए वह पवित्र है और जब उसमे स्वय के व्यक्तित्व का कोई अश अथवा निजीपन का कोई रग विद्यमान हो तो वह और अधिक पावन हो जाती है। व्यथा की उज्ज्वल पवित्रता के कारण

कवि नही चाहता कि हर अपने-पराये के समक्ष अपने भोगे हुए यथार्थ को वाणी देने की चेष्टा करे, क्योकि वह लोगो की असत्यवाणी से ही नही, कुदृष्टि से भी कोसो दूर रहने की अभिलाषा मन मे लिए है किन्तु प्रबल कवि की विवशता को व्यक्त करता है और कवि नियति के परवश होकर अपने आन्तरिक हृदयोच्छवासो को गीतो म अभिव्यक्ति दे ही देता है। सम्भवत इसका एक अन्य कारण कवि की कोमल कसकती पीर है और दुनिया की पाषाणता लक्षित कर उसे विश्वास नही होता कि उसकी प्रेममय वेदना किसी प्रकार इस निर्मम दुनिया से दुलार की अधिकारी हो पाएगी।[१७२]

मादक-सत्य

गीतकार की इस वेदना का उत्स प्रेम के धरातल पर विद्यमान विरह की ज्वाला है। अपनी सहज प्रेमानुभूतियो के मादक सत्य पर कवि निश्छल भाव से अपना प्रेम-सर्वस्व दाव पर लगा देता है लेकिन सदैव पराजय के आलिंगन-स्वरूप उसे पुरस्कार म गम[१७३] ही प्राप्त हुआ। कवि के लिए यह वेदना आकस्मिक तथा अनपेक्षित नही है। इसलिए वह बहुत ही सहज भाव से उसको अगीकार कर लेता है। प्रेम और पीडा का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होने के कारण कवि उसकी अर्थवत्ता और महत्ता से परिचित है क्योकि यही वह मधुर अग्नि है जो प्रेम पात्र को दग्ध कर उसके हृदय को कुन्दन और पारस बनाकर अधिक सवेदनशील[१७४] रूप मे ढाल देती है।

दूसरी ओर समाज का घुटनशील, भावो को ग्रसित करने वाला, समाज की रचना-पद्धति को अव्यवस्थित कर कुण्ठाओ का जन्मदाता विभीषक वातावरण है[१७५] जो कवि की सामाजिक वेदना को उद्दीप्त कर उसकी चिन्तन-पद्धति को विकृत करने का दुस्साहस करता है। महानगरीय सन्त्रास स उत्पन्न जीवन के निषेधात्मक मूल्य कवि-स्वर मे उभरने लगते हैं। नैराश्य भाव से उत्पन्न कुण्ठा तथा अनास्थामय बीभत्सता उत्पन्न होकर कवि के जीवन की समस्त दिशाओ पर अर्गला लगाते हुए अग्रणी रूप म प्रस्तुत हो जाती है और कवि भी 'धरा' को 'मृत'[१७६] घोषित कर देता है। परिणामस्वरूप उसके हृदय की 'सृजन-आकाक्षा'[१७७] धीरे धीरे विशृखलित होने लगती है। कवि के इस विकृत दृष्टिकोण ने एकाधिक स्थानो पर भाग्यवाद तथा ऋणात्मक दृष्टिकोण को जन्म[१७८] देकर उसके स्वस्थ जीवन-दर्शन पर प्रश्न चिह्न लगा दिया है, निस्सन्देह ऐसे पीडादायक क्षणो को जीवन के लिए किसी भी रूप मे स्वस्थ एव सबल नही घोषित किया जा सकता।

कतिपय दुर्बल क्षणो की विकृति राही को उसके स्वस्थ जीवन-दर्शन से नही डिगने देती। ऐसे स्थलो को छोडकर राही का स्वस्थ मानव उद्घोष करता है वहा वे स्वय स्वीकारते है वे कायर नही है। अपनी प्रेयसी के समक्ष वे अपने

स्वस्थ सकल्प को दोहराते हैं कि यदि कभी मेरे दृग-युगल पौरुष के पराजित अश्रुओं से भीगे हों और मैं कायरता दिखा जीवन-सग्राम से विमुख हो जाऊ, आचल की प्यार-भरी शीतल छाया तो दूर तुम मेरी शक्ल[१७६] भी नही देखना।

सघर्षों के अन्धकार पर सूर्य बनकर छा जाने के सकल्प को व्यक्त करने के पश्चात् भी मानव होने के कारण राही अपनी पौरोपित सीमाओं को पहचानते हैं। रूपसी-प्रेयसी के भाव-रश्मिया देने पर वे हर दीपक को भानु का प्रकाश तो दे सकते हैं किन्तु मानव होने के कारण इस धरती के तल को नही भूलते और अपनी मनुष्योचित सीमाओं की स्पष्ट स्वीकारोक्ति करते हैं।[१८०]

सामाजिक और राजनीतिक चेतना

समसामयिक परिस्थितियों ने नवगीतकार के सामने 'परम्परा एव सस्कारों' का दिव्य रूप रखा लेकिन उस 'दिव्य रूप का दर्पण छिन्न-भिन्न होना लाजिमी था। चूकि जिन 'मानवीय मूल्यों' से मानव की समाज में प्रतिष्ठा है—उन्होंने व्यावसायिक रूप धारण कर लिया। राही की पैनी दृष्टि ने इस खोखलेपन को पहचान कर अपनी राजनीतिक और सामाजिक चेतना की सूझ-बूझ का परिचय देते हुए तेज़ी से सक्रमित होते हुए परिवर्तनशील मूल्यों के चित्र खीचे हैं। कवि की आत्मा समसामयिकता से उत्पन्न तथा-कथित सुविधावादी प्रवृत्ति से समझौतापरस्ती करने में असमर्थ रही और कवि ने अन्तर्मन से इस सुविधावादी युग में मनुष्य के आचरण की सवेदनहीनता का अहसास किया। जबरदस्ती ओढ़ी हुई आत्मीयता और खोखली नारेबाजी पर कवि ने जबरदस्त प्रहार किए—परिणाम सामने था —यथार्थ भूमि का मोह-भग।[१८१] यह जानते हुए भी कि इस युग में खुशामद के बिना जीवित नही रहा जा सकता—राही ने अपनी चेतना के साथ किसी प्रकार का समझौता करना तो दूर वरन् शासक-वर्ग द्वारा निर्मित इस सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था पर व्यग्य ही नही उसे परिवर्तित करने की अकुलाहट भी व्यक्त की है। युग-चेतना का सम्पूर्ण आवेग एव राही की युगीन छटपटाहट[१८२] देखने योग्य है।

अध्यात्म

आधुनिक बौद्धिक जडवादी युग में अध्यात्म के लिए कोई विशेष स्थान नही रह गया, इस तथ्य से राही जी पूर्ण परिचित है। गम्भीर चिन्तन के पश्चात् उन्होंने स्वय ही प्रश्न उठाया और अपने जो तर्क उन्होंने प्रस्तुत किए, सम्भवत अध्यात्म के विरुद्ध बडी-बडी लम्बी-लम्बी उद्घोषणाए करने वालों को भी वे मान्य हो। *वस्तुत अध्यात्म के स्थान पर इसे मनोविज्ञान कहना अधिक समीचीन होगा* क्योंकि राही द्वारा प्रस्तुत अध्यात्म के पीछे भक्ति-भाव न होकर मनोविज्ञान का

आग्रह अधिक है। कवि यहां अपने विराट् अहं के कारण किसी भी स्थिति में अनेक दुर्बलताओं से युक्त मानवीय मूर्ति के समक्ष समर्पण को तैयार नहीं है। ऐसे कठिन[१८३] क्षणों में किसी विराट् सत्ता की अनुभूति के अभाव में भी उसकी कल्पना करनी अनिवार्य हो जाती है और राही ने इसी सरल मार्ग का चयन किया है। तर्क इस बौद्धिक युग में अध्यात्म की अनुभूति को तो मान्यता प्रदान नहीं करता लेकिन अध्यात्म की कल्पना पर उसे किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है। अतः हम राही के अध्यात्म का निषेध नहीं कर सकते।

राही के आध्यात्मिक कतिपय गीतों पर कहीं कबीर का स्पष्ट प्रभाव है[१८४] तो कहीं औपनिषदिक दर्शन का।[१८५] किन्तु निष्कर्षतः व ज्ञान-मार्ग के विरुद्ध अपनी आत्म-विश्वास एवं प्रेम की ही उद्घोषणा करते हुए उसके अनुचर[१८६] प्रतीत होते हैं।

भक्ति के अनुसार अपनी अकिंचनता तथा दयनीयता दिखाकर भगवान की शरण में जाने के लिए भक्त द्वारा प्रार्थना-गीत गाने का विशेष महत्त्व है। कवि ने यहां इसी 'शरणागति' के मार्ग का अनुसरण[१८७] किया है और अन्ततः सन्तों की सहज-समाधि की-सी स्थिति का निर्माण कर अपने और ब्रह्म के मध्य विभाजक-रेखा समाप्त कर एकाकार[१८८] होने की स्थिति निर्मित कर दी है।

शिल्प-दृष्टि

संगीतात्मकता की अल्पता तथा अभिव्यक्ति की सफाई राही के गीतों की मूल विशिष्टताएं हैं। राही की मान्यता है कि संगीतातिरेक कविता को क्षति पहुंचाता है। वह गीत को गाना बना देता है।[१८९] यूं तो इस युग की उपलब्धियों ने परम्परागत वाद्य-संगीत को यंत्र-संगीत में परिवर्तित कर दिया है। प्राचीन परम्परागत-गीत स्वरात्मक और स्वराश्रित होता है लेकिन नवगीत इसका परिहार करते हुए गीत में 'संवेगात्मक लय' की अनिवार्यता भी स्वीकार करता है, चाहे उसमें संगीत हो या न हो।[१९०] राही ने स्वीकार किया है—'स्वीकार करता हूं कि मेरे गीतों में गेयता अधिक नहीं है। अतिरिक्त संगीतात्मकता लाने की कोई चेष्टा मैंने नहीं की। कारण यह है कि मैं 'गीत गाने के लिए नहीं, पढ़ने के लिए लिखता हूं।'[१९१] इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि उनके गीतों में संगीत स्वरों का अभाव है, संगीतात्मकता उनका अतिरिक्त गुण नहीं है। लोक-धुनों तथा शास्त्रीय धुनों की कसौटी पर असफल होते हुए भी राही के गीतों में शब्द संगीत पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। संगीतात्मकता के चक्कर में उलझकर राही ने अपनी अभिव्यक्ति की स्पष्टता का कहीं त्याग नहीं किया इसीलिए उनकी भावाभिव्यक्ति में सूक्ष्मता तथा बारीकी के इस गुण को परिलक्षित करते हुए बच्चन ने खुले दिल से उनके गीतों की सराहना की है। 'मेरा रूप तुम्हारा दर्पण' की भूमिका[१९२] इसका प्रमाण है।

छंद

नये गीत मे किसी रूढ छन्द का अनिवार्य सम्भव नही है। वह अनायास हो जाए तो और बात है। छन्द-निर्वाह के लिए आवश्यक है कि पक्तिया कटी छटी, तराशी हुई और सम आकार की हो। किन्तु नए गीत मे पक्तिया असमान भी हो सकती हैं। नया गीत छन्दाग्रह से मुक्त हो चुका है। छन्द-निर्वाह के लिए कवि को अतिरिक्त शब्दो का प्रयोग भी करना पड सकता है, किन्तु नये गीतो मे शब्दो के अपव्यय के लिए कोई अवकाश नही है। उसमे निरर्थक विशेषणो आदि का प्रयोग कवि अक्षमता का परिचायक माना जा सकता है। अनावश्यक शब्दो के प्रयोग से बचने और अपने कथ्य को बिना घटाए बढाए कहने के प्रयास मे ही नए गीत की पक्तिया विषम आकार की हो जाती है।[163] 'अधूरी समाप्ति' नाम का शीर्षक इस निम्नाकित गीत की इन तीन पक्तियो मे मात्राओ की सख्या विषम है। अनावश्यक शब्दो से बचने के प्रयास मे राही ने बात को घटाए-बढाए बिना उसी रूप मे छोड दिया। स्पष्ट है मात्रा पूर्ति के लिए यहा फालतू शब्दो का प्रयोग अनिवार्य था, इसलिए छद-निर्वाह की आशा करना व्यर्थ था। छन्दो की मर्यादा तोडे बिना अनावश्यक शब्दो से बच पाना चूकि सरल नही है इसलिए नवगीतकार छन्द तोडने के लिए बाध्य हैं। चूकि समान आकार की पक्तिया ऊब पैदा कर सकती है। अतः छन्द[164] टूटने से गीत की एकरसता भी टूटती है।

अप्रस्तुत-विधान

सगीतात्मकता की भाति राही अप्रस्तुत-विधान के क्षेत्र मे भी सचेष्ट नही प्रतीत होते। सहज भावाभिव्यक्ति के मार्ग मे परम्परागत तथा नवीन जो भी उपमान आए कवि उन्हे अगीकार करता चला गया।

परम्परागत उपमाना का चयन अधिकतर प्रकृति-क्षेत्र से हुआ जिसमे कवि की अभिरुचि सागरूपको की[165] ओर अधिक झुकी हुई प्रतीत होती है। पौराणिक ऐतिहासिक उपमान आधुनिक गीतो की विशेपता माने जाने लगे हैं। अत स्वत ही राही के गीतो मे इनका बाहुल्य[166] दृष्टिगत किया जा सकता है।

प्रसग गर्भत्व की विशेषता भी राही की गीत सृष्टि समाहित किए है जहा एक सज्ञा किसी एक भावना के प्रतीक रूप मे प्रस्तुत की जाती है।[167] आधुनिक नागर जीवन से भी राही ने उपमानो का चयन किया है। उदाहरण अलकार[168] के माध्यम से राही ने नागर-सभ्यता का जीता-जागता शब्द चित्र खीचा है।

भाषा

राही ने अपने गीतो मे जन-सामान्य के बोल-चाल की सरल-भाषा को प्रयुक्त किया है। प्रसाद गुण के आधिक्य ने उनके गीतो को विशेप माधुर्य प्रदान करते हुए अभि-

ध्वनि की सफाई को व्यजित किया है। अनेकाधिक स्थानो पर सफलतापूर्वक कवि ने 'वक्रता' का सुन्दर प्रभावशाली प्रयोग किया है, उनसे दर्द कहे मत कोई, ये ऐसे हम-दर्द।' 'दर्द' तथा 'हम-दर्द' शब्दो की वक्रता, भाषा की व्यजना-शक्ति को अधिक क्षमता से द्विगुणित कर व्यजित करती है।

कवि द्वारा अपनायी खडी बोली में प्रादेशिक बोलियो के शब्दों का सुन्दर[१६६] और चमत्कारजन्य प्रयोग हुआ है। कहीं-कही गीतो की आत्मिक भाव-समृद्धि के लिए उर्दू शब्द-प्रयोग[२००] मे भी कवि ने किसी प्रकार के सकोच को नही प्रकट किया। राही अधिकाश शब्दो को उनके तत्सम रूप मे ही ग्रहण कर प्रयुक्त करने के पक्षपाती हैं लेकिन कतिपय स्थानो पर 'पवन' को 'पौन' के रूप मे प्रयुक्त कर उन्होने अपनी तद्भव-प्रियता[२०१] का उदाहरण भी प्रस्तुत किया है। यद्यपि व्याकरण की पूर्ण शुद्धता उनके गीतो की विशेषता है फिर भी कही-कही लिंग-प्रयोग मे व्यतिक्रम[२०२] भी उपस्थित हो गया है।

मूल्याकन

आधुनिक गीतकारो की तरुण पक्ति में जिन गीतकारो का आज मूल्याकन किया जा रहा है उनमे समृद्ध कल्पना तथा स्पष्ट भाषा-शैली के कारण 'राही' महत्त्वपूर्ण स्थान के अधिकारी है। उनके गीतो की लोकप्रियता के सर्वमान्य गुण उनकी सवेदनात्मक सहजता एव भाषा की सरलता द्वारा स्पष्ट भावाभिव्यक्ति है। इसमे सन्देह नही कि छायावादी गीतकारो की अभिव्यक्ति की प्रौढता तथा बच्चन के गीतों-सी मर्मस्पर्शिता उनकी गीत-सृष्टि मे नही है लेकिन इतना निश्चित है कि हिन्दी की चली आती हुई गीतिधारा को गति देने की शक्ति उनमे स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

विभिन्न प्रकार के प्रयोगो द्वारा बालस्वरूप राही ने नवगीत को नयापन प्रदान किया है। 'नवगीतों' की स्वतन्त्र विधागत स्थापना मे क्रियाशील राही कविता अथवा गीतो को प्रेरणा-प्रसूत और अनुभूति-सवलित स्वीकार कर चलते है। इसी कारण उनकी रचनाओ मे चिन्तन की शुष्कता का आरोपण नही किया जा सकता। उनकी वाणी मे चुनौती स्वीकार करने की चुम्बकीय शक्ति है जिससे बध कर गीत स्वयं[२०३] उनके भावो मे स्वर-तन्त्रियो के घोल घोलते हैं। उनके गीतो मे युग के भोंडेपन की विद्रूपता न होकर नये जीवन को खोजने की तीव्र लालसा है। नए जीवन की तलाश मे सक्रिय कवि की यान्त्रिक युग मे जीवन-पद्धति की आस्था दृष्टिगत है।[२०४] राही के अनुसार नयी परिस्थितियो मे 'गीतात्मक चेतना का नितान्त अभाव' है। 'गीत-पुस्तक-पत्रिका' की महत्त्वपूर्ण भूमिका मे राही ने अपने विचारो को स्पष्ट शब्दो मे व्यक्त किया है। अन्य विधाओ की भाति गीत मे भी 'लोक-रजना' के स्थान पर 'लोक-चेतना' की अभिव्यक्ति होती है। 'गीतो मे लोक-

चेतना की ओर ही मेरी दृष्टि है।" नवगीतकार आज की भीड़ मे अपने अस्तित्व को पहचानने का उपक्रम करता है। यही उसकी आधुनिकता है।

राही ने गीत को सर्वथा नवीन भाव-बोध प्रदान किया है। आधुनिकता के सन्दर्भ मे उसके गीत भटक नही पाये हैं। वह एक ऐसा गीतकार है जिसमे युग-चेतना अपने सम्पूर्ण आवेग के साथ दृष्टिगत हो पायी है। वे अपनी कविताओ को गीतिमय किन्तु खुरदरी[२०४] स्वीकार करते हैं। गीतिमयता राही के कवि की प्रकृति है और खुरदरापन आज की कविता की नियति ही नही खरी पहचान भी है। नीति की जो अपूर्व भगिमा और ताजी तराश राही की रचनाओ मे उभर आई है, वह उन्हे मिले-जुले चेहरो की भीड़ से अलग खड़ा कर देती है। यह एक ऐसे कवि की गीति कविताएं हैं जिसने अपने लिए अपना मुहावरा स्वय खोजा है। और हर तरह की फैशन-परस्ती से अलग रहकर निजता को ही महत्त्व दिया है। राही का सम्पूर्ण गीति-साहित्य नितान्त उनका होते हुए भी असम्बोधित नही है। ये सम्बोधित है उनके प्रति जो गीत के नए जन्म को आशा और उत्साह के साथ खदे रहे हैं।

कहना न होगा कि समस्त रूढियो को तोडते हुए भी राही के गीत लय और रागमयता से जुड़े हुए हैं।

५. रामावतार त्यागी

प्रयोगवादी धारा के पश्चात् हिन्दी गीतिधारा मे गीतकारो का जो वर्ग साहित्यिक मच पर उभर कर सामने आया उनमे रामावतार त्यागी का स्वर अन्य कवियो से सर्वथा भिन्न सुनायी पडता है। गीति-क्षेत्र की जिस परम्परा को आगे बढाने का सकल्प लेकर त्यागी जी चले उसम वे निस्सन्देह सफल हुए हैं। वे नयी अनुभूति के समृद्ध गीत-कवि हैं। उन्होंने जीवन मे सौन्दर्य और विकृति दोनो को महत्त्व दिया है। उनके गीता मे चित्रात्मकता है। उन्होने समार की पीडा, तिरस्कार और घृणा को सवेदना की भूमि में अनुभूत किया है। उन्ह अपने अह पर आस्था है। उनके कतिपय गीत गाये जाने के लिए हैं और कुछ पढ़े जाने के लिए। जीवन का भोगा हुआ सन्दर्भ त्यागी की रचनाओ मे निरलकृत रूप से प्रकट है। त्यागी का व्यक्ति और त्यागी का कवि एक-दूसरे के साथ इस प्रकार घुले-मिले है कि उनमे किसी को भी अपेक्षा कर दूसरे को जाना ही नही जा सकता चूकि त्यागी ने जो कुछ देखा, जिया, सहा, झेला और भोगा है, मात्र उसी को वाणी दी है। 'न उसकी अनुभूति 'उधार' की है न अभिव्यक्ति, न उसने अपने आपको 'आधुनिक' सिद्ध करने के लिए झूठी भाषा का प्रयोग किया है न स्वय को 'बडा' कवि मनवाने के लिए ऐसी कविताए लिखी हैं जो पाठक तो दूर स्वय कवि की भी समझ मे नही आती।'[२०५]

इन्होंने नारो और प्रचार के बल पर स्वयं को प्रतिस्थापित करने का प्रयास कभी नही किया। उनके गीत किसी व्यक्ति-विशेष का रुदन-हास न होकर पूरे मध्य-वित्त समाज की स्थिति को बिम्बित कर अपनी अलग दृष्टि रेखांकित करते हैं। उसकी चेतना स्वाभिमान की आंच मे तपकर कुन्दन बन निखरी है इसीलिए वह व्यक्ति तो क्या, समूचे राष्ट्र की भर्त्सना निर्भीक होकर करता है। जब उसकी आंखें देश मे काम के स्थान पर प्रदर्शन, जुलूस, और नारो से प्रभावित अपग आस्था को देखती हैं, उसकी विश्वस्त चेतना कराह उठती है।[२०७]

स्वाभिमान

त्यागी जी के गीतो मे उनकी प्राण-चेतना समाई हुई है, उनका व्यक्तित्व[२०८] गीतो की पक्तियो मे इस प्रकार रच-बस गया है कि उनके गीत उनके व्यक्तित्व को उभार कर उनकी प्राणवानता सिद्ध करते हैं। उनके व्यक्तित्व के मूल गुण स्वाभिमान तथा स्वच्छन्दता अनेकाधिक गीतो मे प्रमुख स्वर के रूप मे तीव्रता से व्यजित हुई है। कलाकार के गौरवमय अह की स्पष्ट अभिव्यक्ति त्यागी के गीतो की अतिरिक्त विशेषता है।[२०९]

कवि मे स्वाभिमान की गति अदम्य है। इस अनुपम शक्ति के बल पर वह किसी के आग अपने अधिकारों की भिक्षा नही मागता, उसे अपनी आत्मिक शक्ति पर सुदृढ आस्था है। आपदाओं और कष्टो के अथाह समुद्र मे अपनी जीवन-नौका के डूब जाने अथवा डावाडोल होने की उसे लेशमात्र भी चिन्ता नही है,[२१०] चाहे कितने ही प्रभजन परीक्षा कर देख लें, वह तो अपने आत्म विश्वास से दीपित स्वाभिमान की डोर थामे हैं। इसलिए उसे किसी की दान-दक्षिणा अथवा अनुकम्पा की[२११] किसी भी स्थिति मे आवश्यकता नही है।

यदि माझी मे तूफानो से टकराने का आत्मविश्वास से परिपूरित साहस है तब सहस्रो प्रभजन भी उसका कुछ नही कर सकते। स्वाभिमान की विपुलता के कारण कदाचित् कवि के स्वभाव मे अक्खडपन उत्पन्न हो गया है। वह किसी भी स्थिति के अनुकूल अपने स्वाभिमान को न तो झुकाना जानता है और न ही किसी प्रकार के समझौते का पक्षधर है। जबकि वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था उसे ऐसा करने को बाध्य करती है, परिणामस्वरूप कवि जो मान-सम्मान पाने की आकाक्षा मन में सजोता है वह उसे प्राप्त नही होता। मान-सम्मान न प्राप्त कर पाने के कारण कवि-मन विद्रोह करता है और उसके गीत शिकायत के स्वर मे परिवर्तित होकर परिवार, समाज यहा तक कि शासन-तन्त्र के प्रति[२१२] भी मुखर और प्रखर हो उठते हैं।

स्वाभिमान तथा शिकायत म टकराव की स्थिति उत्पन्न होने पर नया सघर्ष प्रारम्भ होता है जो कवि हृदय भूमि पर क्रान्ति के बीज रोपित कर उसके

चिन्तन को परिवर्तन की ओर उन्मुख करता है, परिणाम होता है जड शासन-तन्त्र के विरुद्ध विद्रोह। कवि इस तथ्य का निर्भ्रान्त शब्दो मे उद्घोष करता है। जड और अनुपयोगी व्यवस्था मे परिवर्तन जीवन का अनिवार्य-धर्म[213] होने के कारण अवश्यम्भावी हैं।

बलिदान

क्रान्ति-समर्थको को सिद्धि सरलता से नही प्राप्त होती, उसे प्राप्त करने के लिए न जाने आपदाओ, कष्टो के कितने दुर्गम पर्वत लाघ अनेक उत्सर्ग करने पडते हैं, कवि ऐसे ही लोगो का चारण है जो काटो से भरे हुए पथ पर चल अपने चरणो को रक्त से लथ-पथ कर बलिदान करना जानते हैं।[214] विवश स्थितियो के वात्यचक्र म उलझकर उत्सर्ग करना बलिदान नही है, समर्पण मे तो एक तीव्र ललक हर्ष की निराली चमक है।[215] वन्दना, अर्चना भी ऐसे ही मुस्करा कर अस्तित्व निर्मूल करने वालो की होती है जिनका अर्थ और इति खुशी-खुशी बलिदान होने की भावना मे समाहित हैं जिन्हे त्याग कर किसी फल प्राप्ति[216] की अपेक्षा नही होती।

स्वातन्त्र्य एव जिजीविषा

अन्तत बलिदान की परिणति स्वातन्त्र्य एव जिजीविषा मे त्राण पाती है। जिस व्यक्ति मे हसते मुस्कराते हुए अधिकार त्यागने की सामर्थ्य है, अपने अधिकारो को रक्षित करने के लिए सघर्ष के वज्र-वक्ष मे छिद्र करने का साहस भी वही रखता है। स्वातन्त्र्य मनुष्य का जन्मसिद्ध सर्वप्रथम अधिकार[217] है, त्यागी जी इससे एक क्षण के लिए भी विमुख नही हैं चूकि उनके लिए स्वतन्त्रता आत्यान्तिक महत्त्व[218] की वस्तु है।

जीवन का अदम्य वेग,[219] जोखमो, विपत्तियो से टकराने की अद्भुत क्षमता कवि मे विद्यमान है। जीवन के प्रति उसका जीवन-दर्शन स्वस्थ है, इसीलिए वह सम्पूर्ण आस्था से दु खो एव सुखो का समान रूप से आलिंगन करता है। जिजीविषा के इसी रूप ने जीवन-भर विकट सघर्षो के समक्ष कवि को कही झुकने अथवा समझौता करने नही दिया।[220] इसीलिए उसे अपनी जिजीविषा पर दृढ विश्वास है, जिस उद्देश्य प्राप्ति के लिए वह जीवन-सग्राम मे निहत्था होकर भी अपने पौरुष[221] का परिचय दे रहा है, उसका श्रेय उसे लक्षित उपलब्धि, सिद्धि[222] तक स्वय ही ले जाएगा। जीवन-सग्राम के विकट सघर्षो से जूझते कवि के दृग-युगल मे कभी-कभी अश्रुकण झिलमिलाने लगते हैं लेकिन हर अश्रुकण कायरता को खोज नही होता वरन् यहा तो कवि के आत्म-विश्वास को सवारती मुस्कान[223] दृष्टिगत है। इसका कारण है वह तडप, जलन से उद्दीप्त तपन, व्यथा जो कवि

ने इच्छानसार[२२१] स्वय अगीकार की है। अनील का पुत्र[२२८] कवि तापसी अगारे का तन बनने की इच्छा से उसे सार्थक की सायास चेष्टा मे निरन्तर सलग्न रहता है।

इन प्रवृत्तियो ने कवि मे एक स्वस्थ प्रवृत्ति मार्गी आस्थापूर्ण प्रबल दृष्टिकोण को जन्म दिया है जो भावात्मक अवधारणाओ पर अवलम्बित[२२३] होने के कारण ऋणात्मक मन स्थिति का घोर विरोध करता है।[२२३]

वेदना का गायक

त्यागी के गीतो मे वेदना का स्वर सर्वाधिक तीव्र है। वैयक्तिक अथवा सामाजिक दोनो ही स्तरो पर उनके गीतो के मूल मे वेदना का साम्राज्य है। वैयक्तिक-वेदना मे यदि प्रेम से उत्पन्न नैराश्य का स्वर मुखर है तो सामाजिक वेदना मे आर्थिक एव राजनीतिक कटुताओ से उत्पन्न वैषम्य की अनुभवजन्य तपन विद्यमान है। इन सबकी अनुभूति का मुख्य कारण उनका प्रखर स्वाभिमान तथा स्वातन्त्र्य-भावना से उत्पन्न वह आत्मिक गौरवपूर्ण शक्ति रही है जिसके बल पर वे कभी किसी शक्ति के समक्ष नहीं टूटे, नहीं बिके।

कवि की वेदना अन्य गीतकारो की वेदना से पृथक् है, उनकी पीडा मे रुदन का लेश नही।[२२५] न ही उनकी तडप मे नैराश्यान्धकार तथा अनास्था का भारी बोझ है जिसे उठाने मे कवि असमर्थ हो—कारण, पीडा उसकी विवशता नही है, उसने वेदना का सहर्ष स्वय आलिगन किया है।[२२६] उसकी आस्था की दृढ़ सीमाओ का सकुचन यही नही होता बल्कि कालिमा के गहनतम जलधि मे भी वह उसके अस्तित्व को निमज्जित न होने तथा पराजित न होने के आस्थामय स्वर की ध्वनियों को सगीतबद्ध करते हुए कवि-व्यक्तित्व की दृढता को प्रकट करती है।

बुद्धि की अपेक्षा कवि सच्ची भावनाओ को अधिक महत्व देता है।[२३०] प्यार की सच्ची भावना ही मानवता का जयघोष है। ज्ञान के आलोकमय क्षेत्र मे भावना का स्थान नही होता। ज्ञान चाहे भावना को पराजित करने के लिए लाखो-करोडो बोलिया लगा ले लेकिन अर्चा के सच्चे भाव-सुमन कभी नही बिकते। त्यागी जी बुद्धि-चकोरि पर विश्वास न करने की चेतना व्यक्ति को देना चाहते हैं जहा सौ-सौ जन्म मुस्करा कर भी मानव फूल सी निश्छल मादकता से खिलखिलाकर नहीं हस पाया। इसीलिए कवि भावनाओ का कट्टर समर्थक है। बुद्धि तो *जीवन मे व्यथा*-पीडा के समुद्र से त्राण प्राप्त करने का सतु है जिसका जब चाहे व्यक्ति निर्माण कर अपनी आत्मा तथा सम्मान-रत्न को विक्रय कर जीवन की सम्पूर्ण वैभव-निधि का क्रय[२३१] कर सकता है। स्वाभिमान को सुरक्षित कर त्यागी ने हर स्थान पर हर क्षण भावनाओ को रक्षित किया है जिसके साथ वेदना का घनिष्ठ सम्बन्ध है और कवि इसे ही अनमोल पारस मणि[२३२] स्वीकारता है। इस पारस-मणि के मूल्य पर

वे अपना सब कुछ बलिदान कर देने के पक्ष मे है। इसीलिए वे गगाजल से भरे कचन कलश को दूर कर आखो से अश्रु पीने मे ही अपनी सार्थकता अनुभव करते हैं। उनके अनुसार दर्द[233] ऐसी सम्पदा है जो मानव-मानव के मध्य सद्भावो का निर्माण कर उसे मानवता से जोडती है। एक पागल भी उसे खोने को तैयार नही होता फिर कवि ने तो सहर्ष उसे अपने गले का हार बनाया है। अश्रुओ की इस अमूल्य पारसमणि को प्राप्त कर कवि सिंहासन और मदिर के आसन को भी तुच्छ बताकर उसी के चरणो मे मरने की विकट अभिलाषा प्रकट करता है जिसने उसे अश्रुकणो का मीठा यह उपहार दिया है। इसीलिए वे उस दाता के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।[234]

मानवीय गन्ध की प्यास

त्यागी के गीतो मे मानवीय गध की प्यास तीव्र है। असयम, दुर्बलता तथा चाचल्य को मानव-स्वभाव के अग मानकर कवि उनसे उत्पन्न पापो को क्षम्य समझता है।[235] यौवन तो वह स्वर्णिम अवस्था है जब भावनाओ का उत्ताल-ज्वार सयम की रज्जुओ के टुकडे-टुकडे बिखेर देता है।[236] ऐसे आवेशजनित यौवन को क्या दोष दिया जाए, ऐसे क्षणो मे कवि प्रायश्चित-स्वरूप भूलो पर यवनिका गिराने के प्रयास मे क्षमा की झालरें सवारता है।[237] जीवन-यौवन के ऐसे ही दुर्बल क्षणो मे प्रेम की सुषुप्त मादक अनुभूति अकुर बनकर फूट पडती है और कवि को दे जाती है एक मधुर टीस-युक्त वेदना जिसका अभिलाषी कवि सदा से रहा है। प्रेम के इस विषम एकागी रूप मे कवि भावनाए व्यथा, पीडा से तडपी हैं, यहा तक कि वह प्रेम को वेदना का पर्याय मानकर स्वीकार कर लेता है।[238] लेकिन प्रेम को वेदना का पर्याय मान लेने से ऐसा प्रतीत नही होता कि कवि ने इस प्रेम को पूर्ण एक-निष्ठता के साथ अगीकार किया है बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि कवि अपनी किसी पुरानी आदत के कारण स्वय ही पीडा को अगीकृत करते हुए बारम्बार दुहराने का आदी है, अन्यथा 'प्रेम' एव 'मन-बहलाना भी कवि के लिए सौ-सौ सौगन्ध उठाने के समान पर्याप्त हैं ?[239]

आर्थिक एव सामाजिक स्थितियो से उत्पन्न वेदना भी कवि को अभीष्ट है। समाज मे आर्थिक व्यवस्था की दारुण चक्की कुछ इस तरह चलती है कि कलाकार की सम्पूर्ण महत्त्वाकाक्षाए ही नही कोमल भावनायें भी निर्ममता से दो पाटो के मध्य कुचली जाती हैं। जीवन की रगीनियो मे छुपी विद्रूपताओ को त्यागी ने अपने सद्य प्रकाशित गीत सग्रह 'गाता हुआ दर्द' मे बडी खूबसूरती से पेश किया है। रूढ़िवादी मानसिकता[240] की सीवन उधेडते हुए त्यागी वर्तमान सामाजिक, राजनैतिक मठाधीशो को बख्शते नही हैं अपितु बडे नफीस तरीके से उन पर व्यग्य करते हैं।[241] समाज को यथार्थवादी तस्वीर[242] खीचते हुए

त्यागी यन्त्रचालित व्यवस्था के अनुचित कृत्यो का विरोध करते हैं। भावना-जल निरन्तर मृगतृष्णा की भाति कवि-दृग-युगल के सामने आकर भी उद्विग्न प्यासा रहता है।[२५३] समाज की सबसे बडी त्रासदी तो यही है कि ऐश्वर्य के लोभ-लालच मे अनेक अकरणीय कृत्य भी स्वच्छन्दता से होते हैं।[२५४] इस यन्त्रचालित व्यवस्था के अनौचित्यपूर्ण कृत्या का कवि प्रबल विरोधी है इसीलिए दुनिया के मदिर मे उसकी अर्चना व्यर्थ है[२५५] चूकि तथाकथित मठाधीशो के हाथो कवि ने अपनी आत्मा का सौदा करने से इनकार कर दिया । आर्थिक जर्जरता से ग्रसित कवि-कला उसे पूर्ण शरीर ढकन के लिए कफन दिलाने मे भी असमर्थ है।[२५६] जीवन और जीवन-स्वातन्त्र्य के लिए निर्धनता सबसे घोर अभिशाप है और प्रतिभा इसी अभिशप्त निर्धनता की बेटी हो गई है।[२५७] इसके पश्चात् भी कवि ने अपनी प्रबल आस्था तथा आत्मिक विश्वास के बल पर उसका वरण किया है क्याकि कठिनाइयो से जूझने, तूफाना से क्रीडा करने मे कवि को मजा आता है। तूफानो, सघर्षों के वज्र पाता म कवि बेडिया पहनाने का अटल सकल्प लेकर जीवन-सग्राम मे अपने कवि-धर्म को निर्भीक होकर निर्भ्रान्त शब्दो म अभिव्यक्त करता है।[२५८] चाहे उसे सम्पूर्ण उमर सूनी काल-कोठरी मे व्यतीत करनी पडे किन्तु वह जीवन-भर कारावास की कठोर यानना भोगने हुए भी स्वर्ण के हाथो अपनी लेखनी और गीतो को विक्रय करने को उद्यत नही है।

शिल्प दृष्टि

प्रभावशाली और सक्षम अभिव्यक्ति के कारण आधुनिक गीतकारो मे त्यागी का स्थान महत्त्वपूर्ण है। अन्य गीतकारो की भाति ही प्रणय की विभिन्न स्थितियो का चित्रण कवि न किया है लेकिन इनकी प्रणयाभिव्यक्ति मे मार्मिकता और विदग्धता के साथ-साथ इतनी जीवन्तता है कि वे सहज ही वाचक के हृदय पर सीधा और तीव्र प्रभाव कर मन की तन्त्रियो को हौले-से झकृत कर देती है। अपनी बात को नए ढग से व्यजित कर उक्ति को अधिक आकर्षक और व्यापक अर्थवत्ता प्रदान करने का गुण[२५९] उनके गीनो की निजी विशेषता है।

त्यागी जी को एकदम दोषमुक्त ठहराना उचित नही है। "छन्द गीतो की व्यवस्था मात्र हैं, बधन नही है, मानने वाले त्यागी का सबसे बडा दोष यही है कि वह आज भी छद को उसी प्रकार अपने सीने से चिपकाए हुए है जिस प्रकार एक बदरिया अपने मरे हुए बच्चे को। यही स्थिति [उनके उपमानो की भो है।"[२६०] हालांकि वह दूसरा को सम्बोधित करता हुआ उनके उपमानो पर अविश्वास की खुली घोषणा करता है और इधर स्वय कवि गिनती के कुछ उपमानो का आश्रय लेकर आज की बात कहने का प्रयास करता है जो कभी-कभी घिसे पिटे उपमाना के प्रयोग के कारण फुसफुसा कर रह जाती है। ऐसे उपमानो

चा चयन और प्रयोग पाठक के मन पर किसी प्रकार के नवीन प्रभाव को न डाल-कर उनके गीतो की सामान्य प्रवृत्ति की ओर इंगित करता है। ठीक इसी के समानान्तर उनके गीत की स्थिति है-जो आग्रह को छोड़ कर कभी-कभी दुराग्रह की सीमा को लाघ जाती है और उसकी गति-क्षमता पर प्रश्न चिन्ह लगाते हुए गीतो के प्रति अरुचि-भाव उत्पन्न करने मे सहायक बन जाती है।

गीता के दर्पण को[२४२] छोटा स्वीकार कर जीवन के आकार को वडा मानने वाले त्यागी जब नयी कविता की मृत्यु की उद्घोषणा कर गीत को विद्यापति का पुत्र कहकर उसकी दुन्दुभि बजाते हैं तब उनकी यह उद्घोषणा भी उतनी ही बेमानी लगती है। जितनी कि गीत की मृत्यु की उद्घोषणा करने वाले छिछली राजनीति से प्रेरित तथाकथित बुद्धिजीवियो का कथन। लेकिन सन्तोष इसी बात का है कि कवि को इस स्थिति का आभास है। हमारा यह विश्वास है कि यह अहसास त्यागी जी को एक दिन गीत की रूढ़िया तोडने के लिए विवश करेगा।

अप्रस्तुत विधान--

त्यागी जी के गीतो का अप्रस्तुत विधान भी पर्याप्त सक्षम एवं आकर्षक है। परम्परागत उपमानो को स्वीकार करते हुए भी उन्होने स्वनिर्मित नवीन उपमानो का सफल प्रयोग किया है। नूतन उपमानो से सज्जित अनेक मौलिक प्रयोग उनके गीतो मे सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं। उनके उपमानो का विभाजन हम चार वर्गों म कर सकते हैं—परम्परागत उपमान, नवीन उपमान, ऐतिहासिक-पौराणिक उपमान तथा वीभत्स उपमान।

परम्परागत उपमानो मे प्राय रूढ़िगत काव्यात्मक उपमानो चन्दा, चकोरी, पपीहे आदि को ही कवि ने मान्यता दी है।[२४३] नवीन उपमानो के सुन्दर चयन के लिए कही कवि प्रकृति-खोजी[२४४] हुआ है तो कही जीवन[२४५] के क्षेत्र को अपनाया गया है। वैज्ञानिक सुखोपलब्धियो से प्रसित बौद्धिकता-प्रधान युग की नागर सभ्यता के प्रभाव-स्वरूप कवि ने मेघो मे भी पूंजीपतियो की-सी कृपणता को देखा है।[२४६] अन्य आधुनिक गीतकारो की भाति पौराणिक-ऐतिहासिक उपमानो का बाहुल्य[२४७] भी त्यागी जी के गीतो मे देखा जा सकता है। अनेक वीभत्स उपमानो का प्रयोग कवि ने उर्दू अभिव्यजना के प्रभाववश[२४८] स्वीकार किया है।

भाषा

त्यागी जी के गीतो की सफलता और लोकप्रियता का सबसे बडा कारण उनकी सहज-सरल भाषा है। उत्तर-छायावादी काल मे अभिव्यक्ति की सफाई को भाषा का सर्वमान्य गुण स्वीकार किया गया है, त्यागी जी के गीत इसके साक्षात् प्रमाण हैं। भाषा मे बोल चाल के शब्दो का आधिक्य, परिष्कृत खडी-बोली का चलता

हुआ मृदुल एव सगीतमय रूप उनके गीतो की सहज उपलब्धि है। कथन की वक्रता उनके गीतों के प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार कर उन्हे नई भाव-क्षमता प्रदान करती है। भाषा मे कही-कही उर्दू प्रभाव[48] के साथ-साथ सामान्य जीवन मे प्रचलित लोकोक्तियो का प्रयोग भी[50] कवि-भाषा की अन्य विशेषता है। अन्य समकालीन गीतकारो की भाति कवि भी व्याकरण-सम्बन्धी अशुद्धियो[51] से बच निकलने मे असफल रहा है।

गीतों का रूपाकार - सगीतात्मकता

भावाभिव्यक्ति के लिए गीत-विधा चुन कर त्यागी ने उसे पर्याप्त समृद्ध किया है। सक्षिप्तता और गेयता उनके प्राय सभी गीतों का विशेष अर्जित गुण है। उनके गीत की प्रथम दो पक्तियो मे उनकी मुख्य भावाभिव्यजना निहित रहती है फिर उसके पश्चात् चार पक्तियो का एक पद और फिर वैसी ही दो पक्तिया उनकी भावाभिव्यक्ति के अनुकूल वातावरण को निर्मित करती हैं। इस प्रकार के विधान के कारण उनके गीतो मे टेक की आवृत्ति न होकर भिन्न-भिन्न शब्दो द्वारा मुख्य भाव की आवृत्ति ही होती है। उनके श्रेष्ठ गीत-सकलन 'आठवा-स्वर' के अनेक गीत 'मन को तो मैं समझा लूगा,' 'सागर से यह बात करूगा,' 'मन की उजली किरणो मे बाध मुझे,' 'सबसे अधिक तुम्ही रोओगे' आदि—गीत-शैली के प्रमाणस्वरूप उद्धृत किए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त सूत्रात्मकता भी इनके गीतो की निजी विशेषता है जो एक निराली रग-छटा बिखेरते हुए कवि की भावाभिव्यक्ति को समर्थ फलकाधार प्रदान करती है।

मूल्याकन

रामावतार त्यागी प्रमुखत सघर्ष और शक्ति के कवि हैं। प्रणय-रोमास उनके कृतित्व का गौण स्वर है। उन्होने हर नए चिन्तन और भाव को गीतिमय माध्यम से अभिव्यक्त कर गीत-क्षमता के साथ-साथ अपनी प्रातिभ शक्ति-चेतना को स्पष्ट रूप मे घोषित किया है। भाव धरातल पर उनकी सक्षम लेखनी ने वेदना एव प्रणय के विभिन्न स्वरो को वाणी दी है। अभिव्यक्ति के सहज सौन्दर्य ने उनके गीतों को पर्याप्त आकर्षण प्रदान किया है। अपने सघर्षमय जीवन तथा स्वस्थ जीवन-दर्शन पर आधारित जिजीविषा के बल पर उन्होने नवगीतकारो मे अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। उनकी रचनाए पीडा, टीस और प्रेम की भगिमा के साथ आक्रोश की तीव्र पावक को आत्मसात् किए हैं।

'गुलाब और बबूल वन' (सन् १९७३) और 'गाता हुआ दर्द' (सन् १९८४) मे आकर त्यागी के तेवर का बाकापन पहले की तरह ही कायम है। वक्त गुजरने के साथ जिन्दगी ने उसे तराशा जरूर है मगर इतना ही नही कि उसका सारा

खुरदरापन घिस गया हो। समझौतो की दुनिया मे रहने के बावजूद आज भी उसमे चुनौती उसी तरह जीवित है[२१२] जिस तरह एक मुद्दत से शहर मे रहने के बावजूद आज भी उसमे 'गाव' जीवित है। शहरी वातावरण और सुविधायें उसे इतना 'सभ्य' कभी नही बना पायी कि भीड मे उसकी सूरत अलग से पहचानी ही न जा सके। आज भी उसके चेहरे पर विद्रोह और अस्वीकार की चमक ज्यो की-त्यो बनी हुई है। आज भी वह यह कहने का साहस रखता है—"गीत नही आग लिखूगा।"

त्यागी की बदनसीबी यह है कि दर्द[२१३] उसके साथ लगा रहा है, उसकी खुशनसीबी यह है कि दर्द को गीत बनाने की कला मे वह माहिर है। गीत को जितनी निष्ठा से उसने लिया है, वह स्वय मे एक मिसाल है। आधुनिक गीत-साहित्य का इतिहास उसके गीतो की विस्तारपूर्वक चर्चा किए बिना लिखा ही नही जा सकता। गीत के प्रति समर्पित व्यक्तित्व रामावतार त्यागी का अब यही स्वप्न है कि उसके द्वारा किसी बडी और महत्त्वपूर्ण रचना का सृजन हो। महल का कगूरा तो हर व्यक्ति बनना चाहता है लेकिन त्यागी को सतोष है कि देहाती नीव[२१४] पर गीत की ईंट उन्होने रखी थी और अब उस पर सुन्दर ताजमहल खडा हो चुका है।

६. श्रीपाल सिंह 'क्षेम'

उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल जौनपुर जनपद के अन्तर्वर्ती ग्राम मे जन्मे श्रीपालसिंह क्षेम (दो सितम्बर, सन् १९२२), जीविका से प्राध्यापक एव उपजीविका से कवयन, आलोचन एव लेखन का कार्य कर रहे हैं। धर्मवीर भारती, विजय देव नारायण साही, डा० जगदीश गुप्त, डा० रघुवश, रमानाथ अवस्थी आदि का सहभाव उन्हे मिलता रहा है क्योकि वे भी प्रारम्भ मे 'परिमल' के सदस्य थे। परिमलवादियो की ही तरह उनकी प्रारम्भिक रचनाए छायावादी रोमानी उमस बनाम प्रेम और शृगार के अधिक नजदीक ठहरती हैं और अपनी समृद्ध विरासत मे कवि-व्यक्तित्व पर डा० रसाल, डा० रामकुमार वर्मा तथा बच्चन आदि के रोमानी प्रभाव भी दृष्टिगत होते हैं लेकिन इनकी कविता-यात्रा नैरन्तर्य की हामी है फलत उनके लिए यह सब पडाव थे और आज अपने २५-३० वर्ष की सृजन-साधना मे श्रीपालसिंह 'क्षेम' नवगीत तक की यात्रा तय कर चुके हैं।

उपेक्षित गीतकार

'क्षेम' मूलत गीतकार हैं और इनकी रचना-धर्मिता छायावादोत्तर काल से शुरू होती है। वस्तुत इस कवि ने छायावाद के मानव-बोध को लेकर रचना शुरू

की ओर क्रमश रूप-सौन्दर्य, मिलन-विरह, आशा-निराशा, जुडने-टूटने, मानव-हृदय की उदात्त वृत्तियो को जगाने-झकझोरने, जीवन की थकन-टूटन और जय-पराजय मे आत्मविश्वासपरक रागबोध को उन्मिष्ट करने एव प्रकृति तथा परिवेश को ताल-सजल बनाने की अथक साधना मे इनकी गीत-यात्रा बढती गई है। यद्यपि इस गीतकार को विशिष्ट चिन्तन-दर्शन अथवा जीवनमार्गी महत्वपूर्ण दृष्टि का कवि नही कहा जा सकता लेकिन यह तय है कि यह स्थिर कवि नही है, इसमे जीवन को बूझने की रागात्मक ललक अवश्य है और न सही मानवता के प्रति एक आस्था पर उसमे आत्मविश्वास जगाने का सम्बल उनके गीतो मे है। इसे कस्बे-ग्राम म पढे एक उपेक्षित-से गीतकार की कम उपलब्धि नही कहा जा सकता।

काव्य-यात्रा

श्रीपाल सिंह क्षेम के पाच कविता-सग्रह प्रकाशित हुए हैं—'जीवन तरी,' 'नीलम, ज्योति और सघर्ष,' 'रूप तुम्हारा प्रीति हमारी,' 'राख और पाटल,' 'अन्तर्ज्वाला'। 'अन्तर्ज्वाला' (१९७५) यद्यपि कवि का अभी तक प्रकाशित अन्तिम कविता-सग्रह है लेकिन मूलत यह उनके प्रारम्भिक गीतो का सकलन है अत मानना चाहिए कि उनकी काव्य-यात्रा का मूल्याकन 'अन्तर्ज्वाला' से शुरू होकर 'राख और पाटल' तक आकर विराम लेता है। वैसे उनके और भी कविता-सग्रह प्रकाशित होने वाले है किन्तु फिलहाल इनके मूल्याकन के लिए इन्ही ग्रन्थो का आधार लेना समीचीन है।

प्रेम-रस से सराबोर आत्मानुभूति और स्वप्निल जगत् के इन्द्रधनुषी मधुर-मादक स्वप्नो मे डूबे युवक कवि की 'जीवन तरी' मे एक ओर छायावादी गीतो की सौन्दर्यात्मक आत्मा का नशीला आकर्षण है तो दूसरी ओर छायावादोत्तर सस्कारो के परिपार्श्व मे गावो की सौंधी मिट्टी की महक पूरी सघनता के साथ रची-बसी हुई है।

'क्षेम' ने प्रेम के उभय-पक्षो को समान तरलता और तल्लीनता के साथ उजागर किया है। यौवन का आवेगजनित भावोल्लास[२१५] और विरह-विमर्दित अनुभूतियो की नुकीली व्यथा-चुभन,[२१६] दोनों ही पक्षों के मर्मस्पर्शी हास्य-रुदन से जन्मे जल-शिशुओं का अस्तित्व कवि-व्यक्तित्व की भाव-प्रेषित क्षमता का परिचय देता है। सौन्दर्यजनित रूपाकर्षण के जितने भी चित्र-बिम्बो को कवि-हृदय-तूलिका ने मानवीय भावनाओं के प्रतीक रगो से रजित किया है उनमे 'क्षेम' की चित्रमत्ता का आकर्षण कवि के उन्मादमय यौवनावेश पर अकुश रखकर आवेग-शून्यता मे उसे स्थिर अथवा जड नही होने देता बल्कि उसकी स्वच्छ, सौन्दर्यमयी दृष्टि ने[२१७] सन्तुलन के बिन्दु पर केन्द्रित होकर अनेक भावभरी आकर्षक झाकियो के चित्रपट खोले हैं।

प्रकृति और प्रकृति में छिटके अनुपम सौन्दर्य का कवि-मन हर्षित होकर स्वागत करता है। कल्पना की रगीन शक्ति से सम्पन्न कवि-लेखनी द्वारा चित्रित प्रकृति-सौन्दर्य के ऐसे चित्रो मे छायावादी सस्कारो की रंग-छटा का अनोखा वैभव छिटका पडा है।[१८] किन्तु उत्तरार्ध के गीतो मे कवि ने प्रकृति-सौन्दर्य के जीवन्त बिम्बो को उतारते हुए नई लेखनी को माजा है जिसका प्रमाण उनका दूसरा काव्य-सग्रह—'नीलम, ज्योति और सघर्ष' है।

'नीलम, ज्योति और सघर्ष' मे कवि की भाव-धारा तीन विविध स्तरो को स्पर्श करते हुए सकलन को तीन खण्डो (नीलम-तरी, ज्योति-तरी और सघर्ष-तरी) मे विभाजित करती है। नीलम-खण्ड की रचनाए अधिकतर 'जीवन-तरी' की भावभूमि समेटे है। चूकि इस खण्ड के गीतो की रचना 'जीवन-तरी' के गीतो से पूर्व की गई थी इसीलिए इस खण्ड की गीतात्मक रचनाए किसी प्रकार के नवीन विकास की ओर इगित नही करती। कल्पना-वैभव की मीनाकारी को सहेजते हुए यहा प्रकृति कवि की भावनाओ को वहन किए हुए है।[१६] प्रणय की मीठी पर तीव्र पीर, 'सौन्दर्य का मदभरा रूपाकर्षण,' 'हर्ष-उल्लास' 'नैराश्यान्धकार' स आलिगनबद्ध पराजय की धूप-छाह सभी प्रकार के विविध भावो को अभिव्यक्ति देता हुआ कवि निरन्तर आगे-ही-आगे अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता चलता है। गीतो का गेय तत्व कही भी बाधित नही है वरन् यहा गीतो का अन्य आकर्षण बन कर आया है। 'ज्योति खण्ड' म आकर कवि जीवन के प्रति अधिक गम्भीर हो जाता है। कवि की प्रौढ लेखनी ने यहा जीवन के कटुतिक्त अनुभवो को सचित कर जीवन को समझने-परखने का प्रयास तो किया ही है समझाने का गम्भीर प्रयत्न भी देखा जा सकता है। प्रणय की आख मिचौनी, विरह और सम्मिलन-सुख के उन्मादक क्षणो का अनुभूति-रस इस चित्रफलक पर भी बिखरा है। 'सघर्ष-खण्ड' मे कवि चिन्तक का रूप धारण कर उपस्थित होता है[२०] पश्चात् इसके यही चिन्तक रूप ग्रामीणा प्रकृति का सुरीला गायक बन बैठता है। ग्राम्य प्रकृति को अपने भावो के लैन्स मे हू-बहू उतारने का कार्य यहा सफलता से क्षेम' की नई कलम ने किया है। कवि की सहज, स्वाभाविक भाषा की सरल शब्दावली वातावरण को घनीभूत कर उसी मे एकाकार होकर चित्रो को नूतन आकर्षण से बाधती है।[२१]

समासत 'जीवन-तरी' एव 'नीलम, ज्योति और सघर्ष' की रचनाए सन् ४४ से लेकर सन् ५८ तक का परिवेश समेटे हुए हैं। इन दोनो रचनाओ का आशय मूलत यही है कि गीत हो अथवा कविता इनका उद्देश्य केवल भावनाओ एव कल्पनाओं के उन्मेष का रूपायन नही है बल्कि इसके चलते जीवन के कर्म-सौन्दर्य और सघर्ष-पक्ष को रागात्मक लय मे उद्घाटित करना है। विशेषकर उनकी ये दृष्टि 'नीलम,'ज्योति और सघर्ष' नामक सग्रह मे खासतौर से स्पष्ट हुई है। यहा उनका ग्राम-मन जन-जीवन का सीमित प्रतिनिधित्व करने वाले कारखानो, कार्यालयो

और महानगरो के इतर सघर्ष की ओर न जाकर वृहत्तर जन-जीवन के प्रतिनिधि ग्रामीण जीवन-सघर्ष के श्रम-स्वेद की ओर आकृष्ट हुआ है। इस सग्रह के गीतो मे किसान, किसान की नारी, कृषक-कन्याओ, कृषि-कर्म, उनके स्वेद की साव रता मे खडी फसलो के भीतर कवि का मानव-शोधी गीतकार अपने सम्पूर्ण-रागबोध मे प्रतिबिम्बित होता नजर आता है। *'कौन आ रहा है'*, *'गाव आ रहा है'*, *'अधियारी रात गई-गई, झाक रही भोर है नई-नई'* आदि गीत इस सन्दर्भ मे द्रष्टव्य हैं। प्रस्तुत सग्रह के गीतो से उन्होने गीत-विधा को एक नई अगडाई देनी शुरू कर दी थी। गीत एक निरी रोमानी विधा है इस धारणा का उन्होंने न केवल विरोध किया अपितु रोमानी शब्दो को हटाकर उजियारी, मटियारी, अधियारी, माटी, सझवती, सझियारे, रतनारे जैसे देशज एव तद्भव शब्द-रूपो का प्रयोग करके उनको जन-जीवन की खराद पर चढा दिया और इस प्रकार उनमे मिट्टी-सी सोधी महक और जिन्दगी का खुरदुरापन रागबोध के मिठास में झलकता हुआ दिखाई देने लगा। कहना न होगा कि आज जब नवगीत मे इस प्रकार के शब्दो और सहज बिम्बो, प्रतीको का बोलबाला है वह सब 'क्षेम' के गीतो मे अपने प्रारम्भिक चरणो मे ही उभर कर सामने आ गया था और इसीलिए इस सग्रह के गीतो मे 'क्षेम' ने गीत की परम्परित परिभाषा को तोड़ने मे अपनी अपूर्व भूमिका प्रदान की और आगे के लिए यह बात विचार का विषय बन गई कि गीत केवल रागात्मक अनुभूति नही है बल्कि परिवेशगत तथ्य-सत्य और वस्तु-परक सामाजिकता की अभिव्यक्ति भी है।

'रूप तुम्हारा प्रीति हमारी' कवि का तीसरा गीति-सकलन है। इस सग्रह मे मानव और प्रकृति-सौन्दर्य, मानवी के प्रति मानव के रागोन्मेष एव जीवन की कोमल, सुकुमार और मृदुल वृत्तियो के जागरण, उत्प्रेरणा के सामाजिक, राज-नीतिक एव सास्कृतिक उद्‌बोधनो के गीत और गजल भी उभर कर आए हैं। उर्दू-बहर मे मुक्तक एव गजल को उन्होने एक खास अन्दाज मे ग्रहण किया है और वह है ऐसा क्षण जब उन्हे परिवेशगत किसी तीखी अनुभूति को चुभीले शब्दो मे अत्यत सक्षिप्तता के साथ व्यक्त करना होता है और इस तरह के प्रयास मे कवि की ये गजलें और रुबाइया काफी अच्छी बन पडी हैं।

'राख और पाटल' गीत-सग्रह कला और दृष्टि की परख मे अपेक्षाकृत अधिक पैना और गहरा है। इसमे अनुभूति और शिल्प दोनो ही स्तरो पर यद्यपि साहि-त्यिकता का दखल है लेकिन वह कोशगत न होकर जीवन के अधिक निकट है। इस सकलन के गीतों को समझने के लिए इसके तीन भाग करने होंगे—राख, पाटल और पखुरिया।

'राख' शोक-गीतो का प्रतीक नाम है जिसमें एक भाव-प्रवण मानव-हृदय मृत्यु के श्मशानी वातावरण मे चीखता हुआ मृत्यु से साक्षात्कार करता है। लेकिन यह मृत्यु-साक्षात्कार केवल मानसिक अथवा अस्तित्ववादी नहीं है बल्कि वास्त-

विक, यथार्थपरक एवं संघर्षमुख है अर्थात् ऐसे गीतों में मृत्यु मूल्य बनकर नहीं आई, बल्कि ध्वंस, विनाश और मानवीय सपनों के प्रवाह की अवांछनीय स्थिति बनकर आई है और इस तरह वह एक यथार्थ को प्रस्तुत करती हुई संघर्ष की एक नई कसमसाहट दे जाती है। 'पाटन'-अंश जीवन की गुलाबी उष्मा अर्थात् उनके सर्जनात्मक पक्ष का प्रतीक है और पखुड़िया राग-बोध से दीप्त मुक्तकों का सच-यन। इन पखुड़ियों में यद्यपि क्षण ही अधिक उभरा है लेकिन वह अस्तित्ववादियों की तरह न होकर *प्रासंगिक है। कुल-मिलाकर, इस गीतकार के अधिकतर गीत* छायावादोत्तर काल से विकसित होकर आज तक पल्लवित होते रहे हैं। विशेषकर सन् ५० के पश्चात् नये परिवेश के नवभाव-बोध में भी 'क्षेम' के गीतों का पूरा दखल है किन्तु एक बात अवश्य है कि इनके गीतों में महानगरीय जीवन का संघर्ष, विसंगति, सन्त्रास, सन्दर्भहीनता, अजनबीपन, कुण्ठा जैसे भाव देखने को नहीं मिलेंगे क्योंकि कवि का ख्याल है कि यह सब महज एक आयातित और आरोपित फत्तेबाजी है। कवि की दलील है कि 'कुछ महानगरों और उद्योग-सम्थान-नगरों को छोड़कर भारतीय जीवन और उसका सहज सांस्कृतिक मानसिक परिवेश अब भी उतना यन्त्रचालित और रुक्ष नहीं हुआ है जितना पाश्चात्य विज्ञान-उद्योगों अपने भीतर अनुभव कर उससे सन्त्रस्त हुआ है और न ही दो विश्व-युद्धों की ज्वालाओं से हमारे तन्तु झुलसे ही हैं।'[३३]

मानव . चेतन इकाई

प्रस्तुत कथन के सन्दर्भ में यह स्पष्ट है कि 'क्षेम' यन्त्रिवृत मानव की शुष्कता का विरोध करते हैं। उन्हें यह सब कुछ फैशन-सा लगता है। उनकी दृष्टि में मनुष्य मशीन कभी नहीं हो सकता। गीतात्मकता इसकी अविच्छेद्य विशेषता है। मानव-सत्ता के मूल में राग-बोध अनिवार्य है। गाना, रोना और हसना उसके मूल स्वभाव में है। आधार और विषय बदलने पर यद्यपि यह स्वभावगत विशेषताएं बदलती रह सकती हैं लेकिन यह मानना गलत होगा कि मानव की मूल रागात्मकता किसी दिन समाप्त हो जाएगी। मूलतः मनुष्य ने मशीनों को बनाया है अतः वही उनका चालक है, मशीन नहीं। वह एक चेतन-इकाई है, उसका अपना एक आत्मविश्वास है और नित्यप्रति परिवेशगत अनुभवों के आधार पर निर्माण का संकल्प उसका नियम है। फिर भला यह कैसे सम्भव हो सकता है कि मनुष्य रागबोध से कट जाए और गीतों का अस्तित्व ही समाप्त हो जाए। गीत अपनी आदिम सभ्यता में भी थे, अब भी हैं और आगे भी रहेंगे। किन्तु उनका रूप-स्वरूप अवश्य बदलता रहेगा और इस दृष्टि से गीत का विकास हो सकता है, ह्रास नहीं।

मानवीय मूल्यों मे आस्था

प्रस्तुत गीतकार ने प्रयोगधर्मी और नए कविया का हवाला देते हुए इस बात का भी खण्डन किया है कि कविता मे शब्द और भाषा की लय जरूरी नही है केवल अर्थ-लय ही अपेक्षित है। कवि का ख्याल है कि कविता मे लयात्मकता न भाषा के स्तर पर आती है और न ही अर्थ के स्तर पर अपितु यह पारस्परिक है, उन्हे विलग नही किया जा सकता। दोनो की सार्थकता ही अपने आप मे सम्पूर्ण कविता का बोध कराएगी। कवि का यह आशय काफी विवेकपूर्ण और गले के नीचे उतरने वाला है लेकिन जहा कवि यन्त्रिकृत सभ्यता से उत्पन्न सभी विकृतियो को टोटल नेगेटिव दृष्टि से परखना चाहता है वहा वह आत्यान्तिक सीमा से बोलता नजर आता है। यह नही भूलना चाहिए कि विज्ञान ने आज विश्व को बहुत नजदीक लाकर खडा कर दिया है और ऐसे मे कही भी कुछ हलचल होती है तो उसका असर सार्वदेशिक हो उठना स्वाभाविक है परन्तु फिर भी उनका यह जीवन-दर्शन रेखाकित करने योग्य है कि मशीनीकृत सभ्यता के रग जीवन के मूल्य कभी नही बन सकते, ये तो पडाव-भर है, सघर्ष की यात्राए है, जीवन का असली मूल्य तो मानवीय आस्था है और जहा यह टूटती है वहा उसे पुन जोडना विवेकशील कवि और गीतकार का न-केवल धर्म है अपितु अनिवार्यता है। महानगरबोध के सन्दर्भ मे भी कवि ने मानवीय मूल्यो की ग्राह्यता पर पूरा बल दिया है। 'घबराये दिवस और बौराई शाम,' 'एक पत्र मेरा भी ले जाना डाकिये,' 'छूट गई पुरवा के नाम'[३४] या 'रोप भरी आधिया बहे, बहे जहा, पाखुरी तुम्हे दुलार लू वहा'[३५] जैसे गीतो मे इसी मानवीय आस्था का उद्घोष है। इस प्रकार कवि ने परम्परित गीत की सीमित परिधि का तोडा है और गीत को केवल रूप, शृगार अथवा विरह-मिलन की स्थितियो की सकीर्ण परिधि से हटाकर उसे नई सभावनाए दी हैं लेकिन असीम सभावनाओ के साथ कवि की शर्त यह है कि वे गीत मर्मस्पर्शी, हृदय-बोधक, रागोद्दीप्त एव प्रामाणिक अनुभूति मे सम्पृक्त होने चाहिए। विषय-वैविध्य के नाम पर, लोक-धुना के नाम पर अथवा प्रयोग के लिए प्रयोग के नाम पर गीतो मे विविधता पैदा करना उनकी दृष्टि मे निरर्थक है। उनके विचार से प्रयोग को ही मौलिकता और सतर्कता का एक मात्र निकष मान बैठना गलत है। प्रयोग सहसा अथवा आकस्मिक कभी नही होते और न ही पिछले से एकदम टूट जाने मे होता है वरन् वह "क्रमिक, सार्थक और प्रयोजनीय" होता है।

कला आधुनिकता के प्रस्थापन को प्रतिबद्ध

स्पष्ट है कि कवि अपने गीतो मे क्रमगत सापेक्षता को महत्त्व देता है और इस प्रकार कलावाद का विरोध करता नजर आता है। वह मानता भी है कि कला

सदैव 'सोद्देश्य और सापेक्ष' होती है। वह जीवन को कलात्मक अभिव्यक्ति देती है। जो तथ्य दर्शन, ज्ञान अथवा राजनीतिक नारों से मानव-मस्तिष्क के भीतर नहीं उतर पाते उन्हें कला अपने कलात्मक सौंदर्य द्वारा सहज ही हृदय के रास्ते मस्तिष्क में उतार देती है और इस तरह उसे एक नई राह देती है। वह मूलत मानवीयता के निकट है और इस तरह मनुष्य-यात्रा को आगे बढ़ाने में ही उसकी सार्थकता है। जीवन सापेक्ष होने के कारण उसी से प्रेरित और प्रस्फुटित होती है। काल विक्रम और इतिहास विकास के साथ वह पुरानी रूढ़ियों का खण्डन करती हुई आधुनिकता के प्रस्थापन को प्रतिबद्ध है और इस तरह कलाकार इतिहास-ग्रस्त नहीं होता बल्कि इतिहास-द्रष्टा होता है। गीतकार के शब्दों में— मानव और

यदि साहित्य के नाम पर आक्रोश पीढ़ी, विरोध पीढ़ी, ध्वंस पीढ़ी या नकार पीढ़ी जैसे कालिक बटवारे किए जाएं तो यह नहीं हो सकता क्योंकि कलाकार कला के नाम पर न आक्रोश पेश करता है न विरोध, न ध्वंस और न ही नकार, वह तो नकार और स्वीकार एवं ध्वंस तथा रचना का एक साथ सूत्र संचालन करता चलता है।[३८] अत इस गीतकार का विवेक आगाह करता है कि इस प्रकार के झूठे आंदोलनों और नारों से बचना चाहिए। आधुनिकता के नाम पर इस प्रकार के नारे महज फ्राड अथवा अपने अस्तित्व विज्ञापन के सिक्के भर हैं। इन्हें आधुनिकता कभी नहीं कहा जा सकता। वस्तुत आधुनिकता तो कर्म में है और वह मानव धर्म की रक्षा है और जहां यह सम्पन्न होती है वहां आधुनिकता सहज ही कवि का वरण कर लेती है। इसीलिए कवि नयी कविता, अकविता या नवगीत में जहां इस मानव धर्मिता के अंश पाता है वहां उनका स्वागत करता है और जहां विसंगति, कुण्ठा, अमानवीयकरण, संत्रास, निरर्थकता, दहशत, ऊलजलूल को जीवन-दर्शन मानना आचरणहीनता को देखता है वहां वह इसका डटकर विरोध करता है।

शिल्प-दृष्टि

जहां 'क्षेम' के गीतों का संसार गतिशील है वहां उस का शिल्प भी विकास करता चलता है। यद्यपि उनके गीत सहज लोक धुनों की अपेक्षा अपनी साहित्यिकता के नाते ही अधिक जाने माने गए हैं लेकिन उनकी साहित्यिकता में भी लोक धुनों का प्रवेश है। इस गीतकार की ये विशेषता है कि वह कथ्य के अनुकूल धुन की चिन्ता करता है। धुन की नकल में कथ्य को नहीं बांधता। परिणामत उनके गीतों में फ़ैशनपरस्त लोकधुन भले ही न मिले किन्तु मानववादी आस्था के निकट

होने के कारण जन जीवन की राग-ध्वनिया अवश्य गूजती हुई नजर आती है। इस कथन की प्रामाणिकता मे यह जोड देना अप्रासगिक नही होगा कि मिट्टी की सोंधी महक के अनुकूल ही कवि के गीतो मे बिम्ब-चित्र और प्रतीक बदलते रहे हैं और इस तरह वे जन-जीवन की हवा के बहुत नजदीक आ गए हैं।

प्रतीक-बिम्ब

चूकि जौनपुर केवडा-चमेलियो का उपनगर रहा है इसलिए चम्पा, गुलाब, कुन्द, बेला, चमेली, गधा आदि की गध-चेतना कवि-हृदय मे वास करती है और कमल पाटल, जूही, कस्तूरी, कपूर, रातरानी के सुरभि-प्रतीक प्राय इनके गीतो मे रूप बदल-बदल कर आये हैं। श्रव्य-प्रतीको मे तार, बीन, जल तरग, विहाग, भैरवी, दीपक, राग आदि व्यवहृत हुए है। ज्योति (ज्ञान और उच्चतर बोध) के लिए किरण, प्रभा, आलोक, ऊषा, सध्या, सूर्य, चादनी चद तारक आदि प्रतीकायित हुए हैं। सास्कृतिक प्रतीको मे गगा, यमुना, हिमालय शिव, शक्ति, सीता, राधा, सरस्वती, मधुमती आदि कवि को सन्दर्भानुसार आकर्षक लगे हैं। काल्पनिक-सास्कृतिक प्रतीकों मे अप्सरा, उर्वशी, नन्दन वन, कल्प-वृक्ष, मन्दरा-कुसुम आदि आदर्श प्रतीकों के रूप में कवि ने ग्रहण किए है। नवगीतो मे गुलमोहर, अमलतास, महुवा दर्पण, अमराई, पगडी, सीमा लोहा, रजत स्वर्ण, गधक, बारूद अधड, लपट, चिंगारी, धुआ, मरुस्थल, प्यास, भूख आदि के प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं। नीलम, रेशम, शहनाई, पाटल, स्वर्णिमता के पर्याय बहु प्रयुक्त है। रगो में प्रथमत नील फिर अरुण और हरित रग कवि को प्रिय हैं। रगों का यह आकर्षण कवि को स्वर्णिम, गुलमुहरी, सुरमई, कपूरी मर्मरी, रगिम, धानी, कचूरी, सोपिया, शर्बती, पाटली-जैसे विशेषणो की ओर ले जाता है। तरलता और हल्के गाढे रगो और मात्राओ के भेद के लिए अग्निम, स्वप्निम, मधुरिम रिमझिम, ज्योतिम, ज्योतिमा, रगिमा, अग्निमा, स्वर्णिमा, दीपिमा, रूपम, स्वप्नम, गीतम, पूनम, रुपे, दीपे—आदि विशेषणो, सज्ञाओ एव प्रतीक-सम्बोधना की नवीन कल्पना कवि की मौलिक दृष्टि का चमत्कार है जिसे सस्कृत अथवा हिन्दी के परम्परित व्याकरण-नियमो से नही सिद्ध किया जा सकता और कवि की अन्तश्चेतना में यह ललक अधिक गहराती जाती है। ऊपर से देखने पर लगता है कि गीतकार शब्दो के नाद-सौन्दर्य पर ही रीझा हुआ है, अत इनमे केवल बहिसगीत का, स्थूल शब्द-सगीत का मोह ही व्यक्त हुआ है, लेकिन ऐसा नही है, कवि ने अपनी सूक्ष्म-दृष्टि का परिचय देते हुए अर्थ-भेद मात्रा-भेद, और प्रभावभेद के तारतम्य को रेखाकित किया है। अत इसमें केवल नाद-सगीत ही नहीं अर्थ-सगीत भी भासित हुआ है।

स्वप्न और नीद की मन स्थितिया भले ही किसी को पलायन लगे किन्तु कवि इन्हे मानवीय चेतना का एक सुखद और रजक आयाम मानता है। प्राय:

'सत्य' और 'स्वप्न' के प्रतीक आए हैं और सत्य प्रायः अवाछनीय विग्रह कटु यथार्थ या नियति का प्रतीक एवं स्वप्न अपने को ढूढने, आत्म-लभन और स्वस्थ मानवीयता मे विचरने का प्रतीक रहा है। कवि के लिए स्वप्न का अर्थ आत्म-सकुचन, यथार्थ से पलायन का शतुर्मुर्गी प्रयास नहीं है प्रत्युत् वह सत्य को खोजने, उपलब्ध करने, क्षुद्र स्वार्थी परिधियो से मुक्त होकर एकता, प्रेम और सौन्दर्य से जुडकर वृहत्तर सत्यो को ढूढने-पाने के प्रयास का द्योतक बन कर आया है। इस लोक की (पर-लोक-गत नहीं) पारस्परिक सौहार्द्रमयी सुखदता, रसमयता और आनन्दात्मक रमणीयता ही क्षेम के गीतकार का लक्ष्य रहा है। नारी और प्रकृति के सौन्दर्य तथा मानव-मानवी के सवादी सम्बन्ध स्वर कवि के गीतो मे प्राथमिकता के साथ मुखर हुए हैं। अभिधा से अधिक लक्षणा और व्यजना-शक्तियां तथा वर्णन से चित्रण की पद्धति कवि को अत्यधिक प्रिय है। विशेषण-भगिमा और सबोधनो की वक्रता से कवि ने वाक्य-विलम्बित अर्थ को एक शब्द मे समेटा है और कभी-कभी गीत पदो के पूर्ववर्ती अंश इन विशेषणो-सम्बोधनो पर आकर उजागर हो जाते हैं। गीतो मे व्यजकता, उदात्तता और चित्रात्मकता लाने के लिए कवि सदैव शिल्प सजग दिखाई पडता है। कवि के नवगीतो मे खडित बिम्ब भले आ गए हो, पर परम्परा-विकसित गीतो मे कवि बिम्ब की या चित्र की पूर्णता मे सानुपातिकता का हामी रहा है। क्षेम का कवि बिम्ब को यथातथ्य और चित्र को परिमार्जित मानकर चलता है। मूर्त्तता और अमूर्त्तता 'क्षेम' के लिए सापेक्ष है। कवि के लिए मूर्त्त की अमूर्त्तता भी उसी प्रकार चित्रात्मक और मूल्यात्मक है जिस प्रकार अमूर्त्त की मूर्त्तता। काव्य मे कवि उसी अमूर्त्तन का समर्थन करता है जो ऊपर से नकारात्मक या भावात्मक लगे, पर भीतर से विधेयात्मक या धनात्मक हो, अतएव कवि-काव्य मे कवि अमूर्त्तन भी मूर्त्तन का ही दूसरा रूप बनकर आता है। प्रतीक-चयन और शिल्प-विधान मे कवि आधुनिकवादी नही है। छायावाद, प्रगतिवाद, और नयी कविता—सभी की अभिव्यक्ति-भगिमाओ मे एक हिंदी-भाषा की अभिव्यजना का विकास रेखाकित करते हुए कवि उसे ग्राह्य मानता है।

छन्द

नि छन्दता बुद्धिजीवियो और उच्च मध्यवर्ग को भले ही सप्रेषित हो जाए, पर स्वच्छन्दता मानव-हृदय तक पहुचने का एक सहज, तरल और सुकर माध्यम है।, साहित्य यदि सह-भाव है तो हमे छन्दो के साथ भी सह-भाव और सह-अस्तित्व का रुख अपनाना होगा। छन्द-भक्ति भले ही सुकर न हो, पर छन्द-विरोध और लय-विरोध और लय वितृष्णा काव्य के लिए स्वस्थ लक्षण नही है। जीवन की लय बाहरी आघात से जितना ही टूटे-बिखरेगी, लय की प्यास उतनी ही तेज़ होगी

–कवि का विश्वास है कि टूटती लय को प्रयासत और प्रण-पूर्वक तोडना ठीक नही।
–परिवेश लय तोडे, हम कलाकार उसे लय देंगे, लय की नयी सभावनाओं के द्वार खटखटायेंगे। गाने की प्रवृत्ति स्वर भाविक है, अत क्षेम (कवि) ने जन-सम्प्रेषण के लिए हृदय-सवाद जोडने के हेतु ही गीत को माध्यम वनाया है।

कल्पना रचनात्मक-शक्ति

कल्पना गीत ही नही, काव्य-मात्र के लिए अनिवार्य साधन है। कविता और गीत का लक्ष्य स्वय कल्पना नही कल्पना के माध्यम से बिम्ब, चित्र, रूप और शिल्प पाकर लक्ष्य-भाव, राग-बोध और अनुभूति-सवेदना सम्प्रेषण अथवा जागरण है। काव्य-प्रक्रिया या गीत प्रक्रिया मे, कल्पना प्रतिभागत अनुभूति और उपलब्ध राग-बोध की सहगामिनी और उस अमूर्त्त की मूर्त्ति-विधायनी है। कवि-कल्पना को रचना-धर्मिता से अलग कोई वायवीय वस्तु या चमत्कृत करने वाली अतिरिक्त अथवा बहिर्गत सामग्री नही मानता। कल्पना काव्य के कलेवर और गीत की काया का सानुपातिक उपादान है। कविता मे (नयी कविता या अ-कविता मे भी) जो कुछ भी कृति-रूप है, वह कवि कल्पना द्वारा सृजित है। जिसे हम यथार्थ और वास्तविकता या प्रामाणिकता कहते हैं, वह भी कल्पना का ही चयन और निरूपण है। 'प्रति-भा' कल्पना विना प्रतिभासित नही हो सकती। कठोर वस्तु यथार्थ या भूत-सत्ता की स्थूल प्रत्यक्षता भी, कल्पना के विना तद्वाभास का रूप नही ले सकती। हा कल्पना का जो पक्ष प्रकल्पना, दिवा स्वप्न, विकल्पना या वायवीयता द्वारा सकेतित होता है, वह यदि निरुद्देश्य चमत्कार या आत्म-प्रवचना अथवा सहृदय प्रवचना के लिए है तो वह वितण्डा है। सही कल्पना-योग से सत्य, अनुभूति, राग-बोधक अथवा प्रामाणिक संवेदना भी अधिक प्रभावी, सतेज और उद्देश्य-साधक वन जाते हैं जो कच्ची सामग्री से निर्कल्प वमन से सभव नही है। 'कल्प' धातु से वनी 'कल्पना तत्वत रचनात्मक शक्ति है विलोपक अथवा निरुद्देश्य नही। कल्पना की अपेक्षा, सामग्री की स्थूलता-सूक्ष्मता, गहराई-छिछनेपन एव ऊर्ध्वता-निम्नता के साथ सापेक्ष है। इस सापेक्ष्य को भुलाकर कल्पना को अपना स्वयं का उद्देश्य मान लेना उसी प्रकार भ्रामक है जिस प्रकार अनुभूति और सवेदन की निष्कल्पना मे काव्याभिव्यक्ति मानना। 'नयी कविता,' 'प्रयोगवाद' या 'अ-कविता' के कवि परिवेश से बाहर जाने वाली कल्पना को दोष मानते हैं, पर कल्पना के योग को नकार कर भी अपने अमूर्त्तन, खण्डित-विम्बन और प्रतीकन मे छायावाद या परम्परा विकसित गीति-विधा से कम कल्पना का उपयोग नही करते। बल्कि कल्पना को नकारते हुए भी वे जाने-अनजाने या कहे-बिना कहे उसका कही-अधिक प्रयोग, उपयोग और दुरुपयोग भी करते देखे जाते हैं। 'क्षेम' अनगढ़ यथार्थ की गद्यात्मकता को विना रागात्मक बनाये, गीत मे प्रयोजनीय नही मानते, न

बौद्धिकता को उसकी रुक्षता मे ही प्रयुक्त करने के पक्षपाती हैं। काव्य निरा बुद्धि व्यापार नही, गीत तो और भी नही। 'क्षेम' की कल्पना यथार्थ पर टिकी हुई है चूकि वह किसी यथार्थ के सत्य को ही सम्प्रेपित करती है · कवि की कल्पना 'मिथ' है, क्योकि उसकी मिथकात्मकता स्वय मे उच्छिष्ट नही, वरन् किसी यथार्थ सत्य को अधिक सम्प्रेष्य सवेद्य बनाने के लिए व्यवहृत है और वह एक वायवीय ससार की सर्जिका भी है, क्योकि वह अभीष्ट मूल्य-बोध वर्तमान इतिहास प्रस्तता और रुग्ण-मनस्कता की कुरूपानुभूति की निविडता मे 'अप्राप्त' है, पर 'अ-प्राप्य' नही। 'वायवीयता' की अनुभूति भी व्यक्ति-सापेक्ष और जीवन-दृष्टि सापेक्ष है पर जो वायवीयता स्वय सृष्टा-रचनाकार के लिए आत्मरति और प्रवचनकारी 'मजा' मात्र है, वह गीत विरोधिनी और अरचनात्मिका है। कल्पना की सशक्त सर्जकता गीत की एक अनिवार्य शर्त्त है। कथ्य की गहनता, जटिलता और सघनता के लिए कल्पना का सोद्देश्य सहयोग छोडकर गीतकार मूक और अवाक् सिद्ध होगा।

मूल्याकन

उनकी लम्बी गीत यात्रा के विषय म हम इतना ही कह सकते हैं कि उनके गीतो की आत्मा रश्मियो के चन्दन-पालने मे झूलती, अठखेलिया करती शारदीया के गीतामृत का पानकर पोषित पल्लवित हुई है, परिणामस्वरूप जिन भाव स्वरो का स्फीत विस्तार उनके कण्ठ से नि सृत होने के पश्चात् हुआ उन अनुभूतिमय चरणो मे अभिव्यक्तिमय सूर्याभा की पायल-रश्मिया खनक रही है। रजनी के घन केश पाश मे जडे हुए गुलाब की पखुरियो का मन-भीना अरुण-वैभव उनके गीतो को श्री, सुरभि और मधु द्रव प्रदान कर गीत-वधू का सुहाग रचा रहा है। इसीलिए अनुभूतिगत नवीनता, सूक्ष्मता और गहनता प्रो० क्षेम के भाव-सिक्त गीतो को अन्य गीतकारो से पृथक् कर विशिष्टता प्रदान करती है।

कुल मिलाकर गीतो के राजकुमार[१३३] 'क्षेम' के गीतो का सौन्दर्य शास्त्र अपनी परम्परा मे गतिशील सौन्दर्य है। उनकी इस गति मे केवल चलना भर नही है बल्कि मानव मात्र के लिए मानव मे जोडने का निर्देश भी है। नवगीत के पुरोधाओ ने गीत के बाहर आकर अपनी इस दृष्टि को सुनाना चाहा है जबकि इस कवि ने अपने गीतो की राह से कान्तासम्मित उपदेश दिये हैं। उनके गीतो का भीतरी ससार परम्परागत रोमानियत, आत्म पीडा, विरह-सयोग और फिसलते हुए कामोद्दीप्त चित्रो तक सीमित नही रहा अपितु उन्होने गीतो मे सौन्दर्य को एक मौलिक परिभाषा दी है—कि जो सुन्दर है उसे सुन्दर रूप मे चित्रित कर देना कलाकार के लिए कोई बडप्पन की बात नही बल्कि ससार मे जो कुछ असुन्दर है (वह ज्यादा है) उसको सवेदना की आच मे तपकर इतने सुन्दर रूप मे

उपस्थित कर देना कि वह अपेक्षित लोगो की नजरो मे आ सके यही सुन्दर है और यही सुन्दरता की सही परिभाषा है। यदि ऐसा न होता तो व भी अधिकाश नवगीतकारो की तरह फैशनपरस्त लोकधुनों मे महानगरों की चरित्रहीनता के चटखारे लेते नजर आते, किसानं, किसान-कन्याओ एव ग्रामीण समस्याओ के साथ जूझते-टूटते नजर नही आते। असल मे कस्बे-प्रदेश मे विना गुट बनाए हुए श्रमिक साधना करन वाल इस कवि की साधना का पुनर्मूल्यांकन करना बहुत आवश्यक है। आज कहना पडता है, किन्तु आने वाला समय कहने, कहलाने की अपेक्षा नहीं करेगा, समय की छलनी सबको छानकर रख देगी और फिर तथाकथित हीरे-मोती धूल मे लोटते नजर आएगे और धूल में जन्मे विरवे आने वाली पीढी को न-कवल छाया देंगे वल्कि फल भी देते नजर आएगे और लगता है कि श्री 'क्षेम' का यदि आज उचित मूल्याकन नहीं होगा तो कल तो होना ही है और होगा ही।

७ डॉ० रवींद्र भ्रमर

प्रयोगशील नयी कविता के युग से नवगीत' की खोज करने वाने रवीन्द्र भ्रमर क नाम नवगीत आन्दोलन से जुडा है। वे नवगीत की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि क निर्माण कर्त्ताओ म से एक हैं।

गीतो की आत्मिक चेतना

'रवीन्द्र भ्रमर के गीत,' 'सोन महोरी मन बसी' नामक सग्रहो मे भ्रमर ने नवगीतो की आत्मिक चेतना मे वर्तमान स्थिति की सगति के तार अनुस्यूत किए है। उनके गीतो मे अनुभूति के साथ-साथ विचारो और समस्याओ को अभिव्यक्त करने की क्षमता वर्तमान है। शैली की नवीनता अनुभूति की ताजगी, सौन्दर्य और प्रीति के राग-तत्व से सराबोर भ्रमर के सग्रह रचनात्मक सार्थकता एव कवि की चेतना के सहज स्पन्दन हैं। परम्परा से जुडे रहकर भी गीतो मे वर्तमान आधुनिक भाव-बोध की समर्थता तथा नवगीत पर उनकी अडिग आस्था है, उनका विश्वास है कि उस नवीनता को इससे पूर्व ग्रहण नही किया गया जो आज नवगीत लेकर चल रहा है। छायावदी भय-सकोच की अपेक्षा विविधमुखी रचनाओ मे विद्यमान विषय का स्फीत धरातल उनके गीतो की पूर्णता उजागर करता है। उनके गीतो की विशिष्टता है—व्यक्ति निष्ठा, सामाजिक चेतनानुभूतिमय रागात्मकता, मुक्त छन्दप्रियता के साथ बौद्धिक निष्पत्ति का अद्भुत मणिकाचन सयोग। अनुभूति से तदाकार आन्तरिक लय उनके गीतो की मूल ध्वनि है। छद आवद्ध श द-लय को कवि गीत का आ तरिक सौन्दर्य नही स्वीकार करता, उसे वह कविता का बहिर्मुखी विधान मानकर चलता है, इस विषय मे उनका कथन है—' काव्य अथवा

गीत-काव्य का सगीत आन्तरिक, अर्थ-सयुक्त तथा भावगत ही हुआ। नया गीत-कवि अपनी गीत-सृष्टि में इसी भावगत सगीत को प्रधानता देता है। "[२७८] इस दृष्टि-बिन्दु को आत्मसात् कर कवि व्यक्तिनिष्ठता और तुक छन्द की सायासिक योजना से हर स्थल पर बचा है, वस्तुत यह कवि की प्रकृति ही है, इसीलिए उसके गीतों की आत्मा म अर्थ-सगीत की ध्वनिया समाई हुई हैं।[२७९] लोक-रुचि को विधा स्वीकार करने वाले इस नवगीतकार के गीतो मे सहजता और तरलता का प्राधान्य है। गीतो की प्राचीन परिपाटी के प्रतिकूल उसकी परिभाषागत स्थिति को आमूल-चूल परिवर्तित कर सामाजिक यथार्थ के प्रतिकूल मे नये जीवन-मूल्यो और सहृदयों की प्रेषणीयता को अनुभूत कर कवि ने गीतों की आत्मिक चेतना को सवारा है। असीमित विषय-विस्तार ही भ्रमर के गीतो की सीमा है। मानव-जीवन की शाश्वतता, अनिवार्य जिजीविषा, प्रेम के विषय मे वह किसी प्रकार के निषेध का हामी नही है सम्भवत इसीलिए उनके प्रेम-सम्बन्धी गीत छायावादी अवगुण्ठन का सौन्दर्य नही वल्कि इस ऐन्द्रजालिक अवगुण्ठन से बाहर सयोग-पक्ष के उन्मुक्त चित्रण मे स्वच्छन्दता से विचरे है।[२८०]

विषय विस्तार

गीतो मे विषय-विस्तार अनेकाधिक रूपो मे प्रकट हुआ है, प्रकृति, युग-बोध, सयोग-वियोग, लोक-रुचि आदि दिशा-बिन्दुओ से कवि के गीतो की विकास-गति ने अपनी लक्ष्य-यात्रा के चरण मापे हैं। 'बादल फिर-फिर आये,' 'चादनी के पख-सी', 'झुरमुट की ओट,' 'फूलो वाला है वह मौसम' आदि प्रकृतिपरक गीतो मे कवि के अनुभूत प्रकृति-बिम्ब उभरे है। मानवीय स्थिति की अकुलाहट के ध्वनि-चित्रो की झकार ऐसे शब्द चित्रों को निश्चय ही सशक्त और हृदयग्राही रूप मे प्रकट करती है। अवसाद-विषाद, हर्ष-शोक आदि के अनुभूतिगत सत्य को कवि ने लोक-प्रचलित ग्राम-गीतो की लोक-गधी चेतना मे उभारा है।[२८१] कवि मे भावानुरूप स्वर बदलने की शक्ति का अभाव नही है। युग की विषाक्त स्थिति के शब्द-चित्र अकित करते हुए कवि-कठ के साथ स्वर, भाषा भी अपना स्वरूप परिवर्तित कर लेती है। कवि मन [२८२] मे विद्यमान आक्रोश जब फूट कर बाहर आने को उतावला होता है तो कवि बहुत ही सयत भाव से उन्ही शब्दो को अजुरियो मे कस देता है। आस्थावादी भ्रमर जीवन की विपरीत परिस्थितियो को झुठलाता नही है, आत्म-सम्बोधन करते हुए कवि इस प्रकार की रचनाओ मे अपनी अन्तर्मुखी प्रकृति का परिचय देता हुआ, आश्वस्त है, अपने विश्वास को सभाले हुए है।[२८३]

शिल्प दृष्टि

रवीन्द्र भ्रमर के गीतों का शिल्प पर्याप्त समृद्ध एव ताजा है, युग जीवन के सघर्ष

मे फसी अनुभूति की चक्करदार पहेलियो को उन्ही के अनुरूप ढालते हुए भ्रमर का गीतकार कवि सामाजिक परिवेश से सम्बद्ध यथार्थवादी स्वरों को उसकी पूर्णता मे उघाडने मे कृतसकल्प दिखाई देता है। "पण्डितो की बधी प्रणाली पर चलने वाली काव्य-धारा के साथ-साथ सामान्य अपढ जनता के बीच एक स्वच्छन्द और प्राकृतिक भावधारा भी गीतो के रूप मे चलती रहती है। जब-जब शिष्टो का काव्य पण्डितो द्वारा बधकर निश्चेष्ट और सकुचित होगा, तब-तब उसे सजीव और चेतन प्रसार देश की सामान्य जनता के बीच स्वच्छन्द बहती हुई प्राकृतिक भावधारा से जीवन-तत्व ग्रहण करने से ही प्राप्त होगा।।[३८७] रचना-शिल्प के धरातल पर आचार्य शुक्ल के उपरोक्त मन्तव्य को स्वीकार कर कवि का विश्वास है कि अधुनातन स्वरो को पुरातन शिल्प की कसौटियो पर मूल्याकित करने का कोई औचित्य नही। लोक-गन्धी चेतना, अभिव्यक्ति-अनुरूप भाषा, बिम्बो से अनुभूत क्षण-सत्य का उद्घाटन बडे सतुलित रूप मे हुआ है। अनुभूति को सजीव बनाये रखने के लिए भ्रमर के कवि ने तुक-निर्वाह मे विश्वास व्यक्त नही किया। प्रतीकों का चयन दैनंदिन जीवन के क्षणो को साकार करता है। सक्षिप्त होने के कारण अधिकाश रचना शक्ति और सजगता को समेटे है। नवगीतो के प्रति कवि की शिल्पिक दृष्टि स्पष्ट है—"नया गीतकार अपने चारो ओर के फैले हुए जीवन और समाज से अपनी रचना के अलकरण-उपादान चुनना चाहता है। उसे नये टटके अप्रस्तुतो तथा वर्तमान की अर्थवत्ता को ध्वनित करने वाले नए सशक्त प्रतीकों की तलाश है"[३८८] और भ्रमर ने इन्ही प्रतीको की तलाश की है।

मूल्याकन

डा० भ्रमर के गीत की साफगोई मे अनुभूति के साथ-साथ विचारो और समस्याओ को अभिव्यक्त करने की क्षमता है। क्या गीत आधुनिक बोध को व्यक्त करने मे समर्थ हैं अथवा समर्थ बनाया जा सकता है? जैसे प्रश्नो का उत्तर भ्रमर के गीत हैं। एक तरफ उनके गीत शहरी जीवन की औपचारिक विडम्बना को ढोते हैं तो दूसरी तरफ ग्रामीण जीवन की सादगी म प्रचलित लोकधुनो का नया सस्कार ढालते हैं। अपने गीतो की इस बहुआयामी विविधता के कारण ही वे आधुनिकता के नज़दीक खडे नजर आते हैं। अपने एक पत्र [३८९] मे उन्होने कहा भी है कि शहरी और ग्रामीण जीवन म प्रचलित लोकधुनो का नया सस्कार करके, मैंने अपने गीतो को नया छन्द-सिक्त कलेवर दिया है। दैनिक जीवन की अनुभूतियो को उकेरने के लिए अप्रस्तुत और बिम्ब भी चतुर्दिक परिवेश मे ही लिये हैं, इसे आप परिवेशगत प्रतिबद्धता भी कह सकते है। नि सन्देह नवगीत-परम्परा मे डा० रवीन्द्र भ्रमर एक महत्त्वपूर्ण नाम है, उनके बिना नवगीतकारो की नामावली अधूरी रहेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

८. पं० मधुर शास्त्री

'आधी के पाव और घुघरु' मधुर शास्त्री का एकमात्र काव्य-सग्रह है, जिसमे ५६ गीत, तीन गजल और दो कविताए सकलित हैं। इसके नामकरण से ध्वनित होता है कि इसमे परम्परित गीतो की तरह केवल माधुर्य-व्यापार नही है अपितु जीवन-सघर्ष भी टपकता है। यह बात व्याख्यायेय हो सकती है कि कवि का सघर्ष व्यक्तिगत है अथवा वह सीमित सीमाओ को लाघकर व्यक्ति से बाहर आता है। बहरहाल, इसमे सन्देह नही कि नामकरण मे इस तथ्य को अवश्य ध्वनित किया है कि मधुर शास्त्री गीतिकाव्य के परम्परित विधि-विधान को तोडकर अपने गीतो को उस नव शैली तक ले आये हैं जिसमें वस्तुगत भिन्नता है, अपेक्षतया व्यापकता है। हिन्दी गीतिकाव्य मे एक शास्त्री-त्रयी है, जानकी वल्लभ शास्त्री ने गीति-परम्परा को आगे बढाया तो त्रिलोचन शास्त्री ने गीत को विधागत दायरो से बाहर निकाल कर शैली-वैभिन्न्य तक पहुचाया। गीत-ससार मे तीनो का अपना-अपना महत्त्व अक्षुण्ण रहेगा।

एवरग्रीन माधुर्य-रस का कवि

शास्त्री जी पिछले डेढ-दो दशक से लिख रहे हैं। वैसे विधिवत् रूप से उन्होंने आजादी के बाद,लिखना प्रारम्भ कर दिया था। वे शम्भूनाथ सिंह, नीरज, रग, वीरेन्द्र मिश्र, गोपालसिंह नेपाली, रमानाथ अवस्थी, गिरधर गोपाल, रामावतार त्यागी, रामानन्द दोषी, घनश्याम अस्थाना, भारतभूषण तथा रामकुमार चतुर्वेदी की पीढी के गीतकार माने जा सकते हैं। अपने समकालीन गीतकारो मे और मधुर शास्त्री म एक मौलिक अन्तर ये है कि उन्होने न तो गीत को घिनौने व्यावसायिक मच का शिकार बनाया और न ही क्रैफ्ट (प्रयोग) के नाम पर गीत के बाहर नये प्रयोगो का दम्भ भरा। वे इन दोनो स्तरो से हटकर एक अपवाद स्तर के गीतकार हैं। यद्यपि उन्हें एवरग्रीन माधुर्य रस[२८७] का कवि अथवा 'रोमानी प्यार और भावुकता'[२८८] का कवि भी कहा गया है, लेकिन यह शास्त्री जी के गीतो की केन्द्रीय धुरी नही है, अपितु उनकी गीति-रचना का एक चरण-भर है। उनके प्रारम्भिक गीत अवश्य शृ गारोन्मुखी हैं जहा 'चादनी मेरी पलक मे सो रही। चाद पहरा दे रहा आकाश मे'[२८९] जैसी भावुक एव रोमानी अर्थ-छवियां देखने को मिलती हैं, किन्तु कवि की ये रोमानी प्रवृत्ति कुछ समय तक ही रही और अन्तत उनकी दृष्टि और रचना मे परिवर्त्तन आया, फिर सुनाई देने लगा—'इतना प्यार न देना मुझ को। दु ख के बोल न मैं सुन पाऊ।'[२९०]

कसमसाती अनुभूति के स्वर

डा० राजबुद्धिराजा ने मधुर शास्त्री के गीतों में भोगे हुए यथार्थ को खोजा है।[२६१] यह 'भोगना' शब्द आधुनिक रचना में एक विवाद का विषय बन गया है। वस्तुतः इस शब्द का अर्थ एक आत्मिक अनुभूति है जिसे कलाकार भोगता है, महसूस करता है, वही उसकी अनुभूति बन जाती है। उदाहरण के लिए निराला ने 'भिक्षुक' कविता लिखी। उसके लिए वह भिक्षुक नहीं बने बल्कि भिक्षुक को देखकर उनकी अनुभूति कर्ण जैसी दानी और सवेदनशील बनी है, उन्होंने भिक्षुक को इस प्रकार भोगाकि वे इस कविता के माध्यम से शोषित वर्ग के गायक बन गये। वास्तव में यही है भोगा हुआ यथार्थ। मधुर शास्त्री ने अपने गीतों में आज के 'दूषित वातावरण में जी रहे ईमानदार आदमी के साथ जुडे असफलता के अभिशाप को ढोया है। इनके गीतों में आज की विषय स्थिति की चुभन है। (इन्होंने) आज के सर्वव्यापी जहरीलेपन को अभिव्यक्ति दी है।'[२६२] दूसरे शब्दों में इस काव्य-सकलन को पढ़कर ऐसा लगता है कि अपने युग की कसमसाती अनुभूति का कवि-स्वर जन-कण्ठो के स्वरों पर उतरने लगा है।[२६३]

सामाजिक चेतना

केवल यथार्थ चित्रण हमारी समझ में नैचुरलिज्म के सिवा कुछ और नहीं हो सकता, वह तो समाज में यथावत स्थिति को बनाये रखने में ही सहायक है, लेकिन मधुर शास्त्री के गीतों का यथार्थ इससे भिन्न है। वे अपने गीतों में आत्मपरक होते हुए भी—आत्मपरकता गीतों की विशिष्टता है—सामाजिक परिवेश में वृहत्तर सन्दर्भों को छूते हैं और इस प्रकार कवि की सामाजिक जागरूकता को प्रमाणित करते हैं।[२६४] इस दृष्टि से मधुर शास्त्री उन गीतकार कवियों से अलग हो जाते हैं, जो गीत-रचना का प्रथम और अन्तिम लक्ष्य वैयक्तिक राग के स्तर पर रोमानी शैली से लय-ताल-स्वर में शब्दों का चयन कर देने मात्र में ही गीत की सफलता और सार्थकता समझते हैं। श्री मधुर शास्त्री के गीतों में किसी परम्पराग्रस्त रूढ़िग्रस्त रोमानी भावनाओं को प्रश्रय प्राप्त नहीं हुआ है। जीवन में कवि ने जो भोगा, देखा, सहा और परखा है वही गीतों में गुथा है। इस वैज्ञानिक युग में गीत के माध्यम से जीवन की व्यथा, जीवन का आनन्द, जगत का व्यापार और प्राकृतिक कल्लोल व्यंजित करने का प्रयास'[२५] ही इन लघु गीतों में है।[२६६]

वस्तुतः कवि बार-बार अपनी ध्वनि प्राचीरों को उलाघ कर दलित और पीडितो के दुःख दर्द को चित्रित करने में अपूर्व सुख का अनुभव करता है। मधुर शास्त्री की इस सामाजिक जागरूकता को स्वर्गीय डा० कमलेश ने बड़े सटीक शब्दों में उपस्थित किया है—"एक अजीब उपेक्षा का भाव मनुष्य को घेरे हुए है और वह इतना आत्मकेन्द्रित हो गया है कि किसी को दूसरे की चिन्ता नहीं। यहां तक

कि विवाह और मृत्यु दोनो ही औपचारिक हो गई हैं। न कोई प्रसन्नता के समय हसता है और न कोई शोक के समय विषाद-मग्न ही हो पाता है। लगता है जैसे सबके हृदयो पर पत्थर रखा हुआ है। आदमी आदमी से आखें तक नहीं मिला पाता, क्योकि आखें मिलने पर उसे दूसरे का कुछ-न-कुछ लिहाज करना पडेगा। कोई ऐसा परिवार नही, जहा प्यार का वातावरण मिल सके, फिर समाज की तो बात ही दूसरी है। इस स्थिति से ऊब कर विद्रोह और क्रान्ति को तैयार मनुष्य स्वय कराहता है क्योकि वह विरोधाभास मे जी रहा है। इसीलिए कवि को भी लगता है कि ससार मे अवश्य ही आग लगेगी।"[२६७] क्योकि इतनी भारी जनसख्या मे कोई भी कवि को प्रसन्न नही दिखाई पडता है।[२६८]

व्यंग्य

व्यग्य के बिना यथार्थ अधूरा है। मधुर शास्त्री के गीतो का दूसरा महत्त्वपूर्ण वैशिष्ट्य यह है कि उन्होंने गीत के परम्परागत विधान को ही नही तोडा बल्कि अपने गीतो मे यथार्थगत अनुभूति के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यग्यो का भी भरपूर प्रयोग किया। ये व्यग्य-प्रयोग उनके गीतो मे इस प्रकार रच-बस गये हैं कि पाठक के मन-मस्तिष्क पर एक गहरा प्रभाव छोड जाते हैं। जब वे कहते हैं—'निडर होकर चले आओ हमारी राजधानी है। सच्चाई का कफन ओढे यहा हर व्यक्ति गाधी है। यहा तालाब गहरे हैं मगर उनमे न पानी है...।'[२६६] तो कवि की राजनीतिक कुण्ठा और समाज की आर्थिक असमानता गहरा उठती है। इसी सामाजिक-आर्थिक असमानता का कवि ने अन्य स्थलो पर भी व्यग्य-भरी मुद्रा मे विश्लेषण किया है।[३००] मधुर के ये व्यग्य विवशता और असहायता का बोध नही कराते वल्कि अपने गीतो के माध्यम से एक विशेष आस्था का परिचय दे जाते हैं।

जीवन-दर्शन

आस्था का प्रसग विचार से जुडा हुआ है और विचार कलाकार के जीवन-दर्शन से। देखना यह है कि मधुर शास्त्री के गीतो मे इस आस्था और जीवन-दर्शन का स्वरूप क्या है। गीतो को देखने पर ऐसा लगता है कि इनके विचारो मे शुद्ध भारतीयता दृष्टिगत होती है। कवि की दृष्टि से भारतीयता का सस्कार व्यक्ति मे आदमीयत का प्यार भर देता है, उसे ईमानदार और कर्त्तव्यनिष्ठ बनाता है तथा मर्यादाशील रखता है। मधुर शास्त्री अपने गीतो मे और कथनी मे जहा ईमानदारी, कर्त्तव्य-निष्ठा, मर्यादा और आत्मीयता की बात करते हैं वहा सम्भवत. आस्था के नाम पर इसी भारतीय सस्कृति को पुनर्जीवित करने का स्वप्न देखते हैं। इसलिए आधुनिक युग के कवि होते हुए भी वे तथाकथित आधुनिकता के विरोधी है, ऐसी आधुनिकता से वे कोसो दूर है जो मात्र मनुष्य को सस्कृति-विहीन बनाती है और शुद्ध भारतीय

'परम्परा को छोडकर जन-मन को कर्त्तव्य-हीन, आचारहीन, विलासी और 'पियक्कड बनाती है। इस सदर्भ मे कवि का निम्नाकित गीत अनुकरणीय है।[301] डा० कमलेश के शब्दो मे—"यदि यह कहा जाए कि मधुर शास्त्री के सब गीतो मे आदमी उनका लक्ष्य रहा है तो अत्युक्ति न होगी। वह प्यार को भी इन्सानियत के नाते ही स्वीकार करना चाहता है।[302] मधुर शास्त्री की मर्यादाशीलता तो देखने योग्य है। उनकी घोषणा है "दो तीरो के बीच नदी-सा बहता हू। सागर हूँ पर 'मर्यादा मे रहता हू।"[303] डा० स्नातक[304] ने 'प्यास लिये दर्द' की चर्चा करने वाले इस कवि के निम्नाकित गीत[305] के आधार पर उसकी ईमानदार अनुभूति को सराहा है।

शिल्प दृष्टि

मधुर शास्त्री की गीत-शैली अपेक्षाकृत अभिनव कम है। उनके प्रतीक सस्कृत एव हिन्दी-काव्य परम्परा की विरासत का द्योतन करते हैं—यह बात और है कि उनमे दुरारूढ प्रतीक योजना अथवा क्लिष्ट अर्थ-छाया देखने को नही मिलती और इसके साथ ही साथ पुराने प्रतीकों को नया अर्थ देकर उन्होने अपने काव्य-चातुर्य का प्रमाण दिया है। उदाहरण के लिए चातक, भ्रमर, मगल-कलश, गुलाब आदि परम्परित प्रतीकों को कैसी अभिनवता दी है, यह दृष्टव्य है।[306] मधुर के प्रतीक भले ही पुराने हो, लेकिन अर्थ नये हैं और इस दृष्टि से गीतकार मधुर को नवगीतकारो की श्रेणी म रखते हुए कोई सकोच नही होता। जहा तक भाषा का प्रश्न है इसमे दो मत नही कि इन्होने अपने गीतो मे 'खडी बोली मे अन्तर्निहित नयी ध्वनियो को पकडा है।'[307] इसकी पुष्टि मे यह उदाहरण द्रष्टव्य है।[308]

छन्द

गीतो का छन्द विधान भी इस क्रम मे कम प्रयोगशील नही रहा है। "मैं प्रसन्न हू[309]" जैसी आठ मात्राओं वाली गीतरचनाओ से लेकर ३३ मात्राओ तक उन्होंने न-जाने कितने मात्रिक प्रयोग किए है लेकिन हर प्रयोग का वैशिष्ट्य यह है कि न कहीं उनकी लय टूटती है और न कहीं तुक अस्वाभाविक अथवा कृत्रिम बनती है। ऐसा लगता है कि सवेदना की आच मे तपा हुआ गायक सहज निर्झर-सा गुनगुनाने लगता है और तुक निरायास बन जाती है। ऐसे मे न तो वह गीत के बीच खटकती है और न उसकी लय को तोडती है। अक्सर देखा गया है कि तुक के लिए बडे से बडे कवि को भाषा और व्याकरण के नियमो को तोडना पडा है किन्तु मधुर कें प्राय सभी गीतो म तुक स्वाभाविक और सगत बनकर आयी है। ऐसा नहीं लगता कि तुक के लिए कवि ने कही अपनी भाषा की रवानी को तोडा हो या शब्दो की खातिर गीत की अर्थ-लय को भग किया हो। उनकी भाषा सस्कृत-निष्ठ होते हुए

भी ऐसी सरल और महज[311] है कि जनभाषा के निकट आकर खडी हो जाती है।। यहा तक कि उनकी गजलोशायरी मे भी यह भाषा व्यवधान नही बन पाती।

मूल्यांकन

मधुर शास्त्री पुरानी पीढी के होते हुए भी नवगीतकारो मे चर्चित है। उपर्युक्त कतिपय विशिष्टताओ के कारण यह कवि छापेखाने का मोहताज कम है, जो उसे एक बार सुनता है वह उसे गुनगुनाने के लिए बाधित हो जाता है। इसी स्तर पर कवि ने गीत-विधा की इस परिभाषा को भी तोडा है कि गीत केवल गाया जा सकता है। वे उसे गाने की राह से रेसीटेशन (अभिव्यक्ति) के स्तर पर ले आए हैं और यह मधुर शास्त्री के गीतो का, उसकी रचना-धर्मिता का एक महत्वपूर्ण गुण है जो इस गीतकार को काफी वर्षो तक जीवित रखेगा। उन्हे साहित्यिक स्वीकृति की कोई चिन्ता नही क्योकि उन्हें समय की शक्ति[312] पर विश्वास है।

९. चन्द्रसेन विराट्

विशेषकर स्वतन्त्रता के बाद परिस्थितियो के बदलते तेवर मे गीत का जो पुनर्संस्कार हुआ है चन्द्रसेन विराट् न-केवल उसके अग्रणी है बल्कि गज़ल और शेर को गीत विधा मे नए तरीके से स्थापित करने वालो मे उनका वही मम्मान है जो शमशेर, बलबीर सिंह रग तथा दुष्यन्त कुमार का।

सहज एवं मौलिक कवि

विराट् सचमुच गीत-विधा के बडे अनूठे, सहज एव मौलिक कवि हैं। ऐसा प्राय अपवाद स्तर पर ही होता है कि पेशे से कोई व्यक्ति कार्य-पालन यन्त्री अर्थात् एक्जूकेटिव इजीनियर और रुचि से गीतकार हो। अहिन्दी-भाषी विराट् महाराष्ट्र की देन है। आज तक इनके गीत और गज़लो के सात सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं और दो प्रकाशनाधीन है। 'मेहदी रची हथेली' (गीत-सकलन, १९६५), 'स्वर के सोपान' (गीत-सकलन १९६९), 'ओ मेरे नाम,' (गीत-सग्रह १९६९), 'निर्वसना चादनी' (गजल-सग्रह १९७०), 'किरण के कशीदे' (गीत-सकलन १९७४), 'मिट्टी मेरे देश की' (राष्ट्रीय कविताए १९७५), 'गीत-गंध' (सम्पादित गीत-सग्रह), 'पीले चावल द्वार पर' और 'भीतर की नागफणि' (दोनो शीघ्र प्रकाश्य, गीत-सग्रह, १९७६), 'कुछ आसू कुछ मोती,' 'मौलश्री फूली' इनके सभाव्य प्रकाशन हैं—इनके अतिरिक्त सन् ५५ से धर्मयुग, हिन्दुस्तान, कादम्बिनी, माध्यम, वीणा, आज, गीत-१, गीत-२ आदि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे इनकी रचनाओ का प्रकाशन होता रहा है।

कालातीत सम्पदा

'छंद' चन्द्रसेन विराट् की साधनात्मक उपलब्धि कम संस्कारगत विशेषता अधिक है। उन्होंने अपने एक पत्र मे लिखा भी है कि "मुझे प्रारम्भ मे ही छद मे लिखने की आदत रही है। कोई भाव जो आता है छद के वस्त्र पहने ही आता है। ऐसी स्थिति मे छद-विहीन मैंने कुछ लिखा नही। जो लिखा वह छद मे लिखा। हर विचार मुझे छन्द मे ही सूझा। मैंने गीत की वकालत तक छद मे की है।"[313] ऐसे मे गीत उनके जीवन की अनिवार्यता बन गई है। अत जैसे जैसे समय बदला, हवा बदली, वैसे-वैसे उनके गीतो का आन्तरिक ससार भी करवट लेता रहा। इस दृष्टि से समय के साथ उनका हर गीत नएपन की महक लेकर आया और अपने कालातीत अश को छोडकर आगे बढ गया। इस दृष्टि से शोधकर्त्ता का यह विनम्र निष्कर्ष है कि विराट् की अधिकाश गीत-सम्पदा काल सापेक्ष होते हुए भी कालातीत है क्योकि उनमे मानव मन के शाश्वत अनुभवो का अनुगायन हुआ है। महानगर में जीने वाले नागरिक के लिए आज की इस औद्योगिकता मे जब मनुष्य रागात्मक कशिश के लिए तडपता रहने को आकुल है ऐसे मे चन्द्रसेन विराट् के गीत अपनी सहज एवं सजग रागात्मकता को लेकर आते हैं और सही सन्दर्भ पर सवेदना का लेप दे कर उसे काफी हद तक सकून देने की कोशिश करते है। ऐसा गीत विराट् के लिए गीत के नाम से जाना जाए या नवगीत के नाम से अथवा अगीत के नाम से उससे इस गीतकार को फर्क नही पडता। बल्कि वह तो शिकायत करता है कि इन नामो से "लेखन भी फैशन की बतौर चल पडा है एव नये-नये शिविरो की स्थापना हुई है। नारो की बतौर इन अतिरिक्त सज्ञाओ का उपयोग किया गया है एव मजमा बाधा गया है। जैन्युइन गीत-लेखक के लिए यह न व्यतीत मे आवश्यक था न अब है। प्रतिबद्ध रचनाकार आज भी गीत को गीत के रूप मे लिख रहे हैं, जिन्हे अलग से जानने के लिए कोई नवीन तथाकथित सज्ञा आवश्यक नही है।"[314] ऐसे मे जहा कही भी चन्द्रसेन विराट् ने अपने गीतो मे कही नवगीत का नाम लिया है तो आने वाले नवगीत से ही उसका प्रयोजन है।[315]

नयी कविता के इजारेदार पिछले अरसे से अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए गीत के मरण[316] की घोषणा करते आ रहे है। छन्द से तो उन्हें बेहद एलर्जी है। चन्द्रसेन विराट् इस षड्यन्त्र को हजम कर पाने म असमर्थ-से लगते है और लिखते हैं—

एक स्वर — वर्तमान मे गीत के लिए स्वस्थ आबोहवा है ही नही।

दूसरा स्वर — जमाना जूही-चमेली का रहा ही नही
अब तो कैक्टस उगाने के दिन हैं
बासुरी की जगह विद्युत गिटार के दिन हैं।

तीसरा स्वर — तो चलो गेहू की जगह बार्ली खायें

मणीपुरी की जगह ट्विस्ट करें।
समवेत स्वर : उठो, गीत को नकारें। उसके विरुद्ध नारा बुलन्द करें।
उसे साहित्य से खदेड कर दम लें।

और गीत है कि इस वातावरण मे भी जिये जा रहा है। उसकी रसधारा सदा नीरा है। स्रोत जो हृदय की अतल गहराइयो एव भावभरी घाटी मे स्थित है, कभी सूखता नही।"[३१७]

गीत : अंधेरे की किरण

चन्द्रसेन विराट् का यह परम विश्वास है कि गीत आज की आबोहवा मे महज रोमानी एव व्यक्तिगत नही हो सकता। उसके लिए उसकी सास्कृतिक परम्परा के साथ सामाजिक बोध अनिवार्य है और वह उसे ग्रहण भी कर रहा है। गीतकार का यह विश्वास है कि "गीत का चेतन स्वर हमेशा समाज एव समय के समानान्तर चलता रहा है। स्वतत्रता-प्राप्ति एव चीनी हमले के सकट-काल मे भी गीत का स्वर ऊर्ध्वमुखी रहा है।"[३१८] गीतकार का यह दावा है कि पूजीवाद की विकृतियो —व्यक्तिगत कुण्ठा, मासल विलास, ऊब, घुटन एव पश्चात्ताप—को नयी कविता ने भले ही गैर जिम्मेदाराना ढग से उपस्थित कर पाठक को विमूढता के गर्त्त मे धकेला हो लेकिन गीत इस सन्दर्भ मे हमेशा अधेरे की किरण रहा है—" आईने के आगे खडा गीत अपने रूपायन पर लक्ष्य कर रहा है। वह पूर्वग्रह-ग्रसित रूढ विधानो का केंचुल उतार रहा है। सच्ची भावुकता एव मासल रोमास की चाटुकारिता छोड रहा है। युगबोध एव मनुष्य के आधुनिक तनाव-खिंचाव गीत मे व्यक्त हो रहे हैं।"[३१९]

दो धाराओं का मधु-मिलन

नयी कविता के वजन पर गीत-विधा को विराट् इसलिए भी वजनदार मानते हैं कि नयी कविता केवल महानगरीय है जबकि आज के गीत मे नागरिक एवम् आचलिक दोनो धाराओ का मधु-मिलन है। अतः प्रतीक, 'लक्षणा, अभिधा, बिम्ब और सकेत इसमे सहज और स्वाभाविक हैं। नयी कविता की तरह अमूर्त्त और साकेतिक बाना पहने हुए बोझिल नही। दुरूहता के प्रति उनकी जो खास शिकायत है उसे उन्होंने अपने गीत मे भी कहा है।"[३२०]

आखिर यह प्राण का बोल क्या है—वह शायद यही है कि जीवन केवल प्रेम और सौन्दर्य का नाम ही नही है बल्कि इसके अतिरिक्त बहुत कुछ ऐसा कडवा भी है जिसे सुन्दर बनाया जाना बाकी है। यही कवि का कथ्य गीत की तथाकथित परिभाषा को तोडता है और अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता का इजहार करता है। कुंवरपाल सिंह[३२१] अपने एक लेख मे उनकी इसी प्रतिबद्धता का सकेत करते हैं।[३२२]

"विराट् ने भी अपनी इसी प्रतिबद्धता को व्यजित किया है। यह विषम-वैविध्य नगर और गावो मे बिखरा पडा है। जब कवि महानगरीय यन्त्रणा[३२३] को देखता है तो उसके बदलते तेवर को कैसे भूल सकता है।[३२४] यथार्थ का वैषम्य कही भी हो, गाव मे अथवा शहर मे, उसे भावुकता के वातावरण मे हल नही किया जा सकता।[३२५] अत अपनी रागात्मकता के बावजूद वह हर चीज को एक खास विवेकपूर्ण नजरिये मे देखना चाहता है और यही इस गीतकार की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

महत्त्वपूर्ण उपलब्धि

गीत-परम्परा मे विराट् की सर्वोपरि उपलब्धि गजलो और शेरो को हिन्दी के सस्कारो मे ढाल कर एक नया अन्दाज देना रहा है। गजल की पीठिका मे उन्होने 'मुक्तिका' की घोषणा की और उसे बधे-बधाये कथ्य से हटाकर नए नए क्षितिजो मे बिखेर दिया। अब वह साकी और शराब की चीज नही रही बल्कि अब वह 'मयखाने से बाहर निकलकर नयी सोहबत मे आयी। विराट् ने 'निर्वसना चादनी' की भूमिका मे लिखा है—"युगीन सामाजिक और राजनैतिक पहलू जो मुझ तक अपने सहज अनुभूत रूप मे आए मैंने बाधने का प्रयास इस छद के माध्यम से किया[३२६] इन मुक्तिकाओ मे कवि का अन्दाज इतना सरल, ग्राहक एव दृष्टि-सम्पन्न है कि अच्छे से-अच्छा बुद्धिवादी भी गीतो से लाख एलर्जी होने के बावजूद इन्हे पढने के बाद गुनगुनायेगा[३२७] और इच्छापूर्वक उन्हे अपने आस-पास के परिवेश मे भी पहुचाएगा।

मूल्याकन

कुल मिलाकर, विराट् के गीत-ससार मे मनुष्य के आधुनिक जीवन के तनाव, कुठायें, सशय, अभाव एव उसके सभी सवेग उनके सही परिवेश मे कलागत ताजगी और सहजता के साथ अभिव्यक्त हुए हैं।[३२८] विराट के गीत इस बात के गवाह हैं कि हर बार जीवन सम्पूर्णता के साथ उनके गीतो की चौखट मे समाया है। विराट् की 'मुक्तिकाए' पाठक के लिए न केवल गुनगुनाने की विवशता बन जाती है बल्कि वह इन पर सोचने समझने के लिए एक जमीन भी तैयार करने पर विवश हो जाता है। 'मुक्तिका' के नाम से गजलो का यह पुनर्सस्कार विस्तृत विश्लेषण की माग करता है, चूकि इनमे विशेषकर गीतकार विराट् की पहचान सुरक्षित है। बनी बनायी लीक को तोडना यह अपने आप मे जोखिम है और तोडकर उसे अपने नजरिये से स्थापित करना बेहद मुश्किल और इस गीतकार बनाम शायर ने ये दोनो काम बडी बुलन्दी से किये हैं। गीत के इतिहास मे इसका नाम काफी आदर से लिया जाना चाहिए।

मूल्यांकन

संक्षेप मे, गीति-परम्परा को मोडदार मोडो पर समझ के साथ समझते हुए आगे बढाने वालो मे ठाकुर प्रसाद सिंह का नाम सहर्ष लिया जा सकता है जिनका गीति-भविष्य उज्ज्वल सम्भावनाओं की ओर सकेत करता है। इनके गीत-सग्रह 'वशी और मादल' को कलकत्ता की साहित्य व विकास परिषद् ने पाच हजार रुपये के पुरस्कार[333] से सम्मानित किया है—जो हिन्दी गीति-ससार के लिए गौरव की बात है।

१२. महेन्द्र भटनागर

'सतरण,' 'जिजीविषा,' 'मधुरिमा,' 'नयी चेतना,' चयनिका 'टूटती शृखलायें,' और 'कद स्नेह की, दीप हृदय का' महेन्द्र भटनागर के प्रकाशन-विकास की सीढिया हैं। आस्थावादी स्वर-गायक भटनागर का अन्तिम-सग्रह 'कद नेह की, दीप हृदय का नवगीतशैली मे रचित है, जहा कवि का गीति-व्यक्तित्व सतत् जागरूक एव प्रयोगशील है। नयी सस्कृति के प्रति कवि का विश्वस्त भाव उनकी स्वस्थ दृष्टि का परिचायक है। 'नारी' नामक रचना नारी के प्रति उदात्त भाव-दृष्टि की द्योतक है। अनूठे भावो मे अर्थ-गाम्भीर्य की क्षमता है जिनके प्रकाशन का माध्यम उनका सरल-सुबोध भाषा-कौशल है। चालीस महत्त्वपूर्ण कविताओं का अग्रेजी मे अनुवाद हो जाना उनकी साहित्यिक प्रौढता का द्योतक तो है ही, उनकी लोकप्रियता को भी प्रमाणित करता है। नयी हिन्दी गीत-कविता के हस्ताक्षरो मे यह एक उभरता हुआ नाम है।

१३. रमानाथ अवस्थी

'रात और शहनाई' रमानाथ अवस्थी का प्रथम और प्रतिनिधि काव्य-सग्रह है। इससे पूर्व रचित 'आग और पराग' नामक गीति-सग्रह 'दुर्भाग्यवश" पाठकों के पास नही पहुच सका।'[334] इसलिए उक्त सग्रह की अधिकाश रचनाए 'आग और पराग' की ही देन हैं।

भावनाओं का सिद्ध कवि

कवि-सम्मेलनो के परिचित इस कवि पर व्यक्तिवादी धारा के विशिष्ट कवि रामेश्वर शुक्ल अचल का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। सग्रह के समस्त गीतो के मूल मे प्रणयजनित व्यथा से आप्लावित वेदनानुभूति की कसक, असफलता से

उत्पन्न विवश नैराश्य-भाव, रूप के प्रति तीव्रासक्ति, वासनाजन्य उन्माद, मृत्यु का आह्वान, अवसाद-विषादयुक्त कुण्ठा, हर्ष आदि का विशद् चित्रण[334] हमारे मन्तव्य को पुष्ट करता है। अनुभूतियों के अपूर्व योगदान से पूरित शब्द-चित्र आकर्षक हैं, जहा कवि 'सो न सका मैं, याद तुम्हारी आई सारी रात' मे अनुभूतियो की प्रगाढता मे खो जाने का अभिलाषी दिखाई देता है। कतिपय गीतो मे कवि विचारक बनने के प्रयत्न मे जीवन-मृत्यु, व्यष्टि-समष्टि आदि समस्याओं पर चिन्तन-मनन करता अवश्य है किन्तु मूलत भावनाओ का सिद्ध कवि होने के कारण इस क्षेत्र मे असफल हो जाता है। सम्भवत चिन्तन के क्षेत्र मे अवस्थी जी का अनायास कदम उनके क्षय को ही जीवित रूप मे सामने लाता है। इस क्षय के विभिन्न रूप कही मौत के रूप[335] मे तो कही विरहाग्नि मे तपते-गलते अपनी कल्पित समाधि पर प्रेयसी के आने की आकाक्षा तथा शोक मे डूबे गीत न गाने के आग्रह रूप[337] मे अथवा किसी और रूप मे—अधिकाशत उनके काव्य का अग बन गए है।

मानवतावादी सूत्रो की खोज

इस 'क्षय' से दूर अवस्थी का एक अन्य कवि-रूप दुर्बल होते हुए भी अपेक्षाकृत आकर्षित करता है, जहा उनकी स्वस्थ विकासमान पुष्ट भावधारा के दर्शन होते है। यहा कवि अपने व्यक्ति से बाहर आने को छटपटाता, सघर्ष करता दिखाई देता है। उपर्युक्त भावधारा मे बहते कवि की भावाभिव्यक्ति यहा चाहे प्रणयजनित हो अथवा व्यापक धरातल पर प्रसरित होती सामाजिक पथ पर प्रवेश करने मे उन्मुख होती हुई—प्रत्येक दृष्टि से कवि प्रभावित करता है। मानवतावादी सूत्रो की खोज मे यहा कवि ने अपनी शक्ति, दृढता और उदग्र सामाजिक चेतनानुभूति[338] को प्रमाणित करते हुए भी प्रणयी के रूप मे अपने हृदय की विशालता का बोध[339] कराया है। अवस्थी के गीतो मे सुख और दु ख दोनों को सहर्ष ग्रहण करने की सामर्थ्य विद्यमान है। निरन्तर दु खासन्न स्थिति म भी वह अपना साहस नही खोता। इन्ही दु खपूर्ण क्षणो म सुख की प्रेरणा छुपी है, ऐसा स्वीकार कर कवि प्रकारान्तर से आत्म-सान्त्वना पाता है।[340] युग-बोध के अनुरूप कवि मानवता के स्वर सजाता है, दुनिया मे जिनका कोई नही उनके लिए कवि-आत्मा आकुल है, उसकी चेतना सम्पूर्ण के साथ अपनी गीतात्मा का सम्बन्ध सेतु रूप मे निर्मित करते हुए ऐसी आस्थाहीन मानवता का पहरेदार बन जाना चाहती है जिससे कोई आख मिलाने को तैयार नही है,[341] लेकिन उसकी सबसे बडी दुर्बलता यही है कि उपर्युक्त भाव-चित्रण आकर्षित तो भरपूर करता है, सशक्तता से विस्फोटित नही होता और विद्युत् की भाति भावनाकाश मे क्षणिक कौध कर रह जाता है। आकर्षक होते हुए भी वास्तविक अनुभूति का सयत रूप इनके गीतो मे

प्राप्त नही होता। कतिपय गीत बहुत हल्के स्तर पर कवि को सस्ती और विकृत रुचि[३४२] को प्रदर्शित करते हैं।

शिल्प दृष्टि

शैली-शिल्प के क्षेत्र मे कवि पर्याप्त सजग है। परम्परित बोझिलता मे दूर कवि की भाषा मे भावानुरूप अभिव्यक्ति-क्षमता, सरलता, स्वाभाविकता है। कवि-सम्मेलनो का गायक होने के कारण उक्ति-सौन्दर्य मे विरोधाभासो का चमत्कार, उर्दू की-सी तर्जेबयानी को लेकर आया है,[३४३] इस दृष्टि से सफल होन हुए भी जहा मात्र इन्ही बातो को साध्य बनाकर कवि भावाभिव्यक्ति का असफल प्रयत्न करता है वहा अच्छे-से-अच्छे गीत की आत्मा भी मर गई है। नये गीतकारो की भाति शूल, फूल, धूल, साम, उमर आदि शब्दो का पुन पुन प्रयोग उनकी इस प्रवृत्ति का सूचक बनकर आया है। यद्यपि कला-क्षेत्र मे अवस्थी जी की कोई मौलिक उपलब्धि नही है, फिर भी गीतो मे चलचित्रो की लयो का अनुसरण उन्हे कवि-सम्मेलनो के मच पर सफल बनाए हुए है।

मूल्यांकन

कुल मिलाकर, अवस्थी के गीति-व्यक्तित्व के विषय मे इतना ही कहा जा सकता है कि 'नव्यतर गीन कविता' के क्षेत्र मे अचल के प्रभाव को लेकर चलने वाले अवस्थी यदि क्षय तथा ह्रास मे मुक्त होकर विशाल दृष्टि-बोध को समेटते हुए अपने प्रणय तथा जीवन की कटु समस्याओ को लेकर अग्रसरित हो तो कवि-सम्मेलनो के साथ-साथ वे प्रौढ और परिष्कृत रुचि के काव्य-प्रेमियो को भी आकर्षित-प्रभावित कर सकते हैं। अनुभूतिगत ईमानदारी के साथ कही-कही इनमे प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता विद्यमान है।

१४. शेर जग गर्ग

नवगीत-परम्परा मे शेर जग एक चर्चित नाम है। 'गाने बरस रहे हैं झर-झर, 'आज नही बेला सोने की' आदि गीतो मे कवि ने सहज प्रेरणा को सहज भाव से सहेजा है। जीवन के कटु-तिक्त सघर्षो के बीच से कवि रास्ता खोजता दिखाई देता है जहा युग का यथार्थ उनके गीतो मे ताजगी भरता है। चाद-सितारो पर दृष्टि केन्द्रित करन वाले इस गीतकार ने जीवन के सौन्दर्य-क्षणो मे आसुओ का आसव पीया है। कवि-हृदय मे व्याप्त आस्था के दीप्त स्वर अपने आस-पास के 'विषाक्त परिवेश यहा तक कि समष्टि मे परिवर्तन देखने के इच्छुक नही है, उन्हे बदलने को दृढ-प्रतिज्ञ है।[३४४]

संक्षेप में, लोक संस्कृति को रुचिपूर्वक अपनाते हुए शेर जंग के छोटे-छोटे गीतों ने हृदय की गहराई का स्पर्श किया है, कोलाहल मचाया है। नवगीतकारों की पंक्ति में अपने गीति-अस्तित्व को प्रमाणित करने की दौड़ में अभी 'जंग' संघर्ष-रत है।

१५. मणि मधुकर

मणि मधुकर राजस्थानी अंचल के जाने माने उपन्यासकार, कहानीकार और कवि है। उनकी कविताओं में अर्थ-लय की ऐसी संगति है जिसके मातहत उनके शब्दों का संसार गीतमय हो उठता है। कविता से इतर उन्होंने जो कुछ लिखा है उनमें यद्यपि आंचलिकता और महानगरीय गद्य रची-बसी हुई है लेकिन उनकी कविताओं में एक ऐसा संसार है जो कवि के विशिष्ट परिवेश की प्रत्यक्षता को सहज रूप में न पेन पाने की विवशता-गाथा को टंकित करता है और ऐसे में कहीं आक्रोश झलकता है तो कहीं मिठास।[३४४]

अनलिखा अध्याय

मणिमधुकर का यह आक्रोश महानगरीय उस यान्त्रिकता के प्रति है जो व्यक्ति-स्वार्थों में या स्वार्थों की इस विवशता में समाज के उस बृहत्तर अध्याय को न-केवल अनलिखा छोड़ गया बल्कि उसे पहचानने से भी इंकार कर गया। प्रश्न ये उठता है कि क्या यह सब उनके मित्रों की प्रकृति में है। कवि की भावना में स्पष्ट होता है कि यह सब प्रकृतिगत कम और विवशता अधिक है किन्तु मित्र और कलाकार में मूलगत भेद है। कलाकार विवशता को दर्द बना लेता है, उसे एक सपना बनाकर सजोने की राह देखता है और ऐसे में उसकी प्रतिबद्धता कसमसा कर कराह उठती है।[३४६] प्रश्न उठता है कि क्या यह सकल्प, यह प्रतिबद्धता कवि के भीतर आकस्मिक रूप से उभर गई है? ऐसा नहीं है, उसे लगता है कि तथा-कथित आधुनिक पीढ़ी मीलों तक पत्थर बांधे कमर में,[३४७] कधे झुकाये विवश भाव से रूढ़ियों को ढोती चली जा रही है। परिवर्तन की सम्भावना थी लेकिन न हो पाने की स्थिति में कवि का यथार्थ गूंजता है कि पहले जो था वह अब भी है और फिर एक विवशता, एक घुटन—'किस जगह सांस लूं मैं, मन सबसे ऊबा है'[३४८] लेकिन कवि का रास्ता यदि उसके लयात्मक गीतों में अपनी मानसिक ग्रन्थियों के बावजूद बेहद रोमानी है और भावनात्मक फिसलना में लिपटान वाला हो तो भला इस प्रकार की समस्याएं कैसे सुलझ सकती है। 'नामहीन पीड़ा'[३४९] एक ऐसा ही गीत है जिसमें कवि सुरीले, हठीले, सजीले, उरझीले, सपनीले जैसे शब्दों के माध्यम से घोर रोमानी वातावरण निर्मित करके परिवर्तन की टीस पैदा

कविता की सपाट शैली, बड बोलपन, शहीदी वक्तव्य और छायावादी कुहरिल शैली से निश्चित रूप से अलग है। सरलता के सम्मोहन मे फसी उनकी भाषा फिल्मी अदाजे बयानी के हल्के स्तर पर नही उतरी और अपेक्षया अर्थहीन पाण्डित्य-प्रदर्शन से भी बचने की कोशिश गीतकार ने की है।

छद

नवगीत केशवदास और हरिऔध की कविता की भाति निश्चित ही 'छन्दो का *अजायबघर' नही है। इस तथ्य को इन्द्र भी स्वीकार करते है। छद-मुक्ति की बात* उन्हे अस्वीकार्य है।[३४३] क्योकि छद ही वह उपकरण है जो नवगीत को यदि एक ओर नयी कविता से अलग कर अपनी पहचान बनाता है तो दूसरी ओर वह उसे समृद्ध भारतीय काव्य-परम्परा से जोडता भी है। देवेन्द्र का मानना है कि छद नवगीत के बहिरग से जुडा हुआ है किन्तु उससे भी अधिक वह नवगीत की आतरिक और रागात्मक सवेदना के साथ अविनाभावी और स्वत सभवी रूप से जुडा है। विशेष रूप स गीतकार की उत्तरार्ध गीत-साधना मे यही दृष्टि कार्य कर रही है।

कवि-समीक्षक

यद्यपि आज भी नवगीत को प्रकाश मे आने की वे सुविधाए नही मिल पायी हैं जिनमे उसके समग्र और बहुआयामी स्वरूप का उद्‌घाटन हो पाता नयी कविता के कवियों, पक्षधर समीक्षको और विश्वविद्यालयो के आचार्यों की प्रतिक्रियापूर्ण कोपदृष्टि से भी अधिक खतरा आज नवगीतकारो को चरम गीतकारों से है। हमे खुशी है कि गुटबदी से दूर इस गीतकार की साधना सकीर्ण और क्षेत्रवादी दृष्टि से ऊपर उठी हुई है। इनका गीतधर्मी व्यक्तित्व कवि-कर्म को एक गभीर मानवीय दायित्व समझकर सस्ती लोकप्रियता और कवि-सम्मेलनीय मचो से दूर रखता है।

गीत-साधना के अतिरिक्त इस गीतकार ने नवगीत के समीक्षात्मक आसगो को लेकर समय-समय पर ठोस और शोधपूर्ण सामग्री हिन्दी साहित्य को दी है। इनकी मौन साधना के कारण ही एक प्रबध-काव्य 'मैं साक्षी हूं', तीन नवगीत सकलन और दो गजल सकलन धैर्यपूर्वक छपने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। यदि यह व्यक्तित्व किसी खेमेबन्दी मे बधा होता तो निश्चय ही अपने को प्रतिस्थापित करने के लिए उसे अनावश्यक सघर्ष नही करना पडता।

मूल्याकन

देवेन्द्र के गीतो मे जीवन के साथ जुडने की फोर्स है। समय बडा बलवान है। समय की खराद निरन्तर इस गीतकार के लेखन को माज रही है। इस पुरानी पीढ़ी के कवि/

समीक्षक का गीतधर्मी व्यक्तित्व निश्चित ही खरा है। गुटबाजी में उलझे समीक्षक यदि इस गीतकार के व्यक्तित्व का मूल्यांकन नहीं करेंगे तो आनेवाला समय स्वयं इनका मूल्यांकन करवायेगा। बौद्धिकता का समावेश जो आज के गीत की अनिवार्य आवश्यकता बन गई है—देवेन्द्र के गीतों की अतिरिक्त विशेषता है क्योंकि इसके अभाव में साम्प्रतिक जीवन की स्थितियों का यथार्थ आकलन-विश्लेषण सभव नहीं हो पाता। अर्थहीन कोलाहल को देवेन्द्र ने सार्थक लयात्मकता दी है। नयी कविता की भांति उनके गीतों का तेवर आक्रामक नहीं है। राजनैतिक नारेबाजी से दूर इस गीतकार की ईमानदार *गीत-साधना निरर्थक नहीं जाएगी—ऐसा हमारा विश्वास* है।

१५. भारत भूषण

५४ वर्षीय कवि भारत भूषण[३५४] (जुलाई १९२९ ब्रह्मपुरी, मेरठ) पिछले २५-२६ वर्षों से कविता-कर्म कर रहे हैं। यद्यपि उनके प्रारम्भिक गीत गीत न होकर गीत का प्रारम्भिक बारह खडी थे लेकिन आठ-दस बरस बाद उनके गीतों में एक विशेष निखार आया। सन् ५८ में आत्माराम एण्ड सन्स से 'सागर के सीप' नाम का उनका एक गीत-संग्रह भी प्रकाशित हुआ किन्तु उनके ये गीत मूलतः किशोरवय के गीत थे अतः आज उनका मूल्यांकन उनकी प्रासंगिकता में न करके ऐतिहासिकता में ही किया जा सकता है। इसके बाद उनका कोई गीत-संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ—यद्यपि धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कादम्बिनी, नवभारत टाइम्स आदि साप्ताहिक, मासिक एवं दैनिक पत्र-पत्रिकाओं में उनके गीत पढ़ने को मिले हैं, लेकिन प्रस्तुत कवि की ख्याति का मूल आधार ये पत्र-पत्रिकाएं न होकर कविमंच हैं जहां वह अपने सुमधुर राग से गीतों को सामान्य जन के लिए प्रेषणीय एवं ग्राह्य बना देता है।

'प्लेटोनिक लव के शिकार

भारत भूषण मूलतः कलावादी है लेकिन उनका कलावाद पाश्चात्य कलावादियों की अपेक्षा किंचित् भिन्न है। वे ये मानते हैं कि वे कला को तुलसी की भांति स्वान्तः सुखाय मानते हैं लेकिन उसमें जनमानस की प्रेम एवं करुणाजन्य अनुभूतियां अवश्य निहित रहती हैं। फलतः सुनने अथवा पढ़ने वाला उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। कवि का ख्याल है कि वह प्रेम एवं करुणा जैसे रागात्मक सम्बन्धों के प्रति पूरा ईमानदार है किन्तु यह स्पष्ट करना ही होगा कि ईमानदारी अपने आप में न कोई मूल्य है न ही चेतना और न ही दृष्टि, ईमानदार तो मिल-मालिक का चौकीदार भी होता है जो अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी

उसकी वाली कमाई की रक्षा करता है लेकिन उस ईमानदारी के मायने क्या हैं? असल में, ईमानदारी के साथ एक स्वस्थ जीवन-दृष्टि भी होनी चाहिए जो लोक-जीवन को झकझोरती हुई स्फुरित करे और भारत भूषण में ये सब कुछ नहीं। वे आज के प्लैटोनिक लव के शिकार हैं और इसीलिए वे स्वीकार करते हैं कि अनुभूति में प्लैटोनिक प्रेम आज तक मेरे भावना-जगत में शासन करता है ...... प्रयोग मेरे विचार में लैबोरेट्री की आत्मा है, गीत की नहीं... "प्रयोग आज का फैशन बन गया है......बदलाव पहले जीवन में उतरना चाहिए तभी गीत में सहज रूप पा सकेगा।

मूल्यांकन

कहना न होगा, कि भावना के आधार पर एक यूटोपिया[४४] में जाने वाला कलाकार अपने को यह कह कर नहीं बचा सकता कि प्रयोग लैबोरेट्री की आत्मा है, गीत की नहीं और प्रयोग महज एक फैशन बन गया है। बदलाव के साथ सजग एवं दृष्टि-सम्पन्न कलाकार की भावानुभूति में भी मोड आता है और परिणामतः परिवेश-गत भाषा का परिवर्तन शिरोधार्य कर वह गीत रचता है। ऐसे में प्रयोग लैबोरेट्री का करिश्मा न होकर गीत की पारम्परिकता से जुड़ जाता है और जुड़ता है। इस तरह से प्रयोग को नकार कर उसका सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता। यह मूलतः परम्परा में जीने वाले कवियों की एक छद्मवेशी ढाल है, वे दशाब्दियों पहले की वही रोमानी जिन्दगी जी रहे हैं और जब बदलने का वक्त आता है तब बदलने वालों को गाली देकर एकान्त में जा बैठते हैं। पारम्परिक प्रयोग हुए हैं और हो रहे हैं—त्रिलोचन शास्त्री से लेकर चन्द्रसेन विराट तक।

१६ विकल साकेती

जिला अकबरपुर (फैजाबाद) उत्तर प्रदेश की देन जियारामशुक्ल विकल साकेती[४५] *का अभी तक कोई गीत-संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ है।* *'गीत और गजल'* नामक संकलन उनके अनुसार अभी प्रेस में है। विज्ञापन कला में कमजोर यदा-कदा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने के बाद भी 'साकेती' की ख्याति का मूल आधार कवि-सम्मेलनीय मंच है।

काव्य विकास

गीतकार का काव्य विकास प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण से प्रारम्भ हुआ। उनके गीतों को देखकर कहा जा सकता है कि आज भी 'विकल' की विकलता प्रकृति के खुले सौन्दर्य में डूब कर रोमांचित हो जाती है। गीतों की शैशव-अवस्था में व्यक्त ग्राम-सौन्दर्य पर आदर्शवाद का खोल चढ़ा हुआ है। समय की छलनी में छन जाने के

बाद कवि ने अपने अनुभव के स्तरो को खोला है। टूटते-जुडते इन अनुभव-क्षणो ने कवि को माजा अवश्य है उसी कारण उनके बहुत-से प्रकृति-गीत बहुचर्चित एव प्रशसित हुए है।[३२७] प्रकृति मे रमण करने के बाद विकास का दूसरा चरण शृ गारिक गीतो को लेकर आया किन्तु इसका अधिकाश वियोग शृ गार मे डूबा रहा। प्यार को कवि जीने का मूल आधार स्वीकार करता है।[३२८] गीतकार को प्रेयसी के नयन-बाण घायल कर देने के बाद भी तीना लोको मे प्यारे और प्यारे लगते है।[३२९]

गजलो मे विकल को अच्छी ख्याति मिली है। उर्द गजलो मे एक विशेष प्रकार का शिल्प और कला होती है। कुछ प्रतीको के माध्यम से इसमे हर प्रकार की भावात्मक एव विचारात्मक शैली का दर्शन होना है। गजलो म विद्यमान कथ्य शिल्प और भावुकता के इसी विचित्र सगम को विकल ने अपनाकर हिन्दी मे गजल[३३०] विधा को विकसित करने का प्रयास किया है।

कला, कला के लिए है—सिद्धान्त के विरोधी विकल के गीत गजलो मे कतिपय स्थला पर सामाजिक, आर्थिक एव राजनैतिक परिवर्तनो के स्पष्ट सकेत देखने को मिल जाते है।[३३१] गीतकार की मान्यता है कि हर कवि मूलत गीतकार है जिस तरह सस्कृति और सभ्यता मे अन्तर है—एक सस्कारो से सम्बन्धित, दूसरी अर्जित है। गीतो का सम्बन्ध सस्कार मे है और नयी कविता अर्जित ज्ञान से सम्बन्ध रखती है। सस्कारो की प्रबलता इसीलिए नयी कविता के हिमायतियो को बाथरूम गीत गुनगुनाने को विवश करती है।

जीवन को बूझने की ललक

जीवन के विरोधाभासो को समझते-बूझते हुए भी विकल 'साकेती' की लेखनी अभी इतनी सजी नही है कि उनके बहुरूपियेपन को वे नगा करने मे समर्थ हो, हाँ जीवन की विसगतियो को बूझने की ललक उनम अवश्य दिखाई देती है। वे ऐसे गीतकारो के विरोधी है जो देहात की चिलचिलाती धूप और गर्मी से बचकर महानगरों के एअरकन्डीशन कमरो और डनलपपिल्लो के विस्तरो पर आराम से लेट कर फावडा, कुदाली और पसीन के गीत लिखते हैं, मुर्गमुसल्लम खाकर भुखमरी की कवितायें रचते हैं। दूसरी ओर गावो मे वास्तविक श्रम करने वालो की अपेक्षा प्रेयसी और प्रियतम के गीत गाते हैं। इसी प्रकार आधुनिक ड्राइग रूमो मे मजदूरों, पनिहारिनो के चित्र टागे जाते हैं और दूसरी ओर झापडियो मे मैरीनड्राइव और कनाटप्लेस के कैलेन्डर तथा हिरोइनो के चित्र लटकते हैं।

मूल्यांकन

कुल मिलाकर, विकल 'साकेती' के पास अभी तक अपने गीतो और गजलों

को जनता तक पहुचाने का माध्यम कवि-सम्मेलन विशेष रहा है। उनके गीतो का धरातल और प्रतीक पुराना अवश्य हैं किन्तु उनका रुझान साहित्यिकता की ओर अधिक है। स्वरऔर सगीत का सामञ्जस्य भी उनके गीतो मे देखा जा सकता है। जहा तक जीवन की विसगतियों, विरोधाभासो को प्रकट करने का प्रश्न है 'साकेती' इसमे पूर्णत. असफल है। यह गीतकार की कला पर निर्भर करता है कि वह अनुभूतियो के साथ विचारो और समस्याओ का समावेश करने मे कितना कुशल है और 'साकेती' इस कला म अभी बहुत पीछे हैं। हम यह मानते हैं कि नवगीत मे ऐसी शक्ति है कि वह गीत के क्राफ्ट को बदल कर भी जीवन की विसगतियो और विरोधाभासो को सफलता से रूपायित कर सके। आज के जीवन की माग को आज के नवगीतकारो ने सफलता से वाणी दी है। चन्द्रसेन विराट, डा० रवीन्द्र भ्रमर, दुष्यन्त कुमार, दिनकर सोनवलकर आदि कितने ही गीतकार ऐसे है जो निरन्तर गीत-विधा को माज रहे हैं।

आज के गद्य-युग मे जो लोग नयी कविता, अगीत, अकविता से सम्बन्धित है वे स्वय कुण्ठाग्रस्त हैं। गीत साहित्य तथा सगीत दोनो मे सम्बन्धित हैं। खुलकर गाना और रोना जीवन की प्राकृतिक चिकित्सा है। आज भी जो श्रमिक वग खुल कर गाता और रोता है वहाँ कुण्ठा नही होती। भक्ति मार्ग मे भी सगीत के द्वारा तन्मयता और साधना की विशेष चर्चा है। जो लोग गीतिकाव्य के विरोधी हैं वे भी विशेप रूप से स्वरो के आरोह-अवरोह का प्रयोग करते हैं। भावना-प्रधान गीतकार होने के कारण विकल 'साकेती' भी गीत को मूलत भावना-प्रधान मानकर चलते हैं। शिल्प की कला से गीतो मे निखार आता है जैसे भोजन मे अनाज और सब्जी प्राय हर घर मे एक ही है किन्तु बनाने और परोसने की कला से उसमे निखार आता है। शिल्प कला के क्षेत्र मे विकल 'साकेती' अभी भी किशोरावस्था की दहलीज पर खडे हैं। गीत-क्षेत्र मे भी आलोच्य गीतकार कोई महत्वपूर्ण नाम नहीं है किन्तु अपने कृतित्व और व्यक्तित्व पर कवि ने जो शोध-परक सामग्री प्रेपित की है उसके आधार पर हम इतना विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि हिन्दी मे गजल-विधा के विकास करने वालो मे विकल 'साकेती' को चर्चित किया जा सकता है। *यद्यपि गीतकार के स्वयं के शब्दो मे उसे 'गजल-सम्राट' से विभूपित कर मान-*पत्र दिये जाते है।

समाहार

सम्प्रति, नवगीत परम्परा-विद्रोह के बावजूद एक ऐसी विधा है जिसमें एक तरफ 'भक्तिकालीन पद शैली' है,[३१२] तो दूसरी तरफ 'रीतिकालीन-बोध'।[३१३] कही 'नियतिवादी दर्शन'[३१४] का सकेत है तो कही 'औपनिपदिक दर्शन'[३१५] की गहराई,

तो कभी 'सामाजिक यथार्थवाद'[३६६] को मुखरित करने वाली भाव-भगिमा। इसमे सन्देह नही कि नयी कविता के समानान्तर साहित्य-जगत् मे अवतरित होने वाली यह गीति-विधा 'युग-बोध' को अभिव्यक्त करने के लिए उन्ही उपकरणो को पकडती है जो नयी कविता के पास हैं। ऐसी स्थिति मे प्रतीक, बिम्ब, शब्द और छन्द सभी उपकरणो मे से गीत-प्रकृति की रक्षा करनी होगी।

यह सत्य है कि 'नवगीत आदोलन' का कोई सूत्रधार नही था और इसकी विचारधाराओ को देख कर किसी एक का प्रतिनिधित्व भी असम्भव था किन्तु कथ्य एव शिल्प मे नित-नूतन परिवर्त्तना का ही परिणाम है कि चुकी हुई गीति-परम्परा का पुनर्स्थापन हो सका है। नवगीतकार 'राहो के अन्वेषी' तो हैं किन्तु 'नयी राहो' के नही बल्कि उन 'राहो' के जो अतीत के धुधलके मे छिप-सी गई हैं। निस्सन्देह नवगीतकार प्रयोग और युगीन-परिप्रेक्ष्य मे गीतो की प्रतिष्ठा का आकाक्षी है। मानवीय जीवन की परिस्थितियो को देखते हुए उसने अनुभव किया है कि आज के गीतकार का प्रमुख दायित्व यही है कि वह किसी भी प्रकार टूटते-बिखरे खलित होते हुए जीवन से गीत को जोडे। ऐसे मे कथ्य और शिल्प के नूतन प्रयोगो से काव्य के धरातल पर उसे प्रतिष्ठित करना आज के गीतकार का दायित्व है और, इस दायित्व-निर्वाह की परिधि मे ही गीत के प्रकाशन की प्रेरणा छिपी हुई है।[३६७]

'नवगीत' प्राचीन परिभाषा के अनुरूप नही है। कारण है, परिवर्तित होता हुआ युग-बोध। नवगीतो का आधार रागात्मकता है, जिसके अभाव मे इसका 'गद्य' बन जाना स्वाभाविक है। 'रागात्मकता से समजित बौद्धिकता' इसकी विशिष्टता है। नवगीतो की दृष्टि गैर-रोमानी (anti-romantic) रही है इसलिए इनमे जर्जरित प्राचीनता का बासीपन नही है। नवगीत का वैशिष्ट्य—गीत से सगीत का बहिष्कार, सवेगात्मक लय, तुकबन्दी का विरोध है। अतीत के धुधलके मे छिपी राहो को इन अन्वेषियो ने खोज निकाला है जिसके कारण आज नवगीत अलग विधा के रूप मे न-केवल प्रतिष्ठित है बल्कि इनका यह सधान आगे भी जारी है। □□

संदर्भ-सकेत

१ (क) "अपनी पीडा पर मुस्काऊ, सुख को मैं प्रतिपल ठुकराऊ
जो ऊपर ही उठता जाए, दे दो वह जीवन-ज्वार मुझे
दो तम का पारावार मुझे"

(ख)—"बिछ गया आज मैं जग-पथ पर बन दु ख की कहानी।"
उदयाचल, पृ० क्रमशः ४३, ३४।

२. द्रष्टव्य : डॉ० शिवकुमार मिश्र : नया हिन्दी काव्य, पृ० ३१२-३१३।

३. (क) "गायक भू पर उतार स्वर्ण किरन कोई
मुखरित कर मधुगान मेरे मन कोई"
(ख) "दाह के गायक तुम्हे आह से क्या काम
जीवन जागरण का नाम।"—उदयाचल, पृ० क्रमश २६, ३६।

४. "मृत मानवता की मिट्टी से, उगने को है नव अकुर दल"
—उदयाचल, पृ० क्रमशः १४, ५१, ४२।

५. द्रष्टव्य : डॉ० शिवकुमार मिश्र . नया हिन्दी काव्य, पृ० ३१४-३१५।

६. दिवालोक (पूर्व कथन)।

७. "आई नर्तन करती कविता की किन्नरिया
मधु से पागल खुल गई हृदय की पखुरिया
मलयज छन्दो मे कवि उर की रस-धार ढली
केसर के गीतो मे पतझर की प्यास खिली"—दिवालोक (पूर्व कथन),
पृ० ६१।

८. द्रष्टव्य : डॉ० कमलाप्रसाद पाण्डेय : छायावादोत्तर काव्य की सामाजिक और सास्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ० ३६५-३६६।

९. द्रष्टव्य : नयी कविता : अक-१, पृ० ५४।

१०. "निर्मित करते जो भाव नगर
भू पर भवनो के लिए अक्षर
झोपडियो मे वे जाते मर।"—उदयाचल, पृ० ३३।

११. "अपनी युग-युग की परवशता
मे भूल गए जो हास-रुदन
उनका भी है मानव का मन।"—वही, पृ० ३६।

१२. "करने को वर्ग श्रेणि समतल होने को है विस्फोट प्रबल
जिससे जग भीत, त्रस्त, चचल।"—उदयाचल, पृ० ४२।

१३. "न पास स्वर्ण की तरी। न पास पर्ण की तरी
न आस-पास दीखती। कही समुद्र की परी
अधर सिन्धु सामने। मगर न हार मानना
असीम शक्ति बाहु मे। अनन्त स्वप्न के व्रती।"—उदयाचल, पृ० २०।

१४. "जिनकी छाया मे मरण आज के क्षण भी पावन पर्व बने
मा एक होगे वे ही सपने।"—वही, पृ० ४६।

१५. "क्रान्ति को सतत पुकारता। शान्ति को मगर दुलारता

स्वप्न सत्य को सवारता.........
शक्ति भर जीवन सभाले। भार पर्वत सा उठा ले
और दुनिया को बचा ले।"—दिवालोक, पृ० ५७।

१६. "जीवन की चिता पर अग्नि
ज्वाला जब बने परिधान
तब भी गा सकू मैं गान...।"—उदयाचल, पृ० क्रमशः २०, २३।

१७. "अपनी पीडा पर मुस्काऊ, सुख को प्रतिपल मैं ठुकराऊं
जो ऊपर ही उठता जाय, दे दो जीवन-ज्वार मुझे
दो तम का पारावार मुझे..." रूपरश्मि, पृ० ४३।

१८. द्रष्टव्य . दिवालोक, पृ० ६।

१९. "प्रात बनकर मुस्कुराती जा रही हो
स्वप्न मेरे सच बनाती जा रही हो।"—वही, पृ० २६।

२०. द्रष्टव्य : वही, पृ० १४।

२१. "गति से भर जाते शिथिल चरण
... ...
खोई दुनिया मिल जाती है
जब तुम्हें देख लेता हू।"—वही, पृ० १४।

२२. द्रष्टव्य . दिवालोक, पृ० १७।

२३ द्रष्टव्य : वही, पृ० क्रमश ३६, ३८।

२४ "प्रेम का था देवता बनने चला मैं
पर गया ससार से कितना छला मैं
आरती अपनी सजो निज अश्रु से ही
एक जड पाषाण प्रतिमा-सा गला मैं।"—वही, पृ० २६।

२५. "काल के पथ पर सभलता चल रहा था मैं ...
मिट रहा पर दे रहा हू ज्योति जग को
किन्तु है मिटता नही मेरा अधेरा।"—वही, पृ० ६।

२६. "भर गया सजल घन से नभ का सूना आगन
सूने नयनो मे उमड पड़े दो भरे नयन।"—दिवालोक, पृ० ३

२७. द्रष्टव्य : वही, पृ० ६२।

२८. द्रष्टव्य : वही, पृ० ३।

२९. "धुले आकाश मे यह चादनी छाई
किसी को स्वप्न मे जैसे हसी आई
वहा आकाश धरती मिलकर रहे हस-हस

यहा मैं और मेरी मौन परछाई।"—वही, पृ० ५।

३०. "मुस्काऊ नयन कमल। खुल जाए उर के दल
लहराए जीवन, हट जाए तम के बादल।"—उदयाचल, पृ० २।

३१. द्रष्टव्य वही, पृ० २६।

३२. "दूर तुमसे हुआ यज्ञ मैं हू, मुझे
शापमय याद, वरदानमय विस्मरण
स्वप्न की रात है, सत्य के प्रात क्षण।"—दिवालोक, पृ० २।

३३ "हाल बीच मे सन्नाटे मे ज्यो गूज उठे आवाज़
झपकी दुनिया मे वैसी भभक उठी तुम आज।"—वही, पृ० ४५।

३४ द्रष्टव्य वही, पृ० ३।

३५. "टेर रही प्रिया तुम कहा
किसकी यह छाह और किसके ये गीत रे
बरगद की छाह और चेता के गीत रे
सिहर रहा जिया तुम कहा ?—नयी कविता : अक-१, पृ० ५४।

३६. द्रष्टव्य डॉ० शिवकुमार मिश्र नया हिन्दी काव्य, पृ० ३१६।

३७ "युद्ध का खेमा सजाते ही न रहना
एशिया की आन का भी ध्यान रखना।"—गीतम, पृ० १२६।

३८ "मेरी पीडा की गहराई मत पूछो तुम
इसमे दुनिया भर के सागर भर जायेंगे।"—वही, पृ० १०६।

३९ द्रष्टव्य डॉ० कमलाप्रसाद पाण्डेय · छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सास्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ० ३६६-३६७।

४०. लेखनी बेला : भूमिका, पृ० ४१,४८।

४१. लेखनी बेला · 'यह सृजन' भूमिका, पृ० ३।

४२. "ठडक की अगडाइया। गर्मी मेरी सास मे
जैसे पत्ता एक ही। कोई खेले ताश मे।"—वही, पृ० ९८।

४३. अविराम चल मधुवन्ति भूमिका, पृ० ७, ८।

४४. द्रष्टव्य वही, पृ० ८।

४५ द्रष्टव्य अविराम चल मधुवन्ति : काव्य-सग्रह का कवर।

४६. वही, पृ० ७३।

४७. अविराम चल मधुवन्ति, पृ० ७४।

४८ द्रष्टव्य डॉ० मजु गुप्ता आधुनिक गीतिकाव्य का शिल्प-विधान, पृ० २३८-२३९।

४९. "पहली-पहली बार मिले तुम पहली-पहली बार
देख रहे हो, आज अपरिचित गीतों का ससार।"—गीतम, पृ० ३९।

५०. "पास आकर मुस्कराओ, गीत गाओ, झूम जाओ
रूप-यौवन की डगर पर। आज मैं भी और तुम भी।"
—वही, पृ० ४६।

५१. "आओ निकट, मत डरो आग से
है प्रलय काल फिर भी बढ़ाओ चरण।"—लेखनी-वेला, पृ० ५०।

५२. "है अमावस घिर रहा है मेघ काला
किन्तु सारा नभ खतम है, साथ तेरे साथ रानी
काट देंगे हम अंधेरी जिन्दगी की रात रानी।"—गीतम, पृ० ६४।

५३. "गीत नुमाइश नहीं, कड़कती यह जीवन की धूप
इसकी छाया बनो, निखारो अपना शीतल रूप
समय काटना हो तो ढूंढो कोई अच्छा द्वार
गीत हाट मे तो है मन की सासो का व्यापार।"—गीतम, पृ० ४०।

५४. द्रष्टव्य : वही पृ० ४१।

५५ "मुझको चलने देना है तो प्यार करो मंजिल बन जाओ।"—लेखनी-वेला, पृ० ३०।

५६ "घटा उठे तो मेरा मन भी हो गाने को हसने को
बादल चुप बैठा है उससे भी तो कहो बरसने को।"—लेखनी-वेला पृ० ३४।

५७ "मुझमे तुममे इतनी समानता है केवल
मैं भी तेरी ही तरह सुमन कहलाता हू
तू मधुवन मे पाटल बनकर मुस्काना है
मैं दृग-जल मे बन नील-कमल लहराता हूं।"—गीतम, पृ० ४२।

५८. गीतम, पृ० ६३।

५६. द्रष्टव्य वही, पृ० ४३।

६०. "तुम न समझे हार को। अर्पित नयन उपहार को। दुःख है यही।"—वही, पृ० ७६।

६१. "चूल्हा जलता रहे जिन्दगी का सदा
इसलिए अनमोल गीत। मैं तुझे दे रहा माटी मोल"—लेखनी-वेला, पृ० १२२।

६२. "आसू नही निकलते मेरी आख से
इसीलिए हसता हू सबके सामने"—गीतम, पृ० ६७।

६३. "स्वप्न से मेरा कभी सम्बन्ध था। बात वह बीती कि जब मैं मन्द था
आज मैं गतिमय मुझे कटु सत्य के। पास लगती जा रही है जिन्दगी"—गीतम, पृ० ८२।

३०, ३३, ३३ ।

(घ) "आ गया परदेस से हू है सनीचर पाव मे"—गीतम, पृ० ३३ ।

९४. (क) मुडते ही मेरी ओर निहारो तुम, उडते बादल के केश सवारो तुम,

(ख) "तुम को कुर्बानी देना है रात मे"—वही, पृ० ४६, ८६ ।

९५ गीतम, पृ० ११०, ८७ ।

९६. "बैंजनी हवाए हम जेब मे न भर सके

रगो का । श्रीनिवास रथ आया । चला गया । ठगती थी जब हमे । झूठी सम्भावना···

सर्जन का एक मूड एक निमिष । झुझलाया अनगाया । चला गया ।

व्योम की हवाए हम जेब मे न भर सके

रसगर्वी । श्रीनिवास रथ आया । चला गया ।"

—धर्मयुग २ अक्तूबर, १९६६ ।

९७ डॉ० कमला प्रमाद पाण्डेय छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सास्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ० ४०० ।

९८ 'दो गुलाब के फूल छू गए जब से होठ अपावन मेरे

ऐसी गध बसी है मन मे सारा जग मधुबन लगता है।"

—गीत भी अगीत भी, पृ० १७ ।

९९ "तुम ही नही मिले जीवन मे । जब तक तेरा दर्द नही था

श्वास अनाथ उमर थी कवारी ।"—वही, पृ० ३२ ।

१०० द्रष्टव्य गीत भी अगीत भी, पृ० २५ ।

१०१. "मैं पीडा का राजकुवर हू तुम शहजादी रूप नगर की

हो भी गया प्यार हम मे तो बोलो मिलन कहा पर होगा ?"

—वही, पृ० १५ ।

१०२ (क) "जो अभी-अभी सिन्दूर दिए घर आई है···

जाकर बेचेगी निज चूडिया बाजारो में"—फिर दीप जलेगा, पृ० १०० ।

(ख) "मैं सोच रहा था क्या उनकी कलम न जागेगी

जब झोपडियो मे आग लगाई जाएगी

करवटें न बदलेंगी, क्या उनकी कब्रें जब

इनकी बेटी भूखी पथ पर सो जाएगी ।"—वही, पृ० १०१ ।

१०३ द्रष्टव्य सघर्ष, पृ० ३२ ।

१०४ "क्या पता इस नियास गगन के तले । यह हमारी आखिरी रात हो ।"

—मुक्तिकी, पृ० ४ ।

१०५ "कौन शृ गार पूरा यहा कर सका

सेज जो भी सजी अधूरी सजी
हार जो भी गूंथा सो अधूरा गुथा
बीन जो भी बजी सो अधूरी बजी।"—बादर बरस गयो, पृ० ११।

१०६. द्रष्टव्य : बादर बरस गयो, पृ० १६।

१०७. द्रष्टव्य : दो गीत, मृत्यु गीत।

१०८. (क) "धरती सारी भर जाएगी अगर क्षमा निष्काम हो गई"
(ख) "तेरी ममता भी न मिली तो जाने क्या करे गुजरिया।"
—गीत भी अगीत भी, पृ० ४७।

१०९. "मा मत हो नाराज कि मैंने खुद ही मैली की न चुनरिया।"वही, पृ० ४५।

११०. "पर यही अपराध मैं हर बार करता हू
आदमी हू आदमी से प्यार करता हू"—बादर बरस गयो, पृ० ६४।

१११. दर्द दिया . दृष्टिकोण, पृ० २६।

११२. "मैं उन सब का हू कि नही कोई जिनका ससार मे
एक नही, दो-दो नही, हजारो साक्षी मेरे प्यार मे।"—वही, पृ० ४६।

११३. "अधियारा जिसमे शरमाए। उजियारा जिससे ललचाए
ऐसा दे दो दर्द मुझे तुम। मेरा गीत दिया बन जाए।"—फिर दीप जलेगा, पृ० १२५।

११४. "दिन एक मिला था सिर्फ मुझे। मिट्टी के बन्दीखाने मे
आधा जजीरो मे गुजरा। आधा जजीर तुडाने मे"
—मुक्तिकी, पृ० १६।

११५. "उमरे दराज माग कर लाए थे चार दिन
दो आरजू मे कट गए दो इन्तजार मे"—बहादुर शाह जफर

११६. "रस का ही तो भोग जन्म है। रस का त्याग मरण है।"—विभावरी, पृ० १६।

११७. "सुख-दु ख हुए समान सभी पर, फिर भी प्रश्न एक बाकी है
वीतराग हो गया मनुज तो बूढे ईश्वर का क्या होगा ?"—विभावरी, पृ० ५४।

११८. द्रष्टव्य : आसावरी, पृ० ६५।

११९. "फिर तेरी क्यो चाह कि मैं ही। गाते-गाते रात गुजारू
बसते-बसते तार पडे जब। पोर-पोर उगली मे छाले
अब तो कर समाप्त सम्मेलन। अब तो कर आभार-प्रदर्शन।"—विभावरी, पृ० ५१।

१२०. (क) "सूनी देहरी सूना द्वार। डगर-डगर छाया अंधियार

गगन न दीखे कोई तारा। अम्बर निरबसिया कि बदरा बरस गये
अभी न जाओ पिया कि बदरा बरस गये।"
(ख) "अकुर फूटे रेत मा। सोना बरसे खेत मा
बैल पियासा भूखी है गैया। फुदके न अगना सोन चिरैया
फसल बवैया की उठे मडैया। मिट्टी को चूनर दो धानी
ओ ! मेरे भैया...... ......।"—बदरा बरस गयो, पृ० ४६।

१२१. "जीने का हक बस दिल्ली को सकल देश को फासी है
ऐसा आया वक्त कि सूरत जुगनु का चपरासी है
आधी को पत्र पढाओ। बिजली को कसम दिलाओ। ऐसा तूफान उठाओ
दिल्ली की निदिया खुल जाए, हलो की फालें तेज करो।"
—सघर्ष, पृ० ३७।

१२२ "दे रहा आदमी का दर्द जब आवाज दर-दर
तुम रहे चुप तो सारा जमाना क्या कहेगा
जब बहारो को खडा नीलाम पतझर कर रहा है
तुम नहीं फिर भी उठे तो आशियाना क्या कहेगा ?"—फिर दीप जलेगा, पृ० १६४।

१२३ "दामिनी द्युति ज्योति मुक्ताहार पहने। इद्रधनुषी कचुकी तन पर सजाए"
—प्राणगीत, पृ० ५५।

१२४ "बूद गोद मे लिए अगार मे। ओठ पर अगार के तुषार हैं
धूल मे सिन्दूर फूल का छिपा। और फूल धूल का शृगार है।"—
बादल बरस गयो, पृ० ८।

१२५. द्रष्टव्य आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि 'नीरज', पृ० १६।

१२६. नागर सभ्यता एव राजनीति
"राज बढा पैसे का ऐसे बिके कफन तक लाशो के
हो नीलाम आख का पानी, जैसे टिकट तमाशो का
कुत्ते जैसे मरें आदमी, भरे गटर मे खानो मे
जुल्मो का यु दौर सच्चाई बन्द हो गई थानो मे।"

१२७ "गाधी जी बस बने रह गए हेडिंग कुछ मजमूनो के"
आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि 'नीरज,' पृ० ३६।

१२८. स्थूल, असुन्दर एव बीभत्स उपमान
"देख धरा की नग्न लाश पर नीलाकाश उडा है
सागर की शीतल छाती पर ज्वालामुखी जडा है
सूर्य उठ रहा—बादर बरस गयो, पृ० १६।

१२९ "दबा लकड़ियों के नीचे पुरुषार्थ पार्थ का सारा
अरे कृष्ण पर क्षुद्र वधिक का तीर व्यग्य-सा करता
हाय ! राम का शव सरयू मे नगा तैर रहा है
सीता का सिन्दूर अवध मे करता हाहाकार।"—वही, पृ० १७।

१३०. नवीन उपमान
प्रकृति के क्षेत्र से "जैसे रात उतार चादनी। पहने सुबह धूप की धोती।"
साहित्य के क्षेत्र से (क) "दूध की साडी पहन तुम। सामने ऐसे खडी हो जिल्द मे साकेत की। कामायनी जैसे गढ़ी हो।"
(ख) "कनुप्रिया पढता न वह, गीताञ्जलि गाता नही।"

१३१. सामान्य जीवन-क्षेत्र से
(क) "बिन धागे की सुई जिन्दगी। सिए न कुछ बस चुभ-चुभ जाए
कटी पतग समान सृष्टि यह। ललचाए पर हाथ न आए"
—गीत भी अगीत भी, पृ० २७, ३०, ३३, ३६, ४८, ६४।

१३२ नीरज दर्द दिया है: दृष्टिकोण, पृ० ६।

१३३. "इतना दुःख रचना था जग मे। तो फिर मुझे नयन मत देता।"
—फिर दीप जलेगा, पृ० १५६।

१३४. खानी की खानी बदलेगी, सतलुज का मुहाना बदलेगा
गर शौक मे तेरे जोश रहा, तस्बीह का दाना बदलेगा।"
—मुक्तिकी, पृ० ५६।

१३५. नीरज दर्द दिया है दृष्टिकोण पृ० क।

१३६ "फूल डालो म गुथा ही झर गया। घूम आई गध ससार मे।"—
विभावरी, पृ० ४०।

१३७ द्रष्टव्य आसावरी, पृ० ४१।

१३८. "मत रुके पर प्रीति की अर्थी लिए
आसुओ का कारवा चलता रहा।"—मुक्तिकी, पृ० २६।

१३९. (क) द्रष्टव्य दर्द दिया है, पृ० १६, २४, २७ आदि।
(ख) बादर बरस गयो, पृ० २, ६, १०, १७ आदि-आदि।

१४०. "मेरी कोशिश यह है कि वस्तु तो बौद्धिक हो क्योंकि यह हमारे युग की सच्चाई के अधिक निकट होगी किन्तु अभिव्यजना रागात्मक होनी चाहिए—बौद्धिक अनुभूतियो को पचाकर उन्हें सवेदनात्मक बनाकर ही मैं प्रस्तुत करना चाहता हू।"
—बालस्वरूप राही . गीत-१, पृ० ४६ (बातचीत का एक टुकडा और स्फुट विचार)

१४१. वही : धर्मयुग, २० मार्च १६६६ : नया गीत, पृ० १७।

१४२. (क) "गीत नया जन्मा। लय को मानवता से मन को संवेदन से जोडेगा।
लेकिन भावुकता की रीत गए छन्दों की रूढ़िया तोडेगा।"
—जो नितान्त मेरी है, पृ० २।
(ख) "सोनजूही की सुरभि नही भाती। हमें कैक्टस ने ललचाया है"
—वही, पृ० ३।

१४३. "हम को क्या लेना है विदेशी केशर से। बूढे हिमपात
सडते तालावों मे खिले हुए बासी जलजात से। हमको तो लिखने हैं गीत
नये पिघले इस्पात से"—वही, पृ० ८६।

१४४ "चाहे वे कडवी हो, चाहे वे हो असत्य। मुझ को तो प्यारी हैं वे ही
अनुभूतिया जो नितान्त मेरी हैं"—जो नितान्त मेरी हैं, पृ० ७८।

१४५. मेरा रूप तुम्हारा दर्पण · स्वीकारोक्ति, पृ० ७।

१४६ जो नितान्त मेरी है भूमिका (सम्बोधन)।

१४७ "ग्लैमर का नशा टूटता है जब। बडी थकन होती है
आखा में स्वप्न नहो, अश्रु नहीं, सिर्फ चुभन होती है"—वही, पृ० ५९।

१४८. जो नितान्त मेरी हैं (सम्बोधन) भूमिका।

१४९ 'टूट गए सभी वहम और गलतफहमियां। लेकिन जिद बाकी है
जिस दिन यह टूटेगी उस दिन ही हारूगा।"—वही, पृ० ५८।

१५०. "घिस गए जिन्दगी के सारे मन्सूबे। दफ्तर की सीढी चढते-उतरते"
—जो नितान्त मेरी हैं, पृ० ७७।

१५१. बालस्वरूप राही नया गीत धर्मयुग, २० मार्च १९६६, पृ० १७।

१५२. "पूजा की माला मे कैसे तो गुथ गया। एक फूल गजरे का
अर्चन के बोलो से आ जुडी। मुजरे की एक कडी
गगा के बीच नही। छिछले तालाब मे उतरती हैं
मदिर की सीढिया। फूल नही दीप नही
उनसे टकराती हैं। पानो की पीक और बीडिया
सामने दुकानें हैं, होटल है, बार हैं। जहा रोज मरती है कोई मोनालिजा
फ्रेम मे जडी-जडी"—जो नितान्त मेरी है, पृ० ४५।

१५३. "तारकोल में लिथडी औरतें, गोर मे सने हुए मर्द
नये-नये शहरो की रचना मे व्यस्त हैं
सभी जगह टगी हुई नेम प्लटे बुड्ढो की
नौजवान त्रस्त है"—बालस्वरूप राही कादम्बिनी. जून १९६०, पृ० २७।

१५४. "धीरे-धीरे टूट किसी को कानो कान पता न चले
यहा आत्म-हत्याए वर्जित, मृत-जीवन कानूनी है"

—जो नितान्त मेरी हैं, पृ० ३५।

२५५. मेरा रूप तुम्हारा दर्पण (भूमिका), पृ० ४।

२५६. "यो तो हम जीवन मे कई बार बिछुडे। आखो मे बसे हुए दृश्य नहीं उजडे।"—जो नितान्त मेरी है, पृ० १६।

२५७. "गाऊ जब तक गीत, मीत तुम जगते रहना।"
—मेरा रूप तुम्हारा दर्पण, पृ० १७।

२५८. द्रष्टव्य : वही, पृ० १७।

२५९. "कौन सहारा होगा इसमे बडा पथिक को
कोई उसका अपलक पथ निहार रहा है"
—मेरा रूप तुम्हारा दर्पण, पृ० २१।

२६०. "तुम न बुझाना दीप द्वार का प्राण, रात-भर
मेरा जगमग पथ अधियारा हो जाएगा"—वही, पृ० २०।

२६१. "कटीले शूल भी दुलरा रहे हैं पाव को मेरे
कही तुम पथ पर पलकें बिछाए तो नही बैठी"—वही, पृ० ७६।

२६२. "मैं हर दीप को सूर्य बना कर मानूगा
तुम मुझ मे अपनी किरणो का विस्तार करो"—वही, पृ० ५१।

२६३. "पर प्राण आज सिरहाने तुम आ बैठी तो
मैं सोच रहा हू हाय मरू भी तो कैसे"—वही, पृ० २२।

२६४. "स्नेह-भीगा स्वर प्रशसा के वचन से कम नही है
प्यार की धरती मुझे यश के गगन से कम नहीं है
गीत सुन मेरा तुम्हारी आख से आसू गिरा जो
वह किसी अनमोल मोती या रत्न से कम नही है"
—मेरा रूप तुम्हारा दर्पण, पृ० ३६।

२६५. "मत खनकाना चूडी तुम पायल न बजाना
खुल जाने पर प्रीत कहानी हो जाती है"—वही, पृ० २६।

२६६. रामचन्द्र शुक्ल : त्रिवेणी, पृ० ७४.

२६७. "तुम्हें विजय मिल गई, रहा त्यौहार मनाता दिन भर
तुम हारी तो लगा कि जैसे मैं हार गया हू"
—मेरा रूप तुम्हारा दर्पण, पृ० ३१।

२६८. "तुम्हें देखता हू जब-जब भी कुछ ऐसा लगता है
जैसे दर्पण मे अपना ही रूप निहार रहा हू"—वही, पृ० ३०।

२६९. (क) "घन घहराए, वक्ष घहराए पायल मन के
फिर अकस्मात् ही छलक गए घट लोचन के
रह स्वर मे आह भरी मनुहार कराह उठी

रीते ही बीत गए क्षण मधुर समर्पण के"—वही, पृ० ४३ ।
(ख) "हाथ जोड करती हू तुम से केवल यह मनुहार
ओ कारे कजरारे बादल, घिरो न मेरे द्वार"—वही, पृ० २८ ।

१७०. गा रहा हू कि मेरी आत्मा सुख पा रही है
गीत से बहला रहा हूं दर्द जो मैंने सहे हैं"—वही, पृ० ३५ ।

१७१. "मेरी ऐसी पीर कि जिसका मुझ से ही सम्बन्ध
फूल अगर हू मैं गुलाब का वह है मेरी गन्ध
मैं न कभी चाहूगा घर-घर वह जोगिन का वेश
द्वार-द्वार पर अलख जगाए बन दर्दीले छन्द
मेरी पीर बहुत कोमल है दुनिया बडी कठोर
वह दुलार पाएगी सबको इसका क्या विश्वास"
—मेरा रूप तुम्हारा दर्पण, पृ० १८ ।

१७२. "लगाया गया दाव पर प्यार जब-जब
विजय का पुरस्कार बनकर मिल गया, गम
रक्त गाठ की तो लुटा दी कभी की
ऋणी हो चले हर किसी के यहा पर"—मेरा रूप तुम्हारा दर्पण, पृ० ६० ।

१७३. मानता हू प्यार से पीडा बडी है
और जिसको भी कभी उसने छुआ है
धूल से सोना वह भूल है यह
सोचना भी गम किसी का"—वही, पृ० ५६ ।

१७४. "खुल कर गाने की अभी इजाजत मिली वहा
कुछ कठ रुन्धा, कुछ बधा-बधा स्वर गायक का"—वही, पृ० ३० ।

१७५. "मृत धरा लेटी हुई है स्वर्ण को शव पर लपेटे
मर्सिया पढते खड़े हैं लौह के निष्प्राण बेटे
यज्ञ के दूतो, यहा मत जिन्दगी के गीत गाओ
यह न आगन प्यार का है, आदमीयत की कबर है"
—मेरा रूप तुम्हारा दर्पण, पृ० ६० ।

१७६. "जीवन के महक भरे स्वप्न कहा बोऊ मैं
आधे मे मृत्यु और आधे मे धर्म है"
—बालस्वरूप राही : शताब्दी अक : जनवरी-मई १९६७, पृ० १४३ ।

१७७. "हम सब कठपुतली है हाय नही सूत्रधार
भटके से फिरते हैं खटकाते द्वार-द्वार"
—मेरा रूप तुम्हारा दर्पण, पृ० ६० ।

१७८. "हू नही कायर दिखा दूं पीठ जो मैं
वेदना को दर्द से आखें चुराऊ
है इजाजत देखना मत शक्ल मेरी
फिर कभी तुम मैं अगर आसू बहाऊ
आदमी हू चोट खाना जानता हू
और सीना भी मेरा बहुत बडा है"—वही, पृ० ५६ ।

१७९. "दर्द देना है तुम्हें ? दो ! पर ना इतना । आख पथराए अधर पर मौन छा जाए"—मेरा रूप तुम्हारा दर्पण, प० ५७ ।

१८० "पक्ष लिया जब-जब सच्चाई का । बहुमत से हारा हू
वे सब हैं शीलवान । सहते अन्याय जो किन्तु मूक रहते हैं
मैं तो आवारा हू । गीत विह्वल भीडो ने बार-बार रौंदा है
शुभचिन्तक लोगा के बावजूद । अचरज है अब भी जीवित हू ।
—जो नितान्त मेरी हैं पृ० ७० ।

१८१. "दरपन दो जिससे मैं पर्तहीन दिख पाऊ । साहस दो, जैसा भी मैं देखू
मैं वैसा ही लिख पाऊ" —बालस्वरूप राही गीत-१, पृ० १० ।

१८२ "अपने से ही किसी साधारण व्यक्ति के प्रति
समर्पण करते मुझ से बना नही है'—मेरा रूप तुम्हारा दर्पण, पृ० ५६ ।

१८३ 'मैंने भी चाहा था अपनी चदरिया उजली रख पाऊ
जैसी मुझे मिली थी तुम स वैसी ही तुम को लौटाऊ"—वही, पृ० ७७ ।

१८४ 'मृत्यु किसी जीवन का अन्तिम लक्ष्य नही
साथ देह के प्राण नही मर पाते है —जो नितान्त मेरी हैं, पृ० ११ ।

१८५ 'प्रश्न नही कोई अन्तर मे, शका भ्रम अवसाद नही है
तुम हो कौन और क्या परिचय है मेरा, कुछ याद नही है
तोड दिए पतवार तर्क के, पाल बुद्धि की स्वय हटा दो
गान तरी तो डूब गई, पर मैं सागर के पार हो गया"
—मेरा रूप तुम्हारा दर्पण, पृ० ७३ ।

१८६ (क) 'तुमने तो इसस भी ज्यादा बोझिल पापो को ढोया है
बाह थाम कर फिर मेरी लोगे क्या न उबार बताओ ?'—वही, पृ०७३ ।
(ख) 'जिनको ठुकरा देती दुनिया वे जाते द्वार तुम्हारे
है ठुकराया हुआ तुम्हारा जाऊ किसके द्वार बताओ"—वही, पृ० ७८ ।

१८७ (क) 'मेरा नाम तुम्हारा, परिचय, मेरा रूप तुम्हारा दर्पण"
—वही, पृ०७७ ।
(ख) 'मेरा मन बन गया मुरलिया, मेरी साम तुम्हारा सिमरन"
—वही पृ० २१ ।

१८८. द्रष्टव्य : शताब्दी अक . जनवरी-मई १९६७, पृ० ५७।
१८९. द्रष्टव्य : शताब्दी अक जनवरी-मई १९६७, पृ० ५७।
१९० मेरा रूप तुम्हारा दर्पण . स्वीकारोक्ति, पृ० ६।
१९१. वही, भूमिका, पृ० ६।
१९२. "सब कुछ समाप्त हो जाने के पश्चात् भी । कुछ ऐसा है।
जोकि अनछुआ रह जाता है"—जो नितान्त मेरी है, पृ० १०।
१९३. द्रष्टव्य जो नितान्त मेरी है . भूमिका (सम्बोधन)
१९४. द्रष्टव्य मेरा रूप तुम्हारा दर्पण, पृ० २०।
१९५. वही, पृ० २०।
१९६. (क) "हर ताजमहल की नीव गलाती है अपना
कोई जर्जर होकर भी छुट नही पाता
कोई डगमग हो दो दिन मे ढह जाता"
—मेरा रूप तुम्हारा दर्पण, पृ० ६२।
(ख)—"यक्ष के दूत ! यहा मत रोकना रथ"—वही, पृ० ६४।
१९७ "मेघ के पाहुन बहुत दिन बाद आए
जिस तरह कामकाजी जिन्दगी मे
एक अरसे बाद कोई याद आए"—वही, पृ० ६६।
१९८. "पर यह तो नटखट गीतो की बहुत पुरानी टेक"
—मेरा रूप तुम्हारा दर्पण पृ० १८।
१९९. "लरज-लरज जाता मन मेरा पीपर पात समान"—वही, पृ० २८।
२००. "सरल हृदय बालक सा सोया पौन है"—वही, पृ० ४२।
२०१. "कुछ और बढ गयी उमस और बढ गई घुटन"—वही, पृ० ४३।
२०२. "मैं न बुलाने गया कभी गीतो को इनके द्वार
ये ही पता पूछते आये मेरे द्वार"—मेरा रूप तुम्हारा दर्पण, पृ० १८।
२०३. "हम को तो लिखने हैं गीत । पिघले इस्पात से"
—धर्मयुग, २२जनवरी १९६७।
२०४. "मैंने कुछ तुकें इस तरह जोडी । बडी नई लगती हैं
खुरदरी भले ही हो पर मेरी कुछ कविताए । गीतिमय लगती हैं"
—जो नितान्त मेरी है (का कवर पृष्ठ)
२०५. द्रष्टव्य गीत-पत्रिका, २, पृ० ५०।
२०६. "रहो खामोश फैलाओ न अफवाहें । तुम्हारे बोलने से ध्यान बटता है
नशीले भाषणो का यह असर होता । कलो से कामगर का हाथ हटता है।
मजे से रात भर सोऊ, सुबह तकदीर फरमाऊ । मुझे फुरसत नही है, मैं
मशीनें देश की जय बोलता हू"—नया खून, पृ० ४४।

२०७ "जिन्दगी मे सर झुकाया दो जगह । सोते हुए सौन्दर्य को, जागे हुए इसान को, वासना मेरी अधिक कुछ भी नही । सिर्फ निंदियारे कमल से मोह है दुश्मनी मेरी किसी से भी नही । हा, अधेरे से तनिक-सा द्रोह है"
—गुलाब और बबूल वन, पृ० १३ ।

२०८. "इस सदन मे मैं अकेला ही दिया हू । मत बुझाओ
जब मिलेगी रोशनी मुझ से मिलेगी"—आठवा स्वर, पृ० ४५ ।

२०९. "मन दिया है जिन्दगी को दो जगह । हारे हुए विश्वास को, लडते हुए ईमान को ।
कुछ दिनो सुख की गली पहरा दिया । कुछ दिनो बदी रहा सताप मे
नाम का ही भेद है अन्तर न कुछ । तृप्ति के सुख मे तृषा के ताप मे ।
घाव का अतर दिखाया दो जगह । जाते हुए तूफान को, आते हुए सुनसान को" ।
—गुलाब और बबूल वन, पृ० १३ ।

२१० ' अधिकार मागता नही किसी से
करे याचना वह जिसमे कुछ शक्ति नही हो "—नया खून, पृ० ६ ।

२११. "गगा मैया तेरे तट पर बस कर भी मैं रहा पिपासित
अपने प्यासे अधर दिखाकर, सागर से यह बात कहूगा"
—आठवा स्वर, पृ० १९ ।

२१२. "विश्व मे परिवर्त्तनो का नाम केवल जिन्दगी
... .
जिन विचारो को बदलने की कभी आदत नही
उन विचारो को सदा श्मशान कहना चाहिए
शक्तिशाली जीवनो का नाम केवल जिन्दगी "—नया खून, पृ० १३ ।

२१३. "कर्म करते हैं निरन्तर, पर कभी कहते नही
शीश देते हैं मगर अपमान को सहते नही"—आठवां स्वर, पृ० ४९ ।

२१४ द्रष्टव्य वही, पृ० ४९ ।

२१५ "वन्दनीय है दिए की वर्त्तिका
जो सुबह देखे बिना ही सो गई'—वही, पृ० ८६ ।

२१६ "आधियो के साथ जन्मा हू उन्ही से खेलता हू
... ...
जब कहो तब मुस्कुराए वह खिलौना मैं नही हू"
—आठवा स्वर, पृ० १११ ।

२१७ 'मेरे पीछे इसीलिए तो धोकर हाथ पडी है दुनिया
मैंने किसी नुमाइश घर मे सजने से इन्कार कर दिया"

—वही, पृ० १०६, १०६।

२१८. "दीप जितने भी जलाओ साथियो लेकिन उन्हे। अपनी हिफाजत के लिए तलवार भी दो

... ...

दीप मालाए सजाना तब उचित है। जबकि आधी से उलझने का हृदय हो आग को ललकारने का इरादा हो। बिजलियो से बात करने का समय हो गीत पूनम के सुनाओ साथियो लेकिन उन्हे। सूरज उगाने के लिए ललकार भी दो।"—गुलाब और बबूल वन, पृ० ४६-५०।

२१६. द्रष्टव्य आठवा स्वर, पृ० ४६।

२२० "रौशनी सास गरमाती नही है। चादनी ज्यादा मुझे भाती नही है
तुम मुझे सूरज किरण बन विष पिलाओ।
मैं करू इन्कार तो कायरता समझना
आधियो का कारवा भी साथ मे है, फूल की काया माना सुहाती
दासता मे पर मुझे दुर्गन्ध आती। तुम मुझे स्वाधीन शूलो स मिलाओ
मैं करू इन्कार तो कायरता समझना......।"
—गुलाब और बबूल वन, पृ० ७२।

२२१. द्रष्टव्य आठवा स्वर, पृ० ४६।

२२२. "अर्थ रोता रहा, शबद गाता पडा। इस तरह रात भर मुस्कुराना पड़ा"
—वही, पृ० ४८।

२२३. "द्रष्टव्य : गुलाब और बबूल वन, पृ० ७४-७५।

२२४ जो अनल का पुत्र होकर जन्म देता है दिए को
मैं उसी तापसी अगारे का दहकता तन बनूगा"—वही, पृ० ७३।

२२५. द्रष्टव्य . आठवा स्वर, पृ० १०६, ११०।

२२६ "बज रहे है मृत्यु के दो घुघरु जो। अनसुना उसको बनाने के लिए ही द्वार पर शहनाइया बजवा रहा हू। ब्याह का उत्सव नही, परिणय नहीं है"—वही, पृ० ११३।

२२७ "न अपनी ही कथा हम से अभी तक हो सकी पूरी
तुम्हारे दर्द का अनुवाद कब करते"
—गुलाब और बबूल वन, पृ० २।

२२८. "(क) तन का सारा अपयश घुल जाएगा। थोडा-सा दु ख का हलाहल पी लो"—आठवा स्वर, पृ० १७।

(ख) "तुम दर्द को सहेजो। कुछ तोलकर नजर मे"—गुलाब और बबूल वन, पृ० ८।

२२६. (क) "ज्ञान सबकी व्यक्तिवादी चेतना है। प्यार हर इसान का परमात्मा

है"—आठवा स्वर, पृ० २३, २७, ८६।

(ख) "चदा पाने को बादल जैसा बन। उस बुद्धि चकोरि पर विश्वास न कर"—वही, पृ० २१।

२३०. "सुख तो कोई दुर्लभ वस्तु नही। जब चाहो आदर के बदले ले लो"
—वही, पृ० ६४।

२३१ (क) आज गगाजल भरे कचन कलश का क्या करूगा
हो सके तो मुझे बस आख से आसू पिला दो"—वही, पृ० २६।
(ख) 'दर्द ऐसी सम्पदा है सिर्फ जिसको। एक पागल भी कभी खोता नही है"—वही, पृ० ४१।

२३२. "तन को निखारना तो जल के समीप जाओ
मन को कमल बनाना तो दर्द मे नहाओ"
—गुलाब और बबूल वन, पृ० १।

२३३ "सच कहता हू यदि तुम मुझ को दु ख का रत्न नही देते
इस अक्षम्य कृपणता को भी मैं अपना समझता"
—आठवा स्वर, पृ० १०७।

२३४. "गुनाहो को न तुम जोडो। अभी मेरी जवानी है"—वही, पृ० ३३।

२३५ "न पूजा राक पाती है। तपस्या डोल जाती है
तटो न नाव को बाधा। लहर चुप खोल जाती है—वही, पृ० ३४।

२३६. "कर चुका हू हजारो गलतियां मैं। अन हुई उनको बनाने के लिए ही
ये क्षमा की झालरें सजवा रहा हू। जिन्दगी का आखिरी निर्णय नही है।"
—वही, पृ० ११३।

२३७. द्रष्टव्य वही, ६२।

२३८ सौ सौ सौगन्ध उठाकर कहता। अब न किसी को कहलाऊगा
मुझे माफ कर दो जग वालो। अब न कभी मन बहलाऊगा"
—आठवा स्वर, पृ० ५८।

२३९. "जूझते रिवाजो और सस्कारो से, मेरा यह जीवन तो युद्धो मे बीत गया"
—गाता हुआ दर्द 'मेरा जीवन' शीर्षक गीत से।

२४०. "जल जब करने लगा बगावत, हाथ नचाकर बर्तन बोला,
कोई जिम्मेदारी कब थी, इन पर पहरदारी कब थी"
—वही, 'चन्दन बोला' शीर्षक गीत।

२४१ "जिनके लिए चमन के कपडे उतार लिए
वे देवता कब के नीलाम हो चुके"—वही, 'मोती यहा नही' शीर्षक गीत।

२४२. द्रष्टव्य आठवा स्वर, पृ० ५८।

२४३. चादी के संकेतो पर ही । अब तक रोज सभ्यता नाची
जड से पुरस्कार पाने को । पण्डित ने रामायण बांची
शरणागत पल्लव, दुनिया ने, आधी को नीलाम कर दिए
दुनिया वालो शोर मचाकर तरुवर से यह बात कहूगा"
—वही, पृ० २० ।
२४४. "मन्दिर ने तो बस इसीलिए तो, मेरी पूजा ठुकरा दी है
मैंने सिंहासन के हाथों पुजने से इन्कार कर दिया"—वही, पृ० १०६ ।
२४५. "जितने मैंने गीत लिखे हैं । लम्बी इस बीमार उमर मे
उन सब को बेचू तो शायद । आधा कफ़न मुझे मिल जाए"
—आठवा स्वर, पृ० ११६ ।
२४६. "प्रतिभा निर्धन की बेटी । इस शापित को कौन वरेगा ?
—क्षेमचन्द सुमन : आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि रामावतार त्यागी,-
पृ० ४६ ।
२४७. "मेरे गीत रहे जीवन भर चाहे कारावास भोगते
लेकिन मैं गुमराह स्वर्ण को अपनी कलम नही बेचूगा
सूनी काल-कोठरी मे ही सारी उमर बिता दूगा मैं···
लेकिन किसी मोह को अपने कवि का धर्म नही बेचूगा"—
वही, पृ० ५५-५६ ।
२४८. "मातमी वस्त्र पहने हुए चन्द्रमा
खोजता ही किसी को चला आ रहा है"—आठवा स्वर, पृ० २८ ।
२४९. द्रष्टव्य : गीत-पत्रिका-२, पृ० ५२ ।
२५०. "सुनो ! तुम्हारे उपमानों पर मुझे । भरोसा नही रहा"
—वही, पृ० ५२ ।
२५१. "गीतों का दर्पण छोटा है । जीवन का आकार बडा है"—वही, पृ०४२ ।
२५२. द्रष्टव्य : आठवां स्वर, पृ०, २६, ६३ आदि ।
२५३. (क) "धुल गई भूमि की सारी उदासी । क्योकि भावुक घन अभी रोकर
थमा है"—वही, पृ० २४ ।
(ख) "आवारा बादल मेरा सगी साथी है । सौम्य सितारे मेरी नीद चुरा
लेते हैं"—वही, १०३ ।
२५४. "जैसे कोई बनजारा लुट जाए । ऐसा खोया-खोया है मेरा मन"
—वही, ३७ ।
२५५. "मेघ पूजी से कृपण बन गए तो । एक भी बादल छाएगा न गगन मे"
—वही, पृ० ६० ।
२५६. (क) "अबकि नल का साथ दमयन्ती न देगी । नाम भी तो प्यार का

लेगा न कोई"—आठवा स्वर, पृ० ८६।

(ख) "ये यौवन की रामायण जैसे हैं"—वही, पृ० १८।

(ग) "चुनना है बस दर्द-सुदामा। लडना है अन्याय कम से

... ...

चिन्तन की लक्ष्मण रेखा को। थोड़ा आज लाघना होगा"

—क्षेमचन्द सुमन आज के लोकप्रिय कवि रामावतार त्यागी, पृ० ३६।

२५७. (क) "स्वप्न शिशु का सभाले वक्ष पर। जन्मदिन मैंने मनाया प्यार का" —आठवा स्वर, पृ० ७७।

(ख) "घिर रहा है सब दिशाओ मे अधेरा। रोशनी का खून कर डाला किसी ने। लाश फूलो की तडपती है चमन मे। विप हवा मे आज भर डाला किसी ने"

२५८ "बराए नाम जीते हैं, बराए नाम मरते हैं"—वही, पृ० ६७।

२५६ "पास प्यासे के कुआ आता नही है। यह कहावत है अमर वाणी नही है" —वही पृ० ७०।

२६० "तुमने जाकर पतझर को बोल दिया"—आठवा स्वर, पृ० ६४।

(क) "साथ पतझर के जमाने की तरह क्या। लाश फूलो की न दफनाने चलोगे"—वही, पृ० ५६।

२६१ "था मुझे लाजिम कि मैं जाता समर लडता अनय से,
मैं न करता सन्धि आमन से, अधेरे के निलय से
सीखचो मे पड रही जो उम्र सपनो की विताली
कर रहा स्वीकार इसका एक जिम्मेदार मैं हू'
—गुलाब और बबूल वन, पृ० ४१।

२६२ (क) "है अभी दिन और घर भी दूर कुछ ज्यादा नही
दो घडी हमदर्द के भी गाव मे होते चलें'
—गुलाब और बबूल वन, पृ० ६७।

(ख) "दर्दों की घाटी मे घर रहना पड जाए। सूनापन-सूनापन चलता हूँ निर्जन मे"—वही, पृ० २४।

(ग) "हम ये उदासिया थीं खामोश गुलमुहर था
हम दर्द भी न गाते तो क्या बयान करते"—वही, पृ० २१।

(घ) "छिडक सब सपने धानी दे। धूप की जगह जवानी दे
देर से खिलता है यह फूल। दर्द को वर्षों पानी दे"—वही, पृ० ६।

२६३. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ६ से १२ फरवरी १६८३।

२६४. "प्रिय यह तो हृदय की बात, तुम जानो कि मैं जानू

विसुधि मे भीगता-सा तम विसुधि मे भीगते-से हम
प्रणय की वीणा पर लहरा रहा दो प्राणो का सरगम
प्रिय यह राग की बरसात तुम जानो कि मैं जानू"
—जीवन-तरी, पृ० ६।

२६५ "नि सीम व्योम मे कूक वचना मे क्षण-भर। गिर पडी धरा पर आशा ले आकुल लघु पर..
लो मुरझाते स नयन किसी के घिर आए"—वही, पृ० १४।

२६६ "ढुलक पडे दो मोती नयनो के प्यासे अचल मे
तिर आया मृदु रूप लजीला चदन से शीतल दृग जल मे.........
..... हसनि आया स्वप्न तुम्हारा"—वही, पृ० २२।

२६७ 'सजल निशा रानी की भीगी कबरी के सित फूल झर रहे
अभिनय कुकम से दिग्-वधुआ के अधरा के कूल भर रहे
सुधा-स्नान चादनी बरस कर अलसाया-सा चाद जा रहा
मलय सुवासित तुहिन बिंदुओं से झुके भुज मूल भर रहे।"
—जीवन-तरी, पृ० ११।

२६८. "तार वीणा के मधुर छिप-छिप बजाता कौन
चल रही मकरद आधी, आह मे मेरी सिमटकर
कापती सुधि की तरी नील दृगचल म सिमटकर
ऊर्मि इगित से मुझे फिर भी बुलाता कौन"
—नीलम, ज्योति और सघर्ष, पृ० १४।

२६९ ' मानता कुछ सत्य ही इस विश्व का आधार है प्रिय
मानता हू सत्य पर गतिमान यह ससार है प्रिय
किंतु निज मे सत्य का आकार क्या है रूप क्या है
वीन है धरती हमारी सत्य तो झकार है प्रिय"
—नीलम, ज्योति और सघर्ष, पृ० ५८।

२७० "धरा अलसित गगन रस मय जभीवदली उठी होगी
तभी प्रकृति के कठ से कजली उठी होगी
बहा होगा कुवारे ओठ से खलिहान का बिहरा
लिए जब चादनी को चाद की बहली चली होगी"—वही, पृ० ६३।

२७१ द्रष्टव्य 'गाव का गीत,' किसान का गीत, 'आषाढ का गीत' आदि गीत।

२७२ 'क्षेम' का पत्र दिनाक २-८-७६, पृ० ७।

२७३ १४ जुलाई,१९७० धर्मयुग।

२७४. १४ जनवरी,१९७६ धर्मयुग।

२७५. 'क्षेम' का पत्र दिनाक २-८-७६, पृ० १० ।

२७६. (क) १५-१६ वर्ष पूर्व 'क्षेम' की गीतात्मक प्रातिभ-चेतना को गौरव प्रदान करने के लिए अनेकाधिक साहित्यकारो ने गीति क्षेत्र मे उनके साहित्यिक योगदान को सम्मान देते हुए इन्हें 'गीतो का राजकुमार' घोषित किया था। और समर्थ आलोचक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने भी 'जीवन-तरी' की भूमिका मे जिस गीतकार त्रयी का उल्लेख किया है उनमे उन्होने 'क्षेम' को द्वितीय स्थान का अधिकारी घोषित किया था।
द्रष्टव्य . डॉ० शिवकुमार मिश्र ' नया हिन्दी काव्य ।
(ख) "आदरणीय बच्चन जी ने कभी कहा था कि 'मिलन-शृङ्गार' के गीतो मे 'क्षेम' का स्थान वडे महत्व का है। 'क्षेम' ने अपने मानववादी प्रेम-शृङ्गार के गीतो मे छायावाद की क्लिष्ट तत्समात्मक एव रहस्य-भावना के आरोप स तथा अभिधा-प्रधान व्यक्तिवादी शृङ्गार के गीतो से मिला, अपने लिए अलग भावना-कथ्य और सरस-सरल भाषा-विधान का अन्वेषण किया है। स्वर्गीय दिनकर, स्वर्गीय नन्ददुलारे वाजपेयी एव डा० रामकुमार वर्मा गीतकार के रूप मे स्नेह-प्रशसा देते रहे है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने तो 'जीवन तरी' की भूमिका लिखते हुए उसमे छायावादोत्तर हिंदी गीतो की नव-विकास-रेखा का अभिज्ञान देखा है। 'आकाशवाणी' से ही मेरे सभी प्रमुख गीत-स्वर वेला भी कवि-समारोह मे आते रहे हैं। मेरे गीतो के अनुकूल प्रकृति वाली पत्रिकाए प्रचार-युग मे कम रही। मैं गुटबदी को समय न दे सका और 'कादम्बिनी' तथा 'हिंदुस्तान साप्ताहिक' के दलो से भी अलग पडा रहा।"
अनुसन्धित्सु के नाम 'क्षेम' का पत्र' दिनाक २-८-७६, पृ० ६।

२७७. रवीन्द्र भ्रमर के गीत : प्रस्तावना, पृ० ६ ।

२७८. दिशा वाहु पाशो मे। कस कर नभ सावरे को
बहुत समझाया है। इस नैना बावरे को
यह पहचाने मुख की रेखा है। चाद को झुक-झुक कर देखा है"
—वही, पृ० २१।

२७९. "अजुरी मे। वाघ लिये। जूही के फूल। मधुर गन्ध,
मन की हर एक गली महक गई,। सुखद परस,
रग-रग मे चिनगी-सी दहक गई। रोम-रोम
उग आये। माघो के शूल ? । जूही के फूल"—वही, पृ० १२।

२८०. द्रष्टव्य बन फुलवा फूले सिंगार के', पृ० २३।

२८१. "मैं बनाऊ घर इसी मझदार मे, अगम जल की सोन मछरी मन बसी।"
—सोन मछरी मन बसी।

२८२ "दने हुए फूलो से स्वप्न बिखर जायेंगे
अमलतास के पीछे गुच्छे झर जायेंगे
लौट नही आयेंगे । फिर ये पहर वासन्ती
छूटो मत । क्षण मेरे । मुझ से मत छूटो"—वही, पृ० ५३ ।

२८३. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६००-६०१ ।

२८४ रवीन्द्र भ्रमर के गीत भूमिका पृ० १४ ।

२८५. डॉ० रवीन्द्र भ्रमर का पत्र दिनाक २८-७-७६ ।

२८६ "आज जब कविता के मूल्य कहा से कहा पहुच गए हैं, मधुर जी अपने प्यारे-प्यारे मीठे गीतो का 'माधुर्य रस' सम्भाले हुए है । आखिर उनका व्यक्तित्व भी तो 'एवरग्रीन' है, वक्त की मार ने उनके 'अक्षत यौवन' पर एक भी लकीर नही डाली है"—पोस्टर, बम्बई १-३ ७२ ।

२८७ "आधी के पाव और घुघरु" के गीतो मे रोमानी प्यार और भावुकता का ज्वार भी है"—डॉ० विजयेन्द्र स्नातक आकाशवाणी नई दिल्ली २५-५-७२ ८ ५ रात्रि ।

२८८ मधुर शास्त्री स व्यक्तिगत साक्षात्कार ३१ ५ ७६ ।

२८९ आधी के पाव और घुघरु, पृ० ८५ ।

२९० कादम्बिनी ३ अप्रैल, १९७२, पृ० १९७ ।

२९१ नवभारत टाइम्स ४-४-१९७२ ।

२९२ समावना वार्षिक १९७२, कुरुक्षेत्र रघुवीरशरण व्यथित ।

२९३ (क) "हू न साहित्यिक, असामाजिक प्रथा का । मैं अशोधित व्याकरण हू"
—पृ० ४१ ।
(ख) "सच्चाई की करे चिन्ता । जिसे रोटी न भाती हो"—पृ० ४३ ।

२९४ डॉ० विजयेन्द्र स्नातक आकाशवाणी : नई दिल्ली · २५-५-७२, ८.०५ रात्रि ।

२९५. (क) "मैं तुम्हारा हू तुम्हारी आत्मा हू
हू मनन, चिन्तन, मनोरजन नहीं हू
मैं विधाता हू, विधानो का विरोधी हू
मैं सरल जीवन, मरण बन्धन नही हू ।"—पृ० १५ ।
(ख) "बात छेडो, सिन्धु मे तूफान की । या कि फिर कुचले हुए अरमान की । बात छेडो, यह दिवाली की निशा । भूख स मरते हुए इसान की इस कथन से गात चकनाचूर है । जानता हू रोशनी भी दूर है
कुछ नही तो प्रात की चर्चा करो ।"—पृ० २३ ।
(घ) "ईमाना पर नाके बन्दी । रक्षक की नियत गन्दी
केवल दुर्घटना का सगम । जीवन बहुत बुरा होता है"—पृ० ३२१ ।

२९६. श्री कमलेश : आकाशवाणी : जालन्धर २१-६-७३।

२९७. "इतनी भारी जनसख्या मे कोई एक प्रसन्न नही है
पनिहारिन प्यासी मरती है, जहा भूख है, अन्न नही है
चारो ओर मचा कोलाहल, बिजली ज्यादा, कम है बादल
लगता है निर्जन सावन मे आग लगेगी, क्रान्ति जगेगी।"—पृ० ५६।

२९८. साप्ताहिक हिन्दुस्तान : अगस्त, १९७३।

२९९. "काटो के हाथो पर मेहदी, फूलो के कर पर अगारे
दुर्गन्धो के बीच चमेली, निर्गन्धो के पाँव पखारे।"—पृ० ५६।

३००. मैं जानता हू, जो कहूंगा आधुनिकता के सभी प्रतिकूल है पर क्या करू !
मुझ को मरुस्थल मे सुगन्धित ही खिलाना फूल है। मैं पवन के सग ऋतु
का दास बन जाऊ, यह समझना भूल है"—पृ० ४२।

३०१. डॉ० कमलेश : वक्तव्य : आकाशवाणी : जालन्धर : २१-६-७३।

३०२. व्यक्तिगत साक्षात्कार : श्री मधुर शास्त्री : ३१-५-७६।

३०३. डॉ० विजयेन्द्र स्नातक : आकाशवाणी : दिल्ली : ८.०५ रात्रि।

३०४. "प्यास परवाने लिए मो घूमते। और बादल बिजलिया ले झूमते/झोपडी
के द्वार कोई अनमना। नयन जिसके आसुओ को चूमते। मौन इतनी देर
तक तो मत रहो। जो मुझे मालूम है वह ही कहो/कुछ नही तो दर्द की
चर्चा करो"—पृ० २४।

३०५. (क) "चातको ने कर दिया है नाम ही बदनाम घन का…"पृ० ३५।
(ख) "भ्रमर मन वाली दुनिया मे, सही बटवारा नही मिला" पृ० ५१।
(ग) "जहा पसीना माटी मे मिल खिलने लगे गुलाब-सा" पृ०४८।

३०६. श्री मधुर शास्त्री के नाम हरिवशराय बच्चन का पत्र : १२-१-७० 'आधी
के पाव और घुघरू' के प्रारम्भ मे प्रकाशित।

३०७. "मनुआरे ! कमिया गिन अपनी। मत गिन तारे" पृ० ८६।

३०८. वही, पृ० ५७।

३०९. "तुम बिन पथ न मैं लख पाऊ"
व्यक्तिगत साक्षात्कार : श्री मधुर शास्त्री : ३१-५-७६।

३१०. साप्ताहिक हिन्दुस्तान—२० से २६ फरवरी, सन् १९८३।

३११. विराट् का पत्र, दिनाक १८-८-७६।

३१२. विराट् का पत्र 'कलम के कलाकार' शीर्षकान्तर्गत भेंट वार्त्ता हेतु
प्रश्नोत्तर लेख, पृ० २।

३१३. मथाई हो रही दधि की अभी नवगीत बाकी है
मरण की घोषणा कर दी अभी तो गीत बाकी है।"
—वही, पृ० ३, दिनाक १८-७-७६।

३१४. द्रष्टव्य : साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १३-१६ फरवरी, १९८३ ।

३१५. विराट् का पत्र 'गीत-आदमकद आईने के आगे' शीर्षक लेख, पृ० १,. दिनाक १८-७-७६ ।

३१६. वही, पृ० ४ ।

३१७. विराट् का पत्र 'गीत-आदमकद आईने के आगे' शीर्षक लेख, पृ० ५, दिनाक १८-७-७६ ।

३१८. शब्द की दस्तकारी नही चाहिए
हो सके तो हमें प्राण के बोल दो ।
हो रही बुद्धि बोझिल-सी पवितया,
प्राण की बात को अनसुनी कर दिया ।
काच को स्थान मणि का तुम्ही ने दिया,
और हीरा तुम्ही ने कनी कर दिया ।
कुठित चेतना को छुओगी किरण,
जग जाये हृदय पट जरा खोल दो ।"— पृ० ७, वही ।

३१९. द्रष्टव्य नयी पीढ़ी परम्पराए और उपलब्धिया गीत-१, पृ० १२ ।

३२०. "सिर्फ तुम्हारा रूप नही केवल कथ्य प्रिये
और विषय भी इस जीवन के गाने लायक हैं"—गीत-१, पृ० १२ ।

३२१. "वार मे आदमी की अस्मिता, कैवरो मे आचरण है इन दिनो
एक भी मुखडा यहा असली नही, सब मुखो पर आवरण है इन दिनों ।"
—साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १३-१९ फरवरी, १९८३ ।

३२२ जान पहचान सिर्फ नोटों की । कि सहानुभूति सिर्फ होठो की
दोस्त यह शहर है या अजायबघर । भीड है अजनबी मुखौटों की"
—वही, पृ० २४ ।

३२३. "गीत बहुत हैं भाव भरे, पर । भावुक वातावरण नही है
धुआ-धुआ छाया है जग मे । और हवा मे घुटन है
मास टूटती भावुकता की । यात्रिकता का बहुत वजन है
गिनती के समान असख्य है । मानवगत आचरण नही है"—
—गीत १, पृ० ५७ ।

३२४. निर्वसना चादनी भूमिका, पृ० ६ ।

३२५. (क) "खुद को आदमी का रक्त पच सकता नही
वह फूट निकलेगा बदन से शोषको से क्या कहे"
(ख) "खुद को निरामिष कह रहे भेडियो से दोस्त
भोले जरूरत से अधिक मृग-शावको से क्या कहे ।'
(ग) "सुख का सूरज अस्त हो गया । मन दु ख का अभ्यस्त हो गया ।"

(घ) "एक सन्नाटा शहर पर जग गया। जो जहा पर जिस जगह था थम गया।"

(ड) तोड ही डाला दु खो ने आदमी। निश्चय गया, हर प्राण गया, सयम गया।"—वही, पृ० क्रमशः १०२, ६, ११, १२ आदि।

३२६. द्रष्टव्य · गीत-१, पृ० ५६।

३२७ "हम नयी पीढ़ी के लोग
लव कुश की परम्परा के तायी हैं
तुम पुरानी पीढ़ी के लोग,
अपनी साम्राज्यवादी लिप्सा मे चूर
दर्प और शोषण के जो अश्व छोडते हो
हम उन्हे रोकेंगे
उनकी गति को अवरोधेंगे"—अकुर की कृतज्ञता, पृ० ३५।

३२८. "कुछ दर्द महज सहने के है। कुछ दर्द सदा रहने के हैं
थोडे से। जो दर्द ऊपरी, अस्थायी हैं
बस वे ही तो कहने के हैं"—वही, पृ० ८।

३२९. "आकाश के फ्रेम मे जडा। चन्द्र दर्पण,
उसमे प्रतिबिम्बित होता। तुम्हारा शृ गार मुख
इस बिम्ब को। बार-बार। गीतो मे बाधता। मेरा सुख"
—पीढ़ियो का दर्शक, पृ० ४०।

३३०. ठाकुरप्रसाद सिंह : वशी और बादल भूमिका।

३३१. दैनिक हिंदुस्तान वीरवार, दिनाक ८-७-७६।

३३२. द्रष्टव्य 'रात और शहनाई'—अपने विषय में, पृ० १६।

३३३. (क) "काल विश्व के असख्य प्राण नित्य चुन रहा
रोज ही चिता मे आदमी का रूप भुन रहा
मृत्यु की कुरूप गध सबके रूप मे बसी
मेरी सास-सास काल के सितार मे कसी"—पृ० ५७।

(ख) "आकाश सब का है किसी का भी नही, ऐ चाद मेरे रो नही"
—पृ० ५८।

३३४. "मुझे अकेला देख मौत ललचाई सारी रात
और पास ही बजी कही शहनाई सारी रात"—पृ० १०।

३३५. "प्रिय जब तुम मेरी समाधि के पास कभी आ जाना
सब कुछ करना किन्तु शोक मे डूबे गीत न गाना"—पृ० ५२।

३३६ (क) "मैं पूजा न कर सका उस देवता की। जो न पाया तोड मजहब की जजीर"—पृ० ४६।

(ख) "मृत्यु को ललकार दे जा, वह करे स्वीकार मेरा प्यार, मैं तैयार हू"
—पृ० ६० ।

३३७ "मुझ को बडा सा काम दो, चाहे न कुछ आराम दो
लेकिन जहा थक कर गिरू मुझ को वही तुम थाम लो
गिरते हुए इन्सान को कुछ मैं गहू कुछ तुम गहो
जीवन कभी सूना न हो, कुछ मैं कहू कुछ तुम कहो"—पृ० १६ ।

३३८ 'डाल के रग-विरगे फूल, राह के दुबले-पतले शूल
मुझे लगते सब एक समान"—पृ० ४१ ।

३३९ "आज के गीतो म मानवता का स्वर है जो युग-बोध की पहचान है
मैं गीत लुटाता हू उन लोगों पर, दुनिया मे जिनका कुछ आधार नही
मैं आख मिलाता हू उन आखो से, जिनका कोई पहरेदार नही"
—पृ० २७ ।

३४० द्रष्टव्य उदासीन तरुणी के प्रति, पृ० ८१ ।

३४१ 'मुझे न हसने दिया समय के निष्ठुर झझावात ने
मुझ न साने दिया चाद पर मरने वाली रात ने"—पृ० ७५ ।

३४२ "कब तक राऊ, नीद खोऊ
अश्रु सलिल मे रातें धोऊ
मुझे नही अपनाते यदि तुम
मैं ही क्यो निज को अपनाऊ
अब इस दिल को जिसमे तुम हो
पैरो तले कुचल डालूगा !
अपना विश्व बदल डालूंगा ।"—एक और अनेक क्षण, पृ० ४० ।

३४३ द्रष्टव्य मणि मधुकर एक तनाव परिवेश की प्रत्यक्षताओ म
—गीत पत्रिका-२, पृ० ३० ।

३४४ "मरा नही । जीवित हू । सूली पर चढा हुआ
होठो मे झाग । दात भीचे"
—मणि मधुकर एक तनाव परिवेश की प्रत्यक्षताओ म—गीत-२,
पृ० ३० ।

३४५ 'मीलो तक पत्थर बाधे कमर मे । भाग-भाग कर थकी-थकी-सी छायाए
बरसो की धूल ओढकर भी । यह गीलापन गया नही
कुछ नया नही'—वही पृ० ३१ ।

३४६. गीत-पत्रिका-२, पृ० ३१ ।

३४७ '. . . परिचित म लगन हैं
अगर कभी गीतो म ढल तो सुरीले हैं

बिछुड़े हुए गीता से मिलें तो हठीले हैं
कहीं पर कटीले हैं, कहीं पर सजीले है
जग की सब भाषाओं में अनुवादित हैं, अंकित हैं
नए अर्थों मे घुलकर उरझीले हैं
आसू सपनीले हैं"—वही, गीत-१, पृ० ८४।

३४८ 'यहा की बात। वहा मुतला नही कोई। अकेले हैं सभी। लेकिन किसी के साथ को।
चुनता नही कोई। व्यग्य माथे पर लिखे। मडवे घए सा। भटकता। मेरी सदी का गवाह। आह! कितने सशयों मे। जी रहा आज। अपनापन।'
—गीत-पत्रिका-२ पृ० ८४।

३४९ वही, पृ० ३१।

३५० आधार भारत भूषण का पत्र - दिनाक २५-६-७६।

३५१ काल्पनिक ससार म जीना।

३५२. आधार विमल मार्केनो के पत्र और इस सम्बन्ध मे प्रेषित सामग्री।

३५३ "यह गावा की छटा, धान के खेत, ताल का निर्मल पानी है
प्रकृति की नयी जवानी है।

३५४ सुमुखि ने अगर मुख पखारा न होता
कभी सिन्धु का नीर खारा न होता
अगर प्यार होता नही जिन्दगी मे
तो जीने का कोई सहारा न होता।"

३५५ 'नयन तुम्हारे तीन लोक स न्यारे लगते हैं
घायल कर देते हैं फिर भी प्यारे लगते हैं।"

३५६. 'कोई हो गया है मेरा, मेरी कल्पना से पहले
मेरा देवता मग्न है, मेरी वन्दना से पहले।"

३५७ "युगो से धर्म मजहब विफल है उपदेश देने मे
मगर यह आदमी अब तक न सुधरा है न सुधरेगा।"

३५८. "जादूगर की जात तुम्हारी। मेरी विद्या तुम मे हारी
बिना दाम ही नाम तुम्हारे। मैं बिक बैठी हू बनवारी।"
—रवीन्द्र भ्रमर के गीत, पृ० ३०।

३५९ 'कैसे मन की बस्ति चिरौरी। पाती-खाती बाखर पौरी
ऐसे मौसम तुम बाहर हो। आगन टपके पत्री निबौरी।"
—नरेश सक्सेना पाच जोड बासुरी, पृ० १७६।

३६०. "चादनी का पिघला झरना । सर्द आहे मत भरना
मौन ही रह जाय हम तुम । नियति की मरजी
—उमाकान्त मालवीय : कविता १९६४, पृ० २९ ।

३६१. "मृत्यु किसी जीवन का अन्तिम अन्त नही ।
साथ देह के प्राण नहीं मर पाते हैं।"
—बालस्वरूप राही : जो नितान्त मेरी हैं, पृ० ११ ।

३६२. "जो झुलमते दिनो मे श्रमिक को मिले
वह बहुत दूर शिमला मसूरी अभी
फूल जिसमे खिला, फूल जिसमे मिला
मान्यता धूल की वह अधूरी अभी"
—वीरेन्द्र मिश्र लेखनी-बेला, पृ० ५९ ।

३६३ द्रष्टव्य : डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, साप्ताहिक हिन्दुस्तान : ३ अप्रैल, १९६६ ।

□□

३

उपलब्धि—दो

व्यक्तिक्षण से लोकगंधी यात्रा

साहित्य मे काव्य-रूपो के सैद्धान्तिक मूल्यांकन का प्रश्न अपने आप मे निरपेक्ष नही है। वास्तविकता यह है कि पहले काव्य की कोई विधा अपना व्यावहारिक आयाम लेती है और तदुपरान्त ही आचार्य अथवा समीक्षक उसकी सिद्धान्त-रेखाए निर्धारित करते हैं। अर्थात् साहित्य में किसी भी काव्य-रूप का सैद्धान्तिक निरूपण सापेक्षता अथवा पारस्परिकता की माग करता है। "छायावादोत्तर गीतिकाव्य' के गीतसिद्धान्त गीतो के बहुत बाद की उपज हैं। प्राक् इतिहास तथा इतिहास-परम्परा मे अद्यावधि गीत ने अपने अनुभव एव परिवेश के साथ मिल-जुल कर अपने को जितना बनाया मिटाया और पुन नई रग-रेखाओं मे निर्मित किया उसी के अनुरूप गीत की सिद्धान्त-भित्तिया भी बनती-ढहती रही हैं। छायावादोत्तर गीतिकाव्य का सिद्धान्त-पक्ष अपनी इसी इतिहास-परम्परा का आधार लेकर निर्मित हुआ है—इसीलिए गीत-प्रगीत की परिभाषा मे, उसके कथ्य अथवा शैली मे निश्छलता, सहजता, आत्मानुभव की तीव्रता, मार्मिकता, सवेद्यता, स्वच्छन्दता, प्रभविष्णुता, काल्पनिकता, तरलता, स्वाभाविकता, चित्रमयता, सगीतात्मकता एव भाषा की सुकुमारता आज की गीत-दृष्टि को देखते हुए अपर्याप्त नजर आने लगी और बदलते हुए स्वर-तेवर तथा परिवेश मे कथ्य तथा शिल्प मे इन सब विशेषताओ के साथ-साथ गीत मे बौद्धिक चिन्तन, युग-परिवेश का यथार्थ, प्रतीकात्मकता, ध्वन्यात्मकता तथा विषयानुरूप शब्द, भाषा, लय, सगीत तथा छन्दो मे भी अभिनव प्रयोग दिखाई देने लगे और इस तरह छायावादोत्तर गीतिकाव्य तक आते-आते गीत-प्रगीत केवल कवि की व्यक्तिगत अनुभूति न रहकर अन्य काव्यविधाओं की तरह युग-सदर्भ को स्पदित करने लगा।

गीत-प्रगीत ने व्यक्ति-क्षण से लोक गधी लय तक आते-आते अपनी परम्परा मे कम यात्रा नहीं की है। गीत-प्रगीत कभी क्षण-विशेष का स्मारक बना तो कभी चतुर्दशपदी का, उसने कभी सर्वाधिक बुद्धिमय एव कल्पना प्रधान सम्बोध गीति का स्वरूप धारण किया तो कभी वह आहत क्रौंच पक्षी की अन्तिम आह मे उत्पन्न शोक गीतियो मे गूजने लगा, कभी उसके कलवर मे वर्णनात्मक पद-गीतिया अपनी कथा कहने लगी तो कभी अन्त प्रेरित अनुभूतियो से प्रेरित होकर उस गीत का कलेवर पूर्णत गीतिमय हो गया कभी वह लघगीत काव्य बना तो कभी दृश्य ग्राम्य-गीत, कभी उसमे मर्मभेदी व्यग्योक्तियो न घर किया तो कभी वह सामाजिक उत्सवो की लोकधुन मे झूमकर गाने लगा और ऐसे मे उसके साथ जुड गयी लोकगाथात्मक वीर गीतिपरम्परा तथा रगमचीय नाट्यविधि। इस प्रकार गीत-प्रगीत ने अपनी परम्परा मे भले ही अपने वस्तु-शिल्प को कितना भी क्यो न अदला-बदला हो लेकिन सगीत की लय मे वह आज तक नहीं टूटा। हमारा विचार है कि गीत और सगीत का चोली-दामन का साथ है जो न आज तक टूटा है और न ही आगे इसके टूटने की सभावना है। जिस दिन सगीतविहीन गीत की रचना-परिभाषा की बात कही जाएगी शायद उस दिन गीत अपनी अतिम सास तोड बैठेगा।

शब्द और सगीत का यह भावात्मक आवेग अपनी ऐतिहासिक खोज मे यद्यपि उसी प्रकार अनखोजा है जिस प्रकार मनुष्य के आविर्भाव का इतिहास। लेकिन यह असदिग्ध सत्य है कि मानव-सृष्टि के साथ ही उसकी सुख-दु खात्मक अनुभूतियो के अतर्गत नर-नारियो के होठो पर सगीतमय शब्द फूटते रहे होगे किन्तु इस शब्द-सगीत-परम्परा का प्रामाणिक प्रमाण ऋग् और साम की ऋचाओ म दिखाई पडता है। कालातर मे यही ऋचाए हैं जिनका आधार लेकर गीत की टेक का निर्माण हुआ और यजुर्वेद के तीन स्वरो की कल्पना से सामवेद मे आते-आते सात स्वर निर्धारित हुए। स्वर और सगीत का आधार लेकर गीत शब्दबद्ध हुआ और वैदिक साहित्य के बाद बौद्ध साहित्य मे, गाथाओ के माध्यम से इनकी सृष्टि हुई। बुद्ध-दर्शन का आधार पा गीतविधा जन-मानस का अभिन्न अग बन गई। अब समय था कि गीत की व्यावहारिकता को सिद्धात का चोला पहनाया जाए और ऐसे मे भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' का निर्माण किया और श्रेष्ठ नाटको मे "मृदुललितपदाढ्यम्, गूढशब्दार्थहीनम्, जनपदसुखबोध्य· · " जैसे सूत्र वाक्यो को कहकर न-केवल नाटक को पारिभाषित किया बल्कि इसी के साथ गीतो का भी तत्व-निरूपण कर दिया। शायद इसी का प्रभाव था कि आगे की सस्कृत परपरा म 'मृच्छकटिकम्', 'रत्नावली', 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' जैसे नाटको मे मनोहारी गीतो की सृष्टि हुई। न-केवल इतना बल्कि 'मेघदूत' जैसी सशक्त एव स्वतत्र गीति-रचना की सृष्टि हुई जो आगे के सदेश-काव्यों की आधार-सामग्री बनी। जयदेव के "गीत-गोविंद" तक आते-आते लोकगीतो मे राग के साथ ताल और लय

का सम्यक् निर्माण बन गया जिससे संगीत न केवल प्राणवान् बना बल्कि नृत्य की मुद्राओं में आत्मविह्वल हो झूम झूम कर नाचने लगा। वैदिक संस्कृत और पालि के बाद प्राकृत भाषा में हर्ष के हस्ताक्षर प्राप्त करके 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में चतुर्दशपदी बनकर इस गीत-परम्परा ने अपनी नई शिल्प-वृद्धि की।

अपनी परम्परा में गीत-प्रगीत ने एक तरफ व्यक्तिगत रागानुभवों से सम्पृक्त शृङ्गार-गीतों की सृष्टि की तो दूसरी तरफ प्रकृति के रहस्यों से प्रभावित होकर उसे भक्ति, आध्यात्मिकता एवं दार्शनिकता का पुट दिया। इसी परम्परा का अनुगमन करती हुई काव्यधारा अपभ्रंश साहित्य के रास या रासक ग्रंथों में कृष्ण-गोपी के शृंगार-विलास में आध्यात्मिक रमण करने लगी तो दूसरी तरफ बुद्ध-परंपरा की देन में वज्रयानी सिद्ध और वाममार्गी योगियों ने लोक-भाषा का आधार लेकर उसे जन-मानस तक प्रेषित किया। गीतों के लिए लोकभाषा का ग्रहण यद्यपि नया नहीं था, 'थेरी गाथा' इसका सूत्रपात कर चुकी थी—लेकिन इन योगियों ने भाषा बहता नीर के माध्यम से गीत की प्रेषणीयता को इतना सहज-साध्य बना दिया कि देशी-विदेशी प्रभाव इस गीत-परम्परा में बहुत आराम से रचने-खपने लगे। अपभ्रंश की इस पद-परंपरा में अमीर खुसरो आए जिन्होंने अपने पदों में संगीतात्मकता की सृष्टि करके न-केवल गीति-परम्परा को अत्यंत समृद्ध किया बल्कि अरबी-फारसी शब्दों और रागों का आधार लेकर गीतों की नवीन सृष्टि की। बरवा राग में पहले लय नहीं होती थी, अमीर खुसरो ही हैं जिन्होंने पहले-पहल उसमें लय की प्रणाली का सूत्रपात किया। लोक-भाषा के चलते मैथिली भाषा में विद्यापति का पदार्पण हुआ जिन्होंने कृष्ण-भक्ति का आधार लेकर ऐसे मधुर गीतों की सृष्टि की जो हिन्दी साहित्य में गीतिपरम्परा की अमिट देन कही जा सकती हैं। लोकगीतों की धुन पर उन्होंने जो कलागीत प्रस्तुत किए वे देखते ही बनते हैं। ऐसे में डा० बच्चन की ये पंक्तियां बरबस याद हो आती हैं—

ये न कबीर, न सूर, न तुलसी और न थी बावरी मीरा
तब तुमने ही मुखरित की थी मानव के मानस की पीडा।

(नए-पुराने झरोखे, पृ० १२६)

कलागीतों की इस परम्परा से हटकर नाथों और सिद्धों की जमीन पर भक्तिकाल में कबीर अपनी खजरी लेकर खड़े हुए और उन्होंने अपने आध्यात्मिक ताने-बाने में पदों को ऐसा 'लोकल टच' दिया कि वह आज तक जन-मानस की पोथी से मिटाए नहीं मिटता। कबीर की यह लोकधर्मी गीत-परंपरा ही है जिसमें जाने-अनजाने अपने युग की लोक-प्रचलित शैलियों—हिण्डोला, आरती, बारहमासा, झूला, होली, मंगल, बधावे, सोहरा आदि को न-केवल साहित्यिक विरासत दी बल्कि घर घर में उसके मंगल-आचारों एवं आध्यात्मिक प्रभावों के माध्यम से गीत को जमा-बसा दिया। इस संत-परंपरा में रैदास, दादू, धर्मदास आदि भी आए

लेकिन कबीर का कोई सानी नही था। सगुण-भक्तो मे तुलसीदास ने अपने गीतो मे जहा भक्त-हृदय की दीनता का भाव भरा, उच्छलन उडेला वहा सूर ने भाव-प्रवणता एव तन्मयता देकर उसका परिष्कार किया। मीरा की मार्मिक भावुकता को पाकर ये गीत-प्रगीत जीवन्त हो उठे। नन्ददास मे आकर यद्यपि गीत-परपरा सुन्दर शब्द-चयन, श्रेष्ठ वर्ण-मैत्री और सगीत की सुमधुर झकार पाकर कलात्मकता के चरम पर पहुच गई थी किंतु पता नही क्यो हिंदी मे गीत का नाम लेते हुए अनायास विद्यापति, कबीर, सूर, तुलसी और मीरा ही याद रह जाते हैं। वस्तुत. गीतो मे याद रह जाने के पीछे कलात्मक जडियापन कम होता है और आत्मीय ईमानदारी अधिक—वह इनमे थी इसीलिए शायद वे आज तक जिन्दा हैं और आगे भी रहेगे।

कुल मिलाकर, भक्तिकाल ने अपनी उज्ज्वलता एव आत्मीयता से जितनी अनेकाधिक लोकगन्धो एव विरासत से प्राप्त शास्त्रीय टेको और धुनो से गीत-भडार को समृद्ध किया था रीतिकाल मे आते-आते वह उतना ही कलुषित हो गया। असल मे जिस प्रकार दीपक की उज्ज्वल शिखा से काजल निकलता है उसी प्रकार सूर के उज्ज्वल और तेजोमय पवित्र शृङ्गार से रीतिकाल मे भी अपवादस्वरूप घनानन्द, बोधा, आलम और रसखान जैसे गीतकवि पैदा हुए जिन्होंने अपने लौकिक अथवा अलौकिक प्रेमी को इस तन्मयता से प्यार किया कि विरासत की उज्ज्वलता और तेजोमयता निष्प्राण नही हो पाई। इन कवियो ने अपने मुक्त छन्दो मे अनुभूति की तीव्रता इस कदर उडेली कि बरबस मीरा की याद हो आती है।

भारतेन्दु-युग तक आते-आते गीतिकाव्य-धारा मे नवोन्मेष हुआ। मुगल बादशाही का पतन और ईस्ट इण्डिया कम्पनी का उदय एक सस्कृति से दूसरी सस्कृति के आगमन का सकेत था। न-केवल इतना बल्कि एक गुलामी के बाद दूसरी गुलामी की छटपटाहट भी कलाकार को परेशान कर रही थी किंतु यह परेशानी आदोलन का पर्याय कम तथा विवशता और बेचैनी की सार्थकता को अधिक प्रकट कर रही थी। शायद यही कारण था कि भारतेंदु जैसे समृद्ध कलाकार मे एक तरफ सूर, मीरा और रसखान का प्राचीन स्वर था तो दूसरी तरफ नई व्यवस्था की गुलामी के आते राष्ट्रीय चेतना की नवीन भूख थी। बहरहाल, नवीनता के सन्दर्भ मे गीत राष्ट्रीय-चेतना से भले ही जुडा हो लेकिन भारतेन्दु-युग की कवित्री—रायकृष्णदास, सुधाकर द्विवेदी, अम्बिकादत्त व्यास, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, राधाचरण गोस्वामी, बालमुकुन्द गुप्त—और इसके चलते द्विवेदीयुगीन साहित्य ने युग की महत्वपूर्ण माग के अनुरूप राष्ट्रीयता को इस कदर स्थापित करने की कोशिश की कि कविता मे रस कम तथा प्रचार और उपदेश अधिक हो गया—ऐसे मे गीत पर खरोच आनी स्वाभाविक थी। इसी बीच बगाल

में रवीन्द्रनाथ टैगोर का उदय हुआ और उनकी गीताजलि के प्रभावस्वरूप द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता को न केवल ठेस लगी बल्कि साहित्य में विद्रोह के अकुर फूटने लगे। नयी कविता का उदय हुआ—छायावाद इसी का नाम है। यद्यपि इस छायावादी काव्यधारा में प्रसाद और निराला ने अनेक महत्वपूर्ण एव जीवन्त राष्ट्रीय गीत दिए लेकिन मूलत वे अपवाद ही बने रह जाएगे। छायावादी कवियों की अत दृष्टि समग्रत व्यक्तिवादी रोमानी एव प्रकृति-प्रेरित ही कही जाएगी। उन्होंने भले ही द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता की प्राचीरों को तोडा हो किन्तु उनकी कविता प्रकृति-चित्रण की आड मे व्यक्तिवादी रोमानी चेष्टाओ के भीतर इस कदर घुस गई थी कि उनमे नन्दनवन मे गीत-विहगो के कल-कूजन का स्वर भले ही सुनाई देता रहा हो लेकिन लोकमगल का भाव अपवाद रूप में अस्पष्ट-सा ही रहा है।

केवल यह कहकर कि वह व्यक्तिवादी रोमानी कविता थी छायावादी युग को नकारा नहीं जा सकता। इस युग ने हिन्दी कविता को पौरस्त्य एव पाश्चात्य प्रभाव के परिप्रेक्ष्य मे न केवल विविधता दी वरन् कलात्मक गरिमा, सौष्ठव, सौंदर्य, मृदुता एव ऋजुता भी प्रदान की। इस युग की कोई कम उपलब्धि नही और वह भी ऐसी स्थिति मे जब जन-मानस को ऐसा कुछ नजर आ रहा हो कि बार-बार सिर कटाने का भी कोई शुभ परिणाम देखने को नही मिलेगा। यह युग गुलामी को ढोने और इस परवशता को, अपनी विवशता एव आक्रोश को, प्रतीकात्मक ढग से कहलाने में भक्तिकाल से कम नही। फर्क सिर्फ यह है कि भक्तिकाल में गुलामी की विवशता का नाम रामनाम था तो छायावादी युग मे प्रकृति की आड मे सौंदर्य साधना। कुल मिलाकर चाहे जो हो किन्तु इन छायावादी कवियो ने भाव-कल्पना, सूक्ष्म सौंदर्य, विस्मय-भावना, नारी के प्रति उदार एव नवीन दृष्टिकोण जैसे भावगत उपकरणो से अपने काव्य को विभूषित किया और इसी के चलते कलात्मक उपकरणों, व्याकरण की जड और निर्जीव शृखला को तोडना, मानवीकरण, विशेषण विपर्यय, नवीन अलकार, पद-लालित्य, मौलिक उद्भावना, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता, प्रतीकात्मकता, चित्रात्मकता, स्वच्छन्द एव नवीन छन्द-योजना, कोमलता से पूर्ण मधुर भाषा ''की श्रीवृद्धि की। गीत-प्रगीत के सदर्भ मे यह कहना होगा कि हिन्दी कविता मे जो पुनीत गीतिधारा भक्तिकाल मे सवेग प्रवहमान होकर रीतिकाल के मरुप्रदेश मे क्षीण हो गयी थी वही छायावाद के उदय के साथ ही पुन नूतन वेग से लहरा उठी। यह निर्विवाद है कि हिन्दी काव्य इतिहास मे छन्दो की इतनी बडी विविधता, नवीनता, ध्वन्यानुरूपता अन्यत्र उपलब्ध नही है। अन्तत छायावाद की सर्वोपरि विशेषता है उसका गीत-काव्य। यह स्वाभाविक भी है कि आत्माभिव्यजक कविता मे गीत को गरिमा नही मिलती तो फिर किसे मिलेगी ? इस युग मे आद्यन्त गीतिकाव्य बहुमुखी विशेषताओं के

मुखर हो उठा। तीव्रानुभूति, भावों की एकतानता, सगीतात्मकता, सक्षिप्तता एव सरसता आदि गुण इन छायावादी गीतो मे बडी सहजता से उपलब्ध हो जाते है। इसके अतिरिक्त छायावादी गीतो मे गाहे-बगाहे मानवीय व्यापकता की जो गहन और गभीर सास्कृतिक विरासत मिलती है वह देखते ही बनती है। प्रसाद, निराला, पन्त की अधिकाश कविताओं तथा महादेवी की परवर्ती गीत-कविताओं मे ये तत्व हमे देखने को मिल जाते हैं। इसी प्रकार रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, 'हृदयेश' उदयशकर भट्ट आदि के गीतो मे भी छायावाद की इस बहुविविधता को देखा जा सकता है।

प्राय साहित्य को समाज का दर्पण माना गया है किन्तु कभी ऐसा भी होता है कि कवि या कलाकार सामाजिक मार्गो से हटकर अपना अलग रास्ता अपना लेता है लेकिन यह ज्यादा दिनो तक चलता नही। अन्तत उसे लौटकर समाज मे ही आना पडता है। छायावाद के साथ भी ऐसा ही हुआ। पौरुष एव उत्साह की उदात्त भावनाओं से दूर छायावादी कविता ने युग-सघर्ष के दायित्व को नकारा था जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि बहुते समय मे अपनी कलागत गरिमा के बावजूद जन-मानस की नजरो मे वह अपनी प्रेरणा-शक्ति गवा बैठी। महात्मा गाधी द्वारा प्रेरित राष्ट्रीय आन्दोलन एव रूस मे किसानो और मजदूरो की जीत से प्रेरित होकर छायावाद के मूर्द्धन्य कवियो—पन्त, महादेवी आदि ने यह महसूस किया कि छायावाद अपने समय मे कट गया है। उसके पास भविष्य को देने के लिए कोई आदर्श है न सौन्दर्यबोध और न ही नवीन विचारो का रस। अत वर्तमान परिस्थितियो मे वह काव्य न रहकर अलकृत सगीत बन गया (द्रष्टव्य . सुमित्रानन्दन पत आधुनिक कवि भूमिका, भाग-२, पृष्ठ ११)। महादेवी वर्मा ने भी मात्राभेद से इस तथ्य का समर्थन किया है और कहा कि—'छायावाद के शीघ्र पतन का कारण मानव-जीवन को चिर गौरव न देना, वैज्ञानिक दृष्टिकोण को उपेक्षित करना एव भावात्मक दृष्टिकोण को अपनाना है (वही : पृष्ठ २५)

साहित्य मे कोई भी आन्दोलन अथवा प्रवृत्ति यकायक समाप्त नही हो जाती बल्कि बीच मे एक ऐसा अन्तराल आता है जहा पुराने के प्रति मोह और नए को ग्रहण करने की विवशता एक कशमकश के रूप मे रूपायित होती है। सन् ३६ तक आते-आते यद्यपि प्रगतिशील लेखक सघ की स्थापना हो चुकी थी एव छायावाद के विपरीत साहित्य मे प्रगतिवादी आन्दोलन का उदय हो गया था लेकिन इसके बीच का समय कुछ ऐसा रहा जिसमे गीतिकाव्य मे मिली-जुली भावोर्मिया एव विचार-सरणिया देखने को मिली। ऐसे गीत एक तरफ छायावाद से प्रभावित लगते थे तो दूसरी तरफ उनमे छायावादोत्तर यथार्थवादी चेतना के अकुर फूटते भी नजर आते थे। ऐसे गीतकारो मे गोपालसिंह नेपाली, जानकीवल्लभ शास्त्री, सुमित्राकुमारी सिन्हा, विद्यावती कोकिल, तारा पाण्डेय, शकुन्तला सिरोठिया,

नरेन्द्र आदि का नाम लिया जा सकता है। इधर उधर हाथ मारने वाला व्यक्ति जैसे कभी किनारे नहीं लग पाता वैसे ही शायद इन कवियों का भी यही हश्र होना था। एक निश्चित विश्वदृष्टि एवं काव्यशिल्प के अभाव में कमोबेश ये गीतकार इतिहास का विषय बनकर रह गये। लेकिन उनके माध्यम से यह तथ्य जरूर महत्वपूर्ण हो उठा कि तत्कालीन परिस्थितियां में व्यक्तिवादी धरातल ही सर्वोपरि नहीं है बल्कि कवि को उससे ऊपर उठकर यथार्थवादी जीवन में पैठना होगा।

कुछ छायावादोत्तर गीतकारों पर छायावाद का प्रभाव है पर उनके वस्तु-शिल्प में बहुत कुछ ऐसा भी है जो अपनी विरासत में हटकर कुछ नयी रंग-रेखाएं प्रदान करता है। इन कवियों ने प्रेम को लरजता हुआ स्वर भले ही न दिया हो किन्तु उसे छायावादियों की भांति गोपनीय, रहस्यवादी और आध्यात्मिक बाना नहीं पहनाया। कहना होगा कि उनकी प्रेम-कविता में छद्म कम और प्रकटीकरण अधिक है। परिणामतः इन गीतकारों का प्रेमभाव परिष्कृत एवं जन-मौविध्यशाली बना। न-केवल प्रेम के प्रसंग में बल्कि प्रेम के अंगोपांग—दुःख, पीड़ा, वेदना, अवसाद आदि—को भी इन्होंने वृहत्तर आयाम दिए। इन गीतकारों की एक और विशेषता यह भी है कि उनकी रचना धर्मिता में कहीं अरविन्द-दर्शन का पुट है तो कहीं बौद्ध-दर्शन का प्रभाव कहीं वे जीवन संघर्ष का यथार्थ प्रस्तुत करते हैं तो कहीं अनुभूत व्यक्ति-संदर्भों को पौराणिक आयाम देकर व्यापकता प्रदान करते हैं। इस तरह इन कवियों में प्रेम-भावना का स्वर अधिक बुलन्द होते हुए भी सामाजिक विसंगति, दार्शनिक भूमि और यदा कदा राजनीतिक दृष्टि भी देखने को मिल जाती है—यह बात और है कि दिशा दृष्टि के अभाव में उनकी दिशा-दृष्टि छायावादी कवियों की व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के समान ही है या फिर वे सामन्तीय संस्कारों को ओढ़े हुए हैं। सम्भवतः इसके पीछे सामन्तीय संस्कारों का प्रभाव कम और समस्या की मूलधुरी को न समझ पाने की विवशता अधिक थी लेकिन इसमें दो राय नहीं हैं कि आगे की प्रगतिशील कविता का मार्ग प्रस्तुत करने में इन लोगों का यत्किंचित सहयोग अवश्य है—न केवल वस्तु-संदर्भ में बल्कि शिल्प रचना में भी। इन गीतकारों ने अपनी भाषा में गीत और गजल के बीच का मजा देकर न-केवल भाषाई दूरियों को पाटा बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से साम्प्रदायिक विसंगतियों को भी दूर करने की कोशिश की। इनके गीतों में संगीतात्मकता भी अपनी शास्त्रीय जड़ता को छोड़कर लोकसंगीत के काफी निकट आयी। इस रूप में गीतकारों की यह कम उपलब्धि नहीं।

राष्ट्रीयता के प्रति आस्था किसी भी देश के नागरिक के लिए जहां एक अनिवार्यता है वहां धर्म भी है और विशेषकर कवि-कलाकार को तो इसका व्याख्याता बनना ही पड़ता है। जब यह राष्ट्रीयता गीतधर्मी होकर बंकिम के 'वंदे मातरम' की तरह जन-जन में गूंज उठती है तब तो इसका नशा और प्रभाव ही दूसरा हो

उठता है। आधुनिक युग मे भारतेन्दु-युग से लेकर छायावादी युग तक यह धारा निरन्तर प्रवहमान रही—कभी कम तो कभी ज्यादा। इसे किसी विशेष कालावधि मे बाधना तो शायद मुश्किल होगा लेकिन इसको एक स्पष्ट नाम अवश्य दिया जा सकता है और वह है **राष्ट्रीय-सास्कृतिक गीतिधारा।** माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामधारी सिंह 'दिनकर', सुभद्रा कुमारी चौहान, सोहनलाल द्विवेदी, जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद, हरिकृष्ण 'प्रेमी' तथा श्यामनारायण पाण्डेय जैसे गीतकार इस धारा मे समाहित किए जा सकते हैं। यद्यपि इनके काव्य जीवन के इतर आयाम भी रहे हैं किन्तु इनकी मूल प्रेरणा का उत्स राष्ट्रीय-सास्कृतिक चेतना ही है। इस काव्यधारा को किसी वाद-विशेष मे बाधना एक भारी भूल होगी। असल मे यह तो विकासशील राष्ट्रीय चेतना का स्वर है जिसमे हर वर्ग एव वाद यथा-समय मिलते-बिछुडते रहे है। इस कविता की सर्वाधिक उपलब्धि यह है कि इसमे सर्वत्र राष्ट्र और राष्ट्रीय सस्कृति के उन्नत होने की आकाक्षा है। आन्दोलनो से प्रभावित इन रचनाओ का अधिकाश भाग यद्यपि सामयिकता की लपेट मे आने के कारण चिरन्तन काल तक जीने की क्षमता नही रखता फिर भी कितने ही ऐसे गीत है जो एक ओर यदि राष्ट्रीयता के उज्ज्वल रूप को स्पष्ट करते हैं तो दूसरी ओर ज्योतिर्मय अतीत की झाकी भी प्रस्तुत करने मे समर्थ हैं।

छायावाद के उत्तरकाल मे डा० हरिवशराय बच्चन के उदय के साथ एक नयी काव्यधारा ने जन्म लिया—व्यक्तिवादी काव्यधारा। बच्चन, 'अचल', नरेन्द्र शर्मा, भगवतीचरण वर्मा, आरसीप्रसाद सिंह आदि इस धारा के प्रतिनिधि गीतकार कहे जा सकते हैं। इनका काव्य-प्रसार अभिधा से सम्पन्न है। यद्यपि यह गीतिधारा दीर्घजीवी न हो सकी लेकिन थोडे से समय मे ही जो विशिष्टता इसने प्राप्त की वही इसकी उपलब्धि है। वैयक्तिक कविता आदर्शवादी और भौतिकवादी, दक्षिण और वाम-पक्षीय विचारधाराओ के बीच का सेतु है। इसमे आदर्श विचारधारा का स्थूल और मूर्त्त अर्थात् भौतिक जगत् के प्रति आग्रह तथा सूक्ष्म आदर्शों के प्रति अनास्था है। वास्तव मे छायावाद के मूल स्रोत स आविर्भूत इसी धारा ने प्रगतिवाद के लिए पथ प्रशस्त किया। इस धारा के गीतकारो मे प्रेम, सूक्ष्म और अतीन्द्रिय न रहकर मासल और ऐन्द्रिक हो गया, करुणभाव के स्थान पर पलायन व मौज मस्ती और अतृप्ति इनका जीवन दर्शन बन, अत वे व्यक्ति म समझ की अपेक्षा वहकाव को अधिक बलवान करने को विवश हुए लेकिन जिस प्रकार छायावाद से प्रभावित छायावादोत्तर गीत-कविता युग की माग से विवश होकर वृहत्तर जीवन सन्दर्भ से जुडने को विवश हो गयी थी उसी प्रकार बच्चन, 'अचल' और नरेन्द्र की त्रिवेणी को भी अपनी सकुचित सीमाओ से हटकर

सामाजिक दायित्वो मे आना पडा और शायद इसीलिए बच्चन ने 'नीड का निर्माण फिर-फिर' कहकर नैराश्य और एकान्त वैयक्तिकता को त्याग कर 'सतरगिनी', 'बगाल का अकाल', 'सूत की माला' आदि काव्य-सग्रहो की रचना की तो दूसरी ओर नरेन्द्र शर्मा ने प्रगतिवाद के टेढे-मेढे ऊबड खाबड पथ पर चलते हुए आध्यात्मिकता, दार्शनिकता मे आश्रय लिया। बहरहाल, व्यक्तिवादी काव्य-धारा मे यह सामाजिक दायित्व अपवाद रूप मे आया था, सामान्य विशेषताओं के रूप मे नही। इसमे सन्देह नहीं कि शैली और शिल्प की सादगी को देखते हुए ये गीतकार बहुत जल्दी जनमानस को प्रभावित करने मे समर्थ हुए किन्तु शैली और शिल्प की सादगी ही किसी विशिष्ट काव्यधारा को सजीवनी शक्ति नही प्रदान करती, उसकी विषयवस्तु की अर्थवत्ता ही उसकी वास्तविक प्राण-चेतना है। अत. इस गीतिधारा के कवियो की सिरचढती लोकप्रियता भी स्थायित्व नही ग्रहण कर सकी और धीरे धीरे उसकी प्राचीरो मे दरार पडने लगी।

ऊपर सकेत दिया जा चुका है कि एक ओर गाधी का असहयोग आन्दोलन और दूसरी ओर विश्वमच पर श्रमिको और मजदूरो की विजय ने भारतीय जन-मानस पर कुछ ऐसा नशा ला दिया था कि वे आर्थिक-राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए व्याकुल हो गए। शायद इसी लहर का परिणाम था कि छायावादी कवियो ने 'वीणावादिनी वर दे' जैसे गीत गुनगुनाए। छायावाद से प्रभावित छायावादोत्तर कवि और अपनी व्यक्ति-वादी काव्यधारा वाली अपनी मूल प्रवृत्ति से हटकर सामाजिक-राजनीतिक उथल-पुथल के गीत गाने लगे और राष्ट्रीय-सास्कृतिक काव्यधारा इन राजनैतिक दलो, मतवादो का आधार लेकर और अधिक सशक्त हो उठी। ऐसे मे सन् ३६ के बाद उथल-पुथल के नाम पर जो कविता लिखी गई उसे **प्रगतिवादी गीतिधारा** का नाम दिया जा सकता है। इस धारा के प्रमुख गीतकार—नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन शास्त्री, रामविलास शर्मा, रागेय राघव, डा० शिवमगल सिह 'सुमन' आदि हैं। इन गीत-कवियों मे प्रगति के नाम पर मार्क्सीय चिन्तन को कहने का और उसके आधार पर राष्ट्र को परिवर्तित करने का मोह यद्यपि अधिक है लेकिन कहना होगा कि उनकी समझ भारतीय जमीन पर गहरे मे पैठी हुई नही है परिणामत इन गीत-कविताओं मे प्राय सतहीपन अर्थात् प्रचार की गन्ध अधिक झलकने लगती है। शायद इसी का परिणाम है कि सन् १९४० के आस-पास यह प्रगतिवादी आन्दोलन काफी पनपा, पल्लवित हुआ किन्तु सन् ५० तक आते-आते आन्दोलन की गति शिथिल पड गई। जो भी हो प्रस्तुत काव्यधारा का चिन्त्य विषय यह है कि प्रगतिशील भावना साहित्य का चिरन्तन तत्व है। मार्क्स का हवाला देकर इसे न सतही कहा जा सकता है और न ही त्याज्य। वस्तुत अपने विवेक के आधार पर चिन्तन करते हुए प्रगतिवाद के हर पहलू को हमे देखना होगा क्योकि "महत्व सीमाओ का नहीं,

महत्व है सीमाओं के अन्तर्गत किए गए काम का" (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चिंतामणि, भाग-२, पृ० २०)। प्रगतिवादी साहित्य प्रगतिशील साहित्य की एक शाखा-मात्र है। इतना होने पर भी यदि हम ज्ञान की अबाध परम्परा से मार्क्स के तत्ववाद को निकाल बाहर फेंकेंगे (फेंका भी नहीं जा सकता) तो निश्चय ही 'प्रगति' के रहस्य की एक महत उपलब्धि से हम हाथ धो बैठेंगे। उचित यही है कि सच्ची प्रगति के लिए मार्क्स के तत्ववाद को हम अपनी जलवायु के अनुकूल बनाना होगा और तदर्थ विवेक को आधार बनाकर उसे उचित हेर-फेर के साथ ग्रहण करना होगा। कुल मिलाकर, हम कहना होगा कि छायावाद युग के बाद की यह प्रमुख और प्रगतिशील साहित्य-धारा है। इसकी अन्य साहित्यिक प्रवृत्तियों की तुलना में कुछ लोगों को इसमें अधिक कचाई, अनगढ़ता तथा कम स्थायित्व प्रतीत हो सकता है किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि वाले विचारक जानते हैं कि आज जो अधिक टिकाऊ किन्तु ह्रासोन्मुख दिखाई पड़ रहा है उसकी अपेक्षा उसका महत्व कहीं अधिक है जो आज कम टिकाऊ लेकिन विकासोन्मुख है क्योंकि प्रगतिवादियों का मूल स्वर धरती की गंध और जन सामान्य की कल्याणकामना में ही निहित है।

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद, दोनों प्रवृत्तियाँ लगभग एक ही समय जन्मी थीं। प्रगतिवादी प्रवृत्ति अधिक अनुकूल परिस्थितियों के कारण जन-कोलाहल में अधिक व्यापक हो गई। लेकिन प्रयोगवादी प्रवृत्ति को उभरने में कुछ समय लगा। 'तार-सप्तक' के प्रकाशन के पूर्व भी यद्यपि तार सप्तकीय कवि उस अनुभूति को व्यक्त कर रहे थे। इधर द्वितीययुद्ध के जगत्-व्यापी प्रभाव ने इस धारा के कवियों के चिन्तन को अधिक प्रभावित किया जिनकी अभिव्यक्ति तार-सप्तक के काव्यों के रूप में सामने आई। प्रयोगवाद में आधुनिक जीवन दृष्टि, पश्चिमी प्रभाव और भारतीय परिस्थितियों की प्रतिक्रियाओं का एक साथ योग है। इस धारा के प्रतिनिधि गीतकार 'अज्ञेय', गिरिजाकुमार माथुर धर्मवीर भारती, केदारनाथ सिंह आदि हैं। इसमें सन्देह नहीं कि प्रयोगवाद, प्रयोगशील अथवा नयी कविता के कवियों ने जितना विचार विश्लेषण (प्रयोग) वाद' (प्रयोग) 'शील एवं (नयी) कविता तथा लघुमानव', 'आधुनिकता' और समसामयिकता के औचित्य-अनौचित्य पर किया है उससे अंशतः भी गीतों के स्वरूप रचना-विधान, सृजन प्रक्रिया तथा युगीन-मूल्यों में उसकी सार्थकता पर नहीं किया। 'तार सप्तक', 'दूसरा-सप्तक' और 'तीसरा-सप्तक' के समस्त कवि-कवयित्रियों में से गिरिजाकुमार माथुर और केदारनाथ सिंह ये ही दो कवि हैं जिन्होंने गीत को कविता की भांति महत्वपूर्ण माना है आधुनिक परिप्रेक्ष्य में गीत विधा के मर्म को समझा है और उसी के अनुरूप चिन्तन भी किया है। यद्यपि प्रयोगवादियों ने गीति सम्बन्धी विचारणा को 'नयेपन' के मोह के कारण छोड़ दिया है किन्तु फिर भी गिरिजाकुमार माथुर, केदारनाथ सिंह और सप्तकोत्तर गीतकारों की मान्यताएं बहुत उपयोगी और

स्पष्ट हैं। 'गीत' को 'गतानुगतिक' रचना कहने वाले 'अज्ञेय' ने भी नयी कविता की महत्वपूर्ण प्रवृत्ति 'लोकधुनो की रुझान' को ही माना है। इसमे सन्देह नही कि न तो नयी कविता को गीत से कोई विरोध था और न ही यह एक-दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी थे बल्कि युग-सन्दर्भ की नयी प्रवृत्ति 'प्रयोग' के कारण अनायास 'गीत' की उपेक्षा हो गई। वैसे प्रयोगवादी, प्रयोगशील और नए कवियो ने कई श्रेष्ठ गीतो की रचना की है। इस गीतिधारा की महत्वपूर्ण सीमा यह रही कि यह काव्यधारा प्रयोगदृष्टि एव शिल्पिक उपकरणो के बीच पारस्परिकता का निर्वाह नही कर पाई। इन्होने रीतिकवियो की तरह शिल्प-प्रयोग तो क्रान्तिकारी धरातल पर किए लेकिन उसके अनुपात मे युगदृष्टि धुधला गई और इस प्रकार ये गीत-कवि द्वितीय श्रेणी के कवि बनकर रह गये। फलत: प्रयोगवादी कवि जन-जीवन को ऐसा कुछ नही दे पाये जो उनके लिए हो—उनका हो।

सन् १९५० तक आते आते स्वाधीन भारत मे गणतन्त्रीय चेतना पैदा हुई और मार्क्सवाद का उथला प्रभाव जो आन्दोलन बनकर आकाश मे छा गया था धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा था और इस प्रकार कवि, रचनाकार पहले की अपेक्षा कुछ अधिक स्वस्थ होकर जनमानस के बीच खडा हो गया था। चूकि गणतन्त्रीय व्यवस्था ने उसे व्यक्ति स्वातन्त्र्य का अधिकार दे दिया इसलिए वह धरती के अधिक नजदीक आ गया और नये लहजे से उसकी हर धडकन एव समस्या को शब्दित करने लगा था। जाहिर है ऐसे मे गीत का परम्परित विधान भी टूटना अनिवार्य था। ऐसी व्यवस्था मे गीत व्यक्तिगत रागात्मक क्षणो या उच्छ्वास नही रह गया बल्कि जन-जीवन से जुडकर उसमे यत्किंचित बौद्धिकता आई, लोक-धुनो का प्रवेश हुआ, लोक जीवन की धडकन आई और इस तरह उसका विषय अपनी सीमित परिधि को लाघ कर बघे-बधाए चौखटो को तोडने लगा। इस चेतना की अभिव्यक्ति सर्वप्रथम छायावादी कवि 'निराला' के गीतो मे हुई थी। उन्होने पहले-पहल गीत के छन्द, राग और लय मे बहुत कुछ तोडा और नया जोडा था लेकिन बौद्धिक दुरूहता के कोहरे मे यह धारा नैरन्तर्य न पा सकी और सन् ५० तक आते-आते इस चेतना को मुखरता मिल पायी। कहना न होगा कि यह नवीन गीतात्मक चेतना अपने वस्तु-शिल्प एव दर्शन की दृष्टि से अपनी परम्परा से काफी भिन्न थी।

यह नवीन गीतात्मक चेतना क्या है, इस सम्बध मे अनेक कवियो और आलोचको ने अपनी अलग-अलग राय दी है लेकिन प्राय सभी ने यह अवश्य घोषित किया है कि इसे 'गीत' नही कहना चाहिए क्योकि कही-न कही 'गीत' शब्द परम्परित चौखटे की गध देता है। इस तरह उसमे नवीनता का बोध नहीं हो पाता अत इस नव-बोध के लिए गीत को नई सज्ञाओ से अभिहित किया गया। किसी ने इसे 'आज का गीत' कहा तो किसी ने 'नया गीत'। किसी ने आधुनिक

गीत' तो किसी ने 'नवगीत' आदि।

गीत की इस नयी प्रकृति को 'आज का गीत' कहा जाए अथवा 'नया गीत', 'आधुनिक गीत' कहा जाए अथवा 'नवगीत'—समस्या यह नहीं है, बल्कि विचारणीय यह है कि गीत से पूर्व के ये सम्बोधन सज्ञा हैं अथवा विशेषण, मूल्य हैं अथवा प्रक्रिया। दुर्भाग्य से इन पूर्व शब्दो को सज्ञा अथवा मूल्य माना जाने लगा है और गलती यही से शुरू होती है। थोडा विवेक से सोचा जाए तो हर बदलते युग का काव्य अपने समय मे आज का होता है, नया होता है, आधुनिक होता है अथवा 'नव' होता है लेकिन परिस्थिति बदलते ही वह अपनी आतरिक और बाह्य लय को तोडता हुआ पुन फिर आज का, नया, आधुनिक अथवा 'नव' बन जाता है, जाहिर है कि ये शब्द परिस्थिति सापेक्ष्य एक विशेषण तो बन सकते हैं अन्यथा इन्हे प्रक्रिया तो कहा जा सकता है किन्तु सज्ञा अथवा मूल्य की घेरेबदी मे नही बाधा जा सकता और दुर्भाग्य मे यदि ऐसा होता है तो उसके पीछे अवश्य कोई निहित स्वार्थ होता है, जमने-जमाने की चाल होती है अन्यथा यह कभी नही हो सकता कि कहानी को नयी कहानी का नारा देने वाले, उसको मूल्य मानने वाले कमलेश्वर को अन्तत यह कहना पडता कि "कहानी ने एक बार फिर अपनी मुक्ति का अहसास किया है। अच्छा है कि यह मुक्ति किसी आदोलन का नाम अख्तियार नही कर रही है, आदोलनो और प्रतिआदोलनो से ऊबी हुई कथा-चेतना अब अपनी दृष्टि-सम्पन्नता के साथ ही आत्मबोध से आप्लावित है" (बयान पृष्ठ ६)।

लेखक-द्वय का मत भी यही है कि गीत-चेतना अपनी दृष्टि-सम्पन्नता और आत्मबोध से आप्लावित रहे और नामो के व्यामोह से जहा तक सम्भव हो मुक्त रहे अन्यथा इसकी भी नियति अतत वही होगी जो कहानी की हुई है।

सक्षेप मे, 'नवगीत' शब्द का प्रयोग चाहे आधुनिकता की चुनौती के रूप मे हो या 'व्यतीत भावबोध तथा बासी शैली-शिल्प' की विभिन्नता को प्रकट करने के लिए हो अथवा नई कविता, नई कहानी, नयी आलोचना के समकक्ष इस 'नव' शब्द को व्यवहृत किया गया हो अथवा गीत की प्रतिष्ठा के पुनर्स्थापन के रूप मे, किन्तु इससे इनकार नही किया जा सकता कि उलझी हुई परिस्थिति मे, इतिहास की सीमाओ और भाषा की असमर्थता को देखते हुए समकालीन साहित्य मे नये बोध, नये विचारो, नयी सवेदनाओ की विशिष्टताओ को प्रतिष्ठित करने के लिए 'नव', 'नया', 'नयी' जैसे सम्बोधन सुविधाजनक होने के साथ-साथ युग-सापेक्ष्य थे। अत इस 'युग-सापेक्षता', 'नूतन-भावबोध' और बौद्धिक-चिन्तन को देखते हुए उसे नवगीत की सज्ञा देना उचित था। इस धारा के प्रमुख गीतकार हैं—शम्भूनाथसिंह, वीरेन्द्र मिश्र, 'नीरज', बालस्वरूप 'राही', रामावतार त्यागी, डॉ० रवीन्द्र 'भ्रमर', श्रीपालसिंह 'क्षेम', प० मधुरशास्त्री, चन्द्रसेन 'विराट्',

दिनकर सोनवलकर, ठाकुर प्रसादसिंह, महेन्द्र भटनागर, रमानाथ अवस्थी, विकल साकेती शेरजंग गर्ग मणि मधुकर एवं भारतभूषण आदि। युगानुरूप नयी चेतना एवं स्फूर्ति के आधार पर भी 'नवगीत' अभिधान ही सर्वाधिक ग्राह्य था। यह बात और है कि गीत का यह नामकरण-संस्कार अपनी मूल प्रवृत्ति में प्रक्रिया भर है, मूल्य नहीं। यह रेखांकित करना शायद असंगत न होगा कि नवगीत परम्परा से चली आ रही गतिविधियाँ से अपेक्षाकृत भिन्न एवं मौलिक कहा जा सकता है। गीत की शास्त्रीय साज-सज्जा आधुनिक काल में छायावाद ने की लेकिन उसका रचनावैभव मूलत भारतीय कम और पाश्चात्य लिरिक परम्परा का छायानुवाद अधिक था जबकि नवगीत में यह शिकायत कम है। वह अपनी जमीन पर खड़ा होकर उसकी गंध को गुनगुनाता है और इस तरह छायावादी रोमानियत और लिजलिजेपन से हटकर यथार्थ की बात कहता है। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक प्रगीत और नवगीत में भी परस्पर तात्विक भेद है। पहली गीतिधारा दलीय मतदाताओं का आधार लेकर अपनी पहचान को और साहित्यिक गरिमा को जहाँ चिरजीवी बनाने में प्रायः असमर्थ रह जाती है वहाँ नवगीत गणतन्त्रीय धुरी को पकड़कर आंचलिक लोक-धुनों में घुस जाता है और इस तरह न केवल अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व एवं निकाय बनाने में समर्थ होता है बल्कि भाषा के बहते नीर में बहता हुआ एक जीवन्त काव्यधारा का प्रतीक बन जाता है। मात्रा-भेद से कुछ ऐसा ही अन्तर प्रगतिवादी गीतिधारा और नवगीत में किया जा सकता है। प्रगतिवादी गीतिधारा जहाँ सिद्धांत-बोझिल सामाजिक अनुभूतियों के कारण उथलेपन का शिकार है वहाँ नवगीत जनमानस की व्यावहारिक समस्याओं को उन्हीं की धुनों और उन्हीं के संगीत में कहकर मस्ती से आगे बढ़ जाता है। इस तरह वह अपने को इस काव्यधारा में भी अलगाने का संकेत दे जाता है। लोक-धुन, सहजसंगीत एवं प्रामाणिक जीवन के बिम्बों को ग्रहण करने की अनिवार्यता यदि नवगीत को मंच पर लाकर खड़ा कर दे तो इसमें बुरा ही क्या है? ऐसे में यह कहना ज्यादती होगी कि मंचीय गीत और नवगीत में भेद है। मूलतः ये सजातीय विधाएं हैं। यदि इनमें फर्क किया भी जाए तो सिर्फ इतना कि मंच पर आने के बाद कवि—कवि रहे जनमंगल का कवि, जन जीवन की धड़कनों का कवि न कि बाजारू व्यावसायिक और भटकाने वाला कवि।

सम्प्रति, नवगीत परम्परा विद्रोह के बावजूद एक ऐसी विधा है जिसमें एक तरफ 'भक्तिकालीन पद शैली' है तो दूसरी तरफ रीतिकालीन बोध। कहीं 'नियतिवादी दर्शन' का संकेत है तो कहीं औपनिषदिक दर्शन' की गहराई और कभी सामाजिक यथार्थवाद' को मुखरित करने वाली भाव भंगिमा। इसमें संदेह नहीं कि नयी कविता के समानान्तर साहित्यजगत में अवतरित होने वाली यह गीति-विधा 'युग-बोध' को अभिव्यक्त करने के लिए उन्हीं उपकरणों को पकड़ती है जो

नयी कविता के पास हैं। ऐसी स्थिति मे प्रतीक, बिम्ब शब्द और छन्द सभी उपकरणो मे मे गीत-प्रकृति की रक्षा करनी होगी।

कहना न होगा विगत तीन दशकों से आधुनिकता और नये प्रयोगों के नाम पर कविता के क्षेत्र मे जैसी उद्दाम-अराजकता व्याप रही है वैसी हिन्दी के लगभग एक हजार वर्ष पुराने इतिहास मे देखने को नही मिलती। कविता-रचना के जो नुस्खे और गैरमफ्की नुस्खे और टोने-टोटके ईजाद हुए उन्होने घर-घर और गली-मोहल्लो मे स्वयभू कालिदासों की जमात लाकर खडी कर दी। उधर मौकापरस्त समीक्षको ने भी उसकी ऐसी पीठ ठोकी कि खुदाओ और पैगम्बरो की बाढ में बेचारी पारम्परिक कविता ऐसी बही—कि उसे आज तक किनारा नही मिल पाया है। जब समूची कविता पर ही यह कहर बरपा हुआ तो 'गीत' जैसी कमसिन और नाज़ुक विधा तो ठहर ही कहा पाती? गिरिजाकुमार माथुर, शम्भूनाथ सिंह और केदारनाथसिंह जो कभी गीत को एक नया आयाम देने के लिए प्रतिश्रुत थे वे ही टटती हुई मान्यताओ की महराबो के नीचे से सिर झुकाकर खिसकते चले गए मन्ज नई समीक्षा का यशस्तिलक कराने के लिए अपने-अपने मस्तक पर। सतही और लिजलिजी भावुकता, सीमित अभिव्यक्ति, कोमल कमनीयता, पिछडेपन और बुद्धिहीनता आदि के आरोपो की घटाटोप-आंधी मे तत्कालीन कविता के साथ-साथ गीत की निरुपायअस्मिता भी लडखडाने लगी लेकिन यह स्थिति अधिक दिन तक कायम न रह सकी। सन् १९६० के आस-पास गीत ने नवगीत के रूप मे पुनः अपनी अलग पहचान बना ली और तब से लेकर अब तक गीत का वह तनहा सफर एक इनकलाबी कारवाँ की शक्ल मे बहते हुए इतिहास की लहरों धूसर मरुस्थलो की रेतो और काल की शिलाधर्मी पगडंडियो पर अपने अमिट पदचिह्नो को आंकता चला जा रहा है।

आज नवगीत-मूल्यांकन को लेकर आन्दोलनकर्ता और ग्राहको के बीच 'स्वतन्त्र-सत्ता' और 'परम्परागत भिन्नता' का संघर्ष चल रहा है। अन्य विधाओ की अपेक्षा सबसे अधिक विवाद 'नवगीत' को लेकर हो रहा है। इस विवाद को धर्मयुग के १८ तथा २५ अप्रैल १९८२ के अकों ने और बढाया है जिसमें डॉ० विश्वनाथ प्रसाद के 'हिन्दी नवगीत और नवगीतकार' शीर्षक से दो महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुए हैं। नवगीत से जुड़े कुछ विद्वानों की प्रतिक्रियाएं/टिप्पणियां धर्मयुग के १ अगस्त १९८२ के अक मे देखने मे आई जिनका सविस्तार उत्तर डॉ० विश्वनाथ प्रसाद द्वारा दिया गया था। व्यक्तिगत आक्षेपो और आरोपों-प्रत्यारोपो के घटिया स्तर ने एक अच्छी बहस को खेमेबाजी मे तब्दील कर दिया। खेमेबाजी और गुटबंदी मे रहकर स्वतन्त्र चिन्तन नहीं हो सकता। अपने-अपने गुट को प्रतिष्ठित करने के चक्कर मे लगता है दोनो ही गुट महल का कंगूरा बनने की जबरदस्ती कोशिश कर रहे हैं। इतिहास को झुठलाया नही जा सकता,

निश्चित रूप से महत्व उन्हीं का होगा जो नवगीत आन्दोलन मे नींव की ईंट बने हैं। एक गट द्वारा नवगीत-आन्दोलन का मसीहा बनने के लिए धर्मयुग जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका का भरपूर इस्तेमाल उसकी निष्पक्षता पर प्रश्नचिह्न है। १८ २४ जुलाई १९८२ के धर्मयुग मे डॉ० शिवशकर शर्मा का इस सम्बन्ध मे छपा पत्र न-केवल महत्वपूर्ण है बल्कि हम उनसे पूर्णत सहमत हैं जिसमे उन्होंने इस प्रकार के छद्म प्रयासो की ओर सकेत करते हुए लिखा है कि आज जबकि नवगीत अपनी पूर्ण प्रतिष्ठा के साथ एक विकसित विधा के रूप मे स्थापित हो चुका है तब कुछ ऐसे भी प्रयास हो रहे हैं जो नवगीत की विकास-यात्रा मे अपने आपको आगे की पक्ति मे जोड लेने को उत्सुक हैं। जब नई कविता का आन्दोलन चल रहा था और गीत नवगीत की प्रत्यक्षत उपेक्षा ही नही हो रही थी उसे असाहित्यिक विधा घोषित किया जा रहा था तब जो लोग नई कविता के साथ जुडे हुए थे और गीत के सबध मे मौन धारण किए हुए थे उनके कतिपय गीत उन्हे नवगीत का प्रवत्तक नही बना सकते। नवगीत के प्रवर्त्तक वे लोग होंगे जो मूलत नवगीत को समर्पित रहे उसे युगानुकूल वस्तु शिल्प से तराशते रहे तथा नई कविता के प्रहारो का उत्तर देते हुए नवगीत के पक्ष में लेख मालाए प्रस्तुत करते रहे।

अन्त म सुधी विद्वानो से लेखक द्वय का यही आग्रह है कि हमारे निष्कर्षों को अन्तिम सत्य और स्थापित सिद्धान्त म माना जाए। निष्कर्ष मूलत सभावनाओ का सकेत देते हैं। हमारा यह अध्ययन विश्लेषणपरक है और विश्लेषणपरकता मे अपेक्षाकृत खुलापन होने के कारण बधने का [illegible]